इकाई–1

सामाजिक शोध
Social Research

इकाई की रूपरेखा

1.0 अध्ययन के उद्देश्य

1.1 प्रस्तावना

1.2 सामाजिक शोध का अर्थ

1.3 सामाजिक शोध का उद्देश्य

1.4 सामाजिक शोध के चरण

1.5 सामाजिक शोध का अध्ययन क्षेत्र एवं सार्थकता

1.6 निष्कर्ष

1.7 शब्दावली

1.8 अभ्यास प्रश्न

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के उपरान्त आपके लिए निम्नलिखित को बताना संभव होगा

- सामाजिक शोध से आशय,
- शोध के उद्देश्यों, क्षेत्र एवं सार्थकता की समझ; तथा
- शोध प्रक्रिया के चरणों का ज्ञान।

1.1 प्रस्तावना

सामाजिक यथार्थ को समझने के लिए समाजशास्त्रीय ज्ञान नितान्त आवश्यक है। समाजशास्त्रीय ज्ञान सामाजिक शोधों से जन्म लेता है तथा निरन्तर चलने वाली शोध प्रक्रियाओं से समृद्ध होता जाता है। सामाजिक संरचनाओं एवं पद्धतियों के अध्ययन के लिए सामाजिक शोध की वैज्ञानिक पद्धति का प्रयोग किया जाता है। इसमें मनुष्यों के द्वारा, मनुष्यों का अध्ययन किया जाता है, अतः विशेष सावधानी अपेक्षित होती है। इस सन्दर्भ में बार्न्स (1977 : 2–3) का उल्लेख करना

समीचीन प्रतीत होता है। वह कहता है कि, ''सामाजिक शोध का विशिष्ट गुण अनिवार्यतः उस गतिविधि में पाया जाता है, जिसमें मनुष्यों द्वारा स्वयं मनुष्यों का अध्ययन किया जाता है, और इस तरह की गतिविधि के साथ जुड़े नैतिक प्रश्नों का उन्हें सामना करना पड़ता है। ये नैतिक प्रश्न सामाजिक विज्ञानों में अन्तर्निहित, सर्वगत और अपरिहार्य हैं।''

प्रस्तुत इकाई का उद्देश्य आपको सामाजिक शोध/अनुसन्धान के अर्थ, उसके क्षेत्र एवं सार्थकता तथा उद्देश्यों से अवगत कराना है। सामाजिक शोध विविध चरणों से से गुजरता है। दूसरे शब्दों में, शोध कार्य को पूर्ण करने के लिए क्रमशः विविध चरणों को पार करना होता है। प्रस्तुत इकाई में सामाजिक शोध के विविध चरणों से भी आपको परिचित कराया जायेगा ताकि आप यह समझ सकें कि वास्तव में सामाजिक शोध क्या होता है और कैसे किया जाता है। आपकी रुचि सामाजिक शोध में बढ़े और आप एक अच्छे अनुसंधानकर्ता बने इसी आशा के साथ इस इकाई को सरलतम रुप में प्रस्तुत किया जा रहा है।

1.2 सामाजिक शोध का अर्थ

सामाजिक शोध के अर्थ को समझने के पूर्व हमें शोध के अर्थ को समझना आवश्यक है। मनुष्य स्वभावतः एक जिज्ञाषील प्राणी है। अपनी जिज्ञाषील प्रकृति के कारण वह समाज वह प्रकृति में घटित विभिन्न घटनाओं के सम्बन्ध में विविध प्रश्नों को खड़ा करता है। और स्वयं उन प्रश्नों के उत्तर ढूढने का प्रयत्न भी करता है। और इसी के साथ प्रारम्भ होती है। सामाजिक अनुसंधान के वैज्ञानिक प्रक्रिया, वस्तुतः अनुसन्धान का उद्देश्य वैज्ञानिक प्रक्रियाओं के प्रयोग द्वारा प्रश्नों के उत्तरों की खोज करना है। स्पष्ट है कि, किसी क्षेत्र विशेष में नवीन ज्ञान की खोज या पुराने ज्ञान का पुनः परीक्षण अथवा दूसरे तरीके से विश्लेषण कर नवीन तथ्यों का उद्घाटन करना शोध कहलाता है। यह एक निरन्तर प्रक्रिया है, जिसमें तार्किकता, योजनाबद्धता एवं क्रमबद्धता पायी जाती है। जब यह शोध सामाजिक क्षेत्र में होता है तो उसे सामाजिक शोध कहा जाता है। प्राकृतिक एवं जीव विज्ञानों की तरह सामाजिक शोध भी वैज्ञानिक होता है क्योंकि इसमें वैज्ञानिक विधियों की सहायता से निष्कर्षों पर पहुँचा जाता है। वैज्ञानिक विधियों से यहाँ आशय मात्र यह है कि किसी भी सामाजिक शोध को पूर्ण करने के लिए एक तर्कसंगत शोध प्रक्रिया से गुजरना होता है। शोध में वैज्ञानिकता का जहाँ तक प्रश्न है, इस पर भी विद्वानों के अलग–अलग मत हैं। रीड (1995:2040) का मानना है कि, ''शोध हमेशा वह नही होता जिसे आप 'वैज्ञानिक' कह सकें। शोध कभी–कभी उपयोगी जानकारी एकत्र करने तक सीमित हो सकता है। बहुधा ऐसी जानकारी किसी कार्य विशेष का नियोजन करने और महत्वपूर्ण निर्णयों को लेने हेतु बहुत महत्वपूर्ण होती है। इस प्रकार के शोध कार्य में एकत्र की गयी सामग्री तदन्तर सिद्धान्त निर्माण की ओर ले जा सकती है।''

सामाजिक शोध को और भी स्पष्ट करने के लिए हम कुछ विद्वानों की परिभाषाओं का उल्लेख कर सकते हैं। पी.वी. यंग (1960:44) के अनुसार, ''हम सामाजिक अनुसंधान को एक वैज्ञानिक कार्य के रूप में परिभाषित कर सकते हैं, जिसका उद्देश्य तार्किक एवं क्रमबद्ध पद्धतियों के द्वारा नवीन तथ्यों की खोज या पुराने तथ्यों को, और उनके अनुक्रमों, अन्तर्सम्बन्धों, कारणों एवं उनको संचालित करने वाले प्राकृतिक नियमों को खोजना है।''

सी.ए. मोज़र (1961 :3) ने सामाजिक शोध को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि, ''सामाजिक घटनाओं एवं समस्याओं के सम्बन्ध में नये ज्ञान की प्राप्ति हेतु व्यवस्थित अन्वेषण को हम सामाजिक शोध कहते हैं।'' वास्तव में देखा जाये तो, 'सामाजिक यथार्थता की अन्तर्सम्बन्धित प्रक्रियाओं की व्यवस्थित जाँच तथा विश्लेषण सामाजिक शोध है।' (पी.वी. यंग 1960 : 44)

स्पष्ट है कि विद्वानों ने सामाजिक शोध को अपनी–अपनी तरह से परिभाषित किया है। उन सभी की परिभाषाओं के आधार पर निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता हैं कि सामाजिक शोध सामाजिक जीवन के विविध पक्षों का तार्किक एवं व्यवस्थित अध्ययन है, जिसमें कार्य–कारण सम्बन्धों के आधार पर व्याख्या की जाती है। सामाजिक शोध की प्रासंगिकता तभी है जब किसी निश्चित सैद्धान्तिक एवं अवधारणात्मक संदर्भ संरचना के अन्तर्गत उसे सम्पादित किया जाये। सामाजिक अनुसन्धानकर्त्ता किसी अध्ययन समस्या से सम्बन्धित दो आधारभूत शोध प्रश्नों को उठाता है– (i) क्या हो रहा है? और (ii) क्यों हो रहा है? अध्ययन समस्या का 'क्या हो रहा है?' प्रश्न का यदि कोई उत्तर खोजता है और उसे देता है तो उसका शोध कार्य विवराणात्मक शोध की श्रेणी में आता है। 'क्यों हो रहा है?' 'का उत्तर देने के लिए उसे कारणात्मक सम्बन्धों की खोज करनी पड़ती है। इस प्रकार का शोध कार्य व्याख्यात्मक शोध कार्य होता है जो कि सिद्धान्त में परिणत होता है। यह सामाजिक घटनाओं के कारणों पर प्रकाश डालता है तथा विविध परिवर्त्यों के मध्य सम्बन्ध स्पष्ट करता है।

1.3 सामाजिक शोध का उद्देश्य

सामाजिक शोध का प्राथमिक उद्देश्य चाहे वह तात्कालिक हो या दूरस्थ–सामाजिक जीवन को समझना और उस पर अधिक नियंत्रण पाना है (पी.वी. यंग 1960 : 44)। इसका तात्पर्य यह नहीं समझा जाना चाहिए कि सामाजिक शोधकर्ता या समाजशास्त्री कोई समाजसुधारक, नैतिकता का प्रचार–प्रसार करने वाला या तात्कालिक सामाजिक नियोजनकर्ता होता है। बहुसंख्यक लोग समाजशास्त्रियों से जो अपेक्षा रखते हैं, वह वास्तव में समाजशास्त्र के विषय

क्षेत्र के बाहर की होती है। इस सन्दर्भ में पी.वी. यंग ;1960 : 75) ने उचित ही लिखा है कि 'सामाजिक शोधकर्ता न तो व्यावहारिक समस्याओं और न तात्कालिक सामाजिक नियोजन, उपचारात्मक उपाय, या सामाजिक सुधार से सम्बन्धित होता है। वह प्रशासकीय परिवर्तनों और प्रशासकीय प्रक्रियाओं के परिष्करण से सम्बन्धित नही होता। वह अपने को जीवन और कार्य, कुशलता और कल्याण के पूर्व स्थापित मापदण्डों द्वारा निर्देशित नहीं करता है और सामाजिक घटनाओं को सुधार की दृष्टि से इन मापदण्डों के परिप्रेक्ष्य में मापता भी नहीं है। सामाजिक शोधकर्ता की मुख्य रुचि सामाजिक प्रक्रियाओं की खोज और

विवेचन, व्यवहार के प्रतिमानों, विशिष्ट सामाजिक घटनाओं और सामान्यतः सामाजिक समूहों में लागू होने वाली समानताओं एवं असमानताओं में होती है।

सामाजिक शोध के कुछ अन्य उद्देश्य हैं, पुरातन तथ्यों का सत्यापन करना, नवीन तथ्यों को उद्‌घाटित करना परिवर्त्यों–अर्थात विभिन्न चरों के बीच कार्य–कारण सम्बन्ध ज्ञात करना, ज्ञान का विस्तार करना, सामान्यीकरण करना तथा प्राप्त ज्ञान के आधार पर सिद्धान्त का निर्माण करना है। सामाजिक शोध से प्राप्त सूचनाएँ सामाजिक नीति निर्माण अथवा जीवन के गुणवत्ता में सुधार अथवा सामाजिक समस्याओं के समाधान में सहायक हो सकती हैं। व्यावहारिक दृष्टि से देखा जाय तो इसे उपयोगितावादी कहा जा सकता है।

गुडे तथा हाट (1952) ने सामाजिक अनुसंधान को दो भागों– सैद्धान्तिक एवं व्यवहारिक में रखते हुए इसके उद्देश्यों को अलग–अलग स्पष्ट किया है। उनका कहना है कि सैद्धान्तिक सामाजिक अनुसन्धान का मुख्य उद्देश्य नवीन तथ्यों को ज्ञात करना, सिद्धान्त की जाँच करना, अवधारणात्मक स्पष्टीकरण में सहायक होना तथा उपलब्ध सिद्धान्तों को एकीकृत करना है। व्यावहारिक अनुसन्धान का उद्देश्य व्यावहारिक समस्याओं के कारणों को ज्ञात करना और उनके समाधानों का पता लगाना नीतिनिर्धारण हेतु आवश्यक सुधार प्रदान करना होता है।

1.4 सामाजिक शोध के चरण

सामाजिक शोध की प्रकृति वैज्ञानिक होती है। वैज्ञानिक प्रकृति से तात्पर्य यह है कि इसमें समस्या विशेष का अध्ययन एक व्यवस्थित पद्धति के अनुसार किया जाता है। अध्ययन के निष्कर्ष पर इस प्रकार पहुँचा जाता है कि उसके वैषयिकता के स्थान पर वस्तुनिष्ठता होती है। शोध की सम्पूर्ण प्रक्रिया विविध सोपानों से गुजरती है। इन्हें सामाजिक शोध के चरण भी कहा जाता है। एक चरण से दूसरे चरण में प्रवेश करते हुए अध्ययन को आगे बढ़ाया जाता है। सामाजिक शोध में कितने चरण होते हैं, इसमें विद्वानों में एकमत्य नही है। इसी तरह, शोध में चरणों का नामकरण भी विद्वानों ने अलग–अलग तरह से किया है। शोध के बीच के कुछ चरण आगे–पीछे हो सकते हैं, उससे शोध की वैज्ञानिकता पर कोई दुष्प्रभाव नही पड़ता है।

हम यहाँ पहले कुछ विद्वानों द्वारा बताये शोध के चरणों का उल्लेख करेंगे, तत्पश्चात् सामाजिक शोध के महत्वपूर्ण चरणों की संक्षिप्त विवेचना करेंगे।

स्लूटर (1926 :5) ने सामाजिक शोध के पन्द्रह चरणों का उल्लेख किया है, जो इस प्रकार हैं–

(1) शोध विषय का चुनाव।

(2) शोध समस्या को समझने के लिए क्षेत्र सर्वेक्षण।

(3) सन्दर्भ ग्रन्थ सूची का निर्माण।

(4) समस्या को परिभाषित या निर्मित करना।

(5) समस्या के तत्वों का विभेदीकरण और रूपरेखा निर्माण।

(6) आँकड़ों या प्रमाणों से प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष सम्बन्धों के आधार पर समस्या के तत्वों का वर्गीकरण।

(7) समस्या के तत्वों के आधार पर आँकड़ों या प्रमाणों का निर्धारण।

(8) वांछित आँकड़ों या प्रमाणों की उपलब्धता का अनुमान लगाना।

(9) समस्या के समाधान की जाँच करना।

(10) आँकड़ों तथा सूचनाओं का संकलन।

(11) आँकड़ों को विश्लेषण के लिए व्यवस्थित एवं नियमित करना।

(12) आँकड़ों एवं प्रमाणों का विश्लेषण एवं विवेचन।

(13) प्रस्तुतीकरण के लिए आँकडों को व्यवस्थित करना।

(14) उद्धरणों, सन्दर्भों एवं पाद् टिप्पणीयों का चयन एवं प्रयोग।

(15) शोध प्रस्तुतीकरण के स्वरूप और शैली को विकसित करना।

इग्नु (इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय) की पाठ्यपुस्तक (MSO 002 शोध पद्धतियाँ और विधियाँ, 2006, पृ. 32) में सामाजिक शोध के चरणों को निम्नवत् प्रस्तुत किया गया है।

शोध समस्या को परिभाषित करना।

↓

शोध विषय पर प्रकाशित सामग्री की समीक्षा करना।

↓

अध्ययन के व्यापक दायरे और इकाई को तय करना।

↓

प्राकल्पना का सूत्रीकरण और परिवर्तियों को बताना।

↓

शोध विधियों और तकनीकों का चयन।

↓

शोध का मानकीकरण

↓

मार्गदर्शी अध्ययन/सांख्यकीय व अन्य विधियों का प्रयोग

↓

शोध सामग्री इकठ्ठा करना।

↓

सामग्री का विश्लेषण करना

↓

व्याख्या करना और रिपोर्ट लिखना

राम आहूजा (2003:125) ने मात्र छः चरणों का उल्लेख किया है, जो कि निम्नवत् हैं–

(1) अध्ययन समस्या का निर्धारण।

(2) शोध प्रारुप तय करना।

(3) निदर्शन की योजना बनाना (सम्भाव्यता या असम्भाव्यता अथवा दोनों)

(4) आँकड़ा संकलन

(5) आँकड़ा विश्लेषण (सम्पादन, संकेतन, प्रक्रियाकरण एवं सारणीयन)।

(6) प्रतिवेदन तैयार करना।

सी. आर. कोठारी (2005:12) ने शोध प्रक्रिया के ग्यारह चरणों का उल्लेख किया है, जो निम्नवत् हैं–

(1) शोध समस्या का निर्माण।

(2) गहन साहित्य सर्वेक्षण

(3) उपकल्पना का निर्माण

(4) शोध प्रारुप निर्माण

(5) निदर्शन प्रारुप निर्धारण

(6) आँकड़ा संकलन

(7) प्रोजेक्ट का सम्पादन

(8) आँकड़ों का विश्लेषण

(9) उपकल्पनाओं का परीक्षण।

(10) सामान्यीकरण और विवेचन, और

(11) रिपोर्ट तैयार करना या परिणामों का प्रस्तुतीकरण यानि निष्कर्षों का औपचारिक लेखन।

शोध के उपरोक्त विविध चरणों को हम निम्नांकित रूप से सीमित कर सामाजिक शोध क्रमशः कर सकते हैं।

प्रथम चरण– शोध प्रक्रिया में सबसे पहला चरण समस्या का चुनाव या शोध विषय का निर्धारण होता है। यदि आपको किसी विषय पर शोध करना है तो स्वाभाविक है कि सर्वप्रथम आप यह तय करेंगे कि किस विषय पर कार्य किया जाये। विषय का निर्धारण करना तथा उसके सैद्धान्तिक एवं अवधारणात्मक पक्ष को स्पष्ट करना शोध का प्रथम चरण होता है। शोध विषय का चयन सरल कार्य नही होता है, इसलिए ऐसे विषय को चुना जाना चाहिए जो आपके समय और साधन की सीमा के अन्तर्गत हो तथा विषय न केवल आपकी रुचि का हो अपितु समसामयिक हो। इस तरह आपके द्वारा चयनित एक सामान्य विषय

वैज्ञानिक खोज के लिए आपके द्वारा विशिष्ट शोध समस्या के रूप में निर्मित कर दिया जाता है। शोध विषय के निर्धारण और उसके प्रतिपादन की दो अवस्थाएँ होती हैं– प्रथमतः तो शोध समस्या को गहन एवं व्यापक रूप से समझना तथा द्वितीय उसे विश्लेषणात्मक दृष्टिकोण से प्रकारान्तर में अर्थपूर्ण शब्दों में प्रस्तुत करना।

अक्सर शोध छात्रों द्वारा यह प्रश्न किया जाता है कि किस विषय पर शोध करें। इसी तरह अक्सर शोध छात्रों से यह प्रश्न किया जाता है कि आपने चयनित विषय क्यों लिया। दोनों ही स्थितियों से यह स्पष्ट है कि शोध के विषय या अध्ययन समस्या का चुनाव महत्वपूर्ण चरण है, जिसका स्पष्टीकरण जरूरी है, लेकिन अक्सर ऐसा होता नहीं है। अनेकों शोध छात्र अपने शोध विषय के चयन का स्पष्टीकरण समुचित तरीके से नहीं दे पाते हैं। विद्वानों ने अपने शोध विषय के चयन के तर्कों पर काफी कुछ लिखा है। हम यहाँ उनके तर्कों को प्रस्तुत नहीं करेंगे अपितु मात्र बनार्ड (1994) के उस सुझाव का उल्लेख करना चाहेगें जिसमें उसने शोधकर्ताओं को यह सुझाव दिया है कि वे स्वयं से निम्नांकित प्रश्न पूछें–

(i) क्या आपको अपने शोध का विषय रूचिकर लगता है?

(ii) क्या आपके शोध विषय का वैज्ञानिक अध्ययन सम्भव है?

(iii) क्या आपके पास शोध कार्य को सम्पादित करने के लिए पर्याप्त संसाधन है?

(iv) क्या शोध प्रश्नों को पूछने अथवा शोध की कुछ विधियों एवं तकनीकों के प्रयोग से आपके समक्ष किसी प्रकार की नीतिगत अथवा नैतिक समस्या तो नहीं आयेगी?

(v) क्या आपके शोध का विषय सैद्धान्तिक रूप से महत्वपूर्ण और रोचक है?

निश्चित रूप से उपरोक्त प्रश्नों पर तार्किक तरीके से विचार करने पर उत्तम शोध समस्या का चयन सम्भव हो सकेगा।

द्वितीय चरण– यह तय हो जाने के पश्चात् कि किस विषय पर शोध कार्य किया जायेगा, विषय से सम्बन्धित साहित्यों (अन्य शोध कार्यों) का सर्वेक्षण (अध्ययन) किया जाता है। इससे तात्पर्य यह है कि चयनित विषय से सम्बन्धित समस्त लिखित या अलिखित, प्रकाशित या अप्रकाशित सामग्री का गहन अध्ययन किया जाता है, ताकि चयनित विषय के सभी पक्षों की जानकारी प्राप्त हो सके। चयनित विषय से सम्बन्धित सैद्धान्तिक एवं अवधारणात्मक साहित्य तथा आनुभविक साहित्य का अध्ययन अत्यन्त महत्वपूर्ण एवं आवश्यक है। इस पर ही शोध की समस्या का वैज्ञानिक एवं तार्किक प्रस्तुतीकरण निर्भर करता है। कभी–कभी यह प्रश्न उठता है कि सम्बन्धित साहित्य का सर्वेक्षण शोध की समस्या के चयन के पूर्व होना चाहिए कि पश्चात्। ऐसा कहा जाता है कि, 'शोध समस्या को विद्यमान साहित्य के प्रारम्भिक अध्ययन से पूर्व ही चुन लेना बेहतर रहता है।' (इग्नु 2006 : पृ. 33) यहाँ यह भी प्रश्न उठ सकता है कि बिना विषय के बारे में कुछ पढ़े कोई कैसे अध्ययन समस्या का निर्धारण कर सकता है? विशेषकर तब जब आप यह अपेक्षा रखते

हैं कि शोधकर्ता शोध के प्रथम चरण में ही अध्ययन की समस्या को निर्धारित निर्मित, एवं परिभाषित करे तथा उसके शोध प्रश्नों एवं उद्देश्यों को अभिव्यक्त करे। समस्या का चयन एवं उसका निर्धारण शोधकर्ता के व्यापक ज्ञान के आधार पर हो सकता है। तत्पश्चात् उसे उक्त विषय से सम्बन्धित सैद्धान्तिक एवं अवधारणात्मक तथा विविध विद्वानों द्वारा किये गये आनुभविक अध्ययनों से सम्बन्धित सामग्री का अध्ययन करना चाहिए। ऐसा करने से उसे यह स्पष्ट हो जाता है कि सम्बन्धित विषय पर किन–किन दृष्टियों से, किन–किन विद्वानों ने विचार किया है और विविध अध्ययनों के उद्देश्य, उपकल्पनाएं, कार्यविधिकी क्या–क्या रही है।'' साथ ही साथ विविध विद्वानों के क्या निष्कर्ष रहे हैं। इतना ही नहीं उन विद्वानों द्वारा झेली गयी समस्याओं या उसके द्वारा भविष्य के अध्ययन किये जाने वाले सुझाये विषयों की भी जानकारी प्राप्त हो जाती है। ये समस्त ज्ञान एवं जानकारियाँ किसी भी शोधकर्ता के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण होती हैं।

तृतीय चरण– सम्बन्धित समस्त सामग्रियों के अध्ययनों के उपरान्त शोधकर्त्ता अपने शोध के उद्देश्यों को स्पष्ट अभिव्यक्त करता है कि उसके शोध के वास्तविक उद्देश्य क्या–क्या हैं। शोध के स्पष्ट उद्देश्यों का होना किसी भी शोध की सफलता एवं गुणवत्तापूर्ण प्रस्तुतीकरण के लिए आवश्यक है। उद्देश्यों की स्पष्टता अनिवार्य है। उद्देश्यों के आधार पर ही आगे कि प्रक्रिया निर्भर करती है, जैसे कि तथ्य संकलन की प्रविधि का चयन और उस प्रविधि द्वारा उद्देश्यों के ही अनुरूप तथ्यों के संकलन की रणनीति या प्रश्नों का निर्धारण। यह कहना उचित ही है कि, 'जब तक आपके पास शोध के उद्देश्यों का स्पष्ट अनुमान न होगा, शोध नही होगा और एकत्रित सामग्री में वांछित सुसंगति नही आएगी क्योंकि यह सम्भव है कि आपने विषय को देखा हो जिस स्थिति में हर परिप्रेक्ष्य भिन्न मुद्दों से जुड़ा होता है। उदाहरण के लिए, विकास पर समाजशास्त्रीय अध्ययन में अनेक शोध प्रश्न हो सकते हैं, जैसे विकास में महिलाओं की भूमिका, विकास में जाति एवं नातेदारी की भूमिका अथवा पारिवारिक एवं सामुदायिक जीवन पर विकास के समाजिक परिणाम।' (इग्नु 2006 : 33–34) है।

चतुर्थ चरण– शोध के उद्देश्यों के निर्धारण के पश्चात् अध्ययन की उपकल्पनाओं या प्राक्कल्पनाओं को स्पष्ट रूप से व्यक्त करने की जरुरत है। यह उल्लेखनीय है कि सभी प्रकार के शोध कार्यों में उपकल्पनाएँ निर्मित नहीं की जाती हैं, विशेषकर ऐसे शोध कार्यों में जिसमें विषय से सम्बन्धित पूर्व जानकारियाँ सप्रमाण उपलब्ध नहीं होती हैं। अतः यदि हमारा शोध कार्य

अन्वेषणात्मक है तो हमें वहाँ उपकल्पनाओं के स्थान पर शोध प्रश्नों को रखना चाहिए। इस दृष्टि से यदि देखा जाये तो स्पष्ट होता है कि उपकल्पनाओं का निर्माण हमेशा ही शोध प्रक्रिया का एक चरण नहीं होता है उसके स्थान पर शोध प्रश्नों का निर्माण उस चरण के अन्तर्गत आता है।

उपकल्पना या प्राक्कल्पना से तात्पर्य क्या हैं? और इसकी शोध में क्या आवश्यकता है? इत्यादि प्रश्नों का उत्पन्न होना स्वाभाविक है।

लुण्डबर्ग (1951:9) के अनुसार, ''उपकल्पना एक सम्भावित सामान्यीकरण होता है, जिसकी वैद्यता की जाँच की जानी होती है। अपने प्रारम्भिक स्तरों पर उपकल्पना कोई भी अटकलपच्चू, अनुमान, काल्पनिक विचार या सहज ज्ञान या और कुछ हो सकता है जो क्रिया या अन्वेषण का आधार बनता है।''

गुड तथा स्केट्स (1954 : 90) के अनुसार, ''एक उपकल्पना बुद्धिमत्तापूर्ण कल्पना या निष्कर्ष होती है जो अवलोकित तथ्यों या दशाओं को विश्लेषित करने के लिए निर्मित और अस्थायी रूप से अपनायी जाती है।''

गुडे तथा हॉट (1952:56) के शब्दों में कहा जाये तो, ''यह (उपकल्पना) एक मान्यता है जिसकी वैद्यता निर्धारित करने के लिए उसकी जाँच की जा सकती है।''

सरल एवं स्पष्ट शब्दों में कहा जाये तो, उपकल्पना शोध विषय के अन्तर्गत आने वाले विविध उद्देश्यों से सम्बन्धित एक काम चलाऊ अनुमान या निष्कर्ष है, जिसकी सत्यता की परीक्षा प्राप्त तथ्यों के आधार पर की जाती है। विषय से सम्बन्धित साहित्यों के अध्ययन के पश्चात् जब उत्तरदाता अपने अध्ययन विषय को पूर्णतः जान जाता है तो उसके मन में कुछ सम्भावित निष्कर्ष आने लगते हैं और वह अनुमान लगाता है कि अध्ययन में विविध मुद्दों के सन्दर्भ में प्राप्त तथ्यों के विश्लेषण के उपरान्त इस–इस प्रकार के निष्कर्ष आएंगे। ये सम्भावित निष्कर्ष ही उपकल्पनाएँ होती हैं। वास्तविक तथ्यों के विश्लेषण के उपरान्त कभी–कभी ये गलत साबित होती हैं और कभी–कभी सही। उपकल्पनाओं का सत्य प्रमाणिक होना या असत्य सिद्ध हो जाना विशेष महत्व का नहीं होता है। इसलिए शोधकर्त्ता को अपनी उपकल्पनाओं के प्रति लगाव या

मिथ्या झुकाव नहीं होना चाहिए अर्थात् उसे कभी भी ऐसा प्रयास नहीं करना चाहिए जिससे कि उसकी उपकल्पना सत्य प्रमाणित हो जाये। जो कुछ भी प्राथमिक तथ्यों से निष्कर्ष प्राप्त हों उसे ही हर हालात में प्रस्तुत किया जाना चाहिए। वैज्ञानिकता के लिए वस्तुनिष्ठता प्रथम शर्त है इसे ध्यान में रखते हुए ही शोधकर्ता को शोध कार्य सम्पादित करना चाहिए। उपकल्पना शोधकर्ता को विषय से भटकने से बचाती है। इस तरह एक उपकल्पना का इस्तेमाल दृष्टिहीन खोज से रक्षा करता है (यंग 1960 : 99)।

उपकल्पना या प्राक्कल्पना स्पष्ट एवं सटीक होनी चाहिए। वह ऐसी होनी चाहिए जिसका प्राप्त तथ्यों से निर्धारित अवधि में अनुभवजन्य परीक्षण सम्भव हो। यह हमेशा ध्यान में रखना चाहिए कि एक उपकल्पना और एक सामान्य कथन में अन्तर होता है। इस रूप में यदि देखा जाय तो कहा जा सकता है कि उपकल्पना में दो परिवर्त्यो में से किसी एक के निष्कर्षों को सम्भावित तथ्य में रूप में प्रस्तुत किया जाता है। उपकल्पना परिवर्त्यो के बीच सम्बन्धों के स्वरूप को अभिव्यक्त करती है। सकारात्मक, नकारात्मक और शून्य, ये तीन

सम्बन्ध परिवर्त्यो के मध्य माने जाते हैं। उपकल्पना परिवर्त्यो के सम्बन्धों को उद्घाटित करती है।

उपकल्पना जो कि फलदायी अन्वेषण का अस्थायी केन्द्रीय विचार होती है (यंग 1960 : 96), के निर्माण के चार स्रोतों का गुडे तथा हाट (1952 : 63–67) ने उल्लेख किया है–

(i) सामान्य संस्कृति (पप) वैज्ञानिक सिद्धान्त (iii) सादृश्य (Anology) (iv) व्यक्तिगत अनुभव। इन्हीं चार स्रोतों से उपकल्पनाओं का उद्गम होता है।

उपकल्पनाओं के बिना शोध अनिर्दिष्ट (unfocused), एक दैव आनुभविक भटकाव होता है।

उपकल्पना शोध में जितनी सहायक है, उतनी ही हानिकारक भी हो सकती है। इसलिए अपनी उपकल्पना पर जरुरत से ज्यादा विश्वास रखना या उसके प्रति पूर्वाग्रह रखना, उसे प्रतिष्ठा का प्रश्न बनाना कदापि उचित नही है। ऐसा यदि शोधकर्ता करता है, तो उसके शोध में वैषयिकता समा जायेगी और वैज्ञानिकता का अन्त हो जायेगा।

पंचम चरण– समग्र एवं निदर्शन निर्धारण शोध कार्य का पाँचवा चरण होता है। समग्र का तात्पर्य उन सबसे है, जिन पर शोध आधारित है या जिन पर शोध किया जा रहा है। उदाहरण के लिए यदि हम किसी विश्वविद्यालय के छात्रों से सम्बन्धित किसी पक्ष पर शोध कार्य करने जा रहे हैं, तो उस विश्वविद्यालय के समस्त छात्र अध्ययन का समग्र होंगे। इसी तरह यदि हम सामाजिक–आर्थिक विकासों का ग्रामीण महिलाओं पर प्रभाव का अध्ययन कर रहे हैं, तो चयनित ग्राम या ग्रामों की समस्त महिलाएँ अध्ययन समग्र होंगी। चूँकि किसी भी शोध कार्य में समय और साधनों की सीमा होती है और बहुत बड़े और लम्बी अवधि के शोध कार्य में सामाजिक

तथ्यों के कभी–कभी नष्ट होने का भय भी रहता है, इसलिए सामान्यतः छोटे स्तर (माइक्रो) के शोध कार्य को वरीयता दी जाती है। इस तथाकथित छोटे या लघु अध्ययन में भी सभी इकाईयों का अध्ययन सम्भव नही हो पाता है, इसलिए कुछ प्रतिनिधित्वपूर्ण इकाईयों का चयन वैज्ञानिक आधार पर कर लिया जाता है। इसी चुनी हुई इकाईयों को निदर्शन कहते हैं। सम्पूर्ण अध्ययन इन्हीं निदर्शित इकाईयों से प्राप्त तथ्यों पर आधारित होता है, जो सम्पूर्ण समग्र पर लागू होता है। यंग (1960 : 302) के शब्दों में कहा जाये तो कह सकते हैं कि, ''एक सांख्यकीय निदर्शन उस सम्पूर्ण समूह अथवा योग का एक अतिलघु चित्र या 'क्रास सेक्शन' है, जिससे निदर्शन लिया गया है।''

समग्र का निर्धारण ही यह तय कर देता है कि आनुभविक अध्ययन किन पर होगा। इसी स्तर पर न केवल अध्ययन इकाईयों का निर्धारण होता है, अपितु भौगोलिक क्षेत्र का भी निर्धारण होता है। और भी सरलतम रूप में कहा जाये तो इस स्तर में यह तय हो जाता है कि अध्ययन कहां (क्षेत्र) और किन पर(समग्र) होगा, साथ ही कितनों (निदर्शन) पर होगा।

उल्लेखनीय है कि अक्सर निदर्शन की आवश्यकता पड़ ही जाती है। ऐसी स्थिति में नमूने के तौर पर कुछ इकाईयों का चयन कर उनका अध्ययन कर लिया जाता है। ऐसे 'नमूने' हम दैनिक जीवन में भी प्रायः प्रयोग में लाते हैं। उदाहरण के लिए चावल खरीदने के लिए पूरे बोरे के चावलों को उलट–पलट कर नहीं देखा जाता है, अपितु कुछ ही चावल के दानों के आधार पर सम्पूर्ण बोरे के चावलों की गुणवत्ता को परख लिया जाता है। इसी तरह भगोने या कुकर में चावल पका है कि नहीं को ज्ञात करने के लिए कुकर के कुछ ही चावलों को उंगलियों मसलकर चावल के पकने या न पकने का निष्कर्ष निकाल लिया जाता है। इस तरह यह स्पष्ट है कि ये जो 'कुछ ही चावल' सम्पूर्ण चावल का प्रतिनिधित्व कर रहे हैं, यानि जिनके आधार पर हम उसकी गुणवत्ता या पकने का निष्कर्ष निकाल रहे हैं, निदर्शन (सैम्पल) ही है। गुडे और हाट (1952 : 209) का कहना है कि, ''एक निदर्शन, जैसा कि इसके नाम से ही स्पष्ट है, किसी विशाल सम्पूर्ण का लघु प्रतिनिधि है।''

निदर्शन की मोटे तौर पर दो पद्धतियाँ मानी जाती हैं– एक को सम्भावनात्मक निदर्शन कहते हैं, और दूसरी को असम्भावनात्मक या सम्भावना–रहित निदर्शन। इन दोनों पद्धतियों के अन्तर्गत निदर्शन के अनेकों प्रकार प्रचलन में हैं। निदर्शन की जिस किसी भी पद्धति अथवा प्रकार का चयन किया जाये, उसमें विशेष सावधानी अपेक्षित होती है, ताकि उचित निदर्शन प्राप्त हो सके।

कभी–कभी निदर्शन की जरुरत नहीं पड़ती है। इसका मुख्य कारण समग्र का छोटा होना हो सकता है, या अन्य कारण भी हो सकते हैं जैसे सम्बन्धित समग्र या इकाई का आँकड़ा अनुपलब्ध हो, उसके बारे में कुछ पता न हो इत्यादि। ऐसी परिस्थिति में सम्पूर्ण समग्र का अध्ययन किया जाता है। ऐसा ही जनगणना कार्य में भी किया जाता है, इसीलिए इस विधि को 'जनगणना' या 'संगणना' विधि कहा जाता है, और इसमें समस्त इकाईयों का अध्ययन किया जाता है। इस तरह यह स्पष्ट है कि, सामाजिक शोध में हमेशा निदर्शन लिया ही जायेगा यह जरूरी नहीं होता है, कभी–कभी बिना निदर्शन प्राप्त किये ही 'संगणना विधि' द्वारा भी अध्ययन इकाईयों से प्राथमिक तथ्य संकलित कर लिये जाते हैं।

छठवाँ चरण– प्राथमिक तथ्य संकलन का वास्तविक कार्य तब प्रारम्भ होता है, जब हम तथ्य संकलन की तकनीक/उपकरण, विधि इत्यादि निर्धारित कर लेते हैं। उपयुक्त और यथेष्ट तथ्य संकलन तभी संभव है जब हम अपने शोध की आवश्यकता, उत्तरदाताओं की विशेषता तथा उपयुक्त तकनीक एवं प्रविधियों, उपकरणों/मापकों इत्यादि का चयन करें। प्राथमिक तथ्य संकलन उत्तरदाताओं से सर्वेक्षण के आधार पर और प्रयोगात्मक पद्धति से हो सकता है।

प्राथमिक तथ्य संकलन की अनेकों तकनीकें/उपकरण प्रचलन में हैं, जिनके प्रयोग द्वारा उत्तरदाताओं से सूचनाएँ एवं तथ्य प्राप्त किये जाते हैं। ये उपकरण या तकनीकें मौखिक अथवा लिखित हो सकती हैं, और इनके प्रयोग किये जाने के तरीकें अलग–अलग होते हैं।

शोध की गुणवत्ता इन्हीं तकनीकों तथा इन तकनीकों के उचित तरीकें से प्रयोग किये जाने पर निर्भर करती है। उपकरणों या तकनीकों की अपनी–अपनी विशेषताएँ एवं सीमाएँ होती हैं। शोधकर्त्ता शोध विषय की प्रकृति, उद्देश्यों, संसाधनों की उपलब्धता (धन और समय) तथा अन्य विचारणीय पक्षों पर व्यापक रूप से सोच–समझकर इनमें से किसी एक तकनीक (तथ्य एकत्र करने का तरीका) का सामान्यतः प्रयोग करता है। कुछ प्रमुख उपकरण या तकनीकें इस प्रकार हैं– प्रश्नावली, साक्षात्कार, साक्षात्कार अनुसूची, साक्षात्कार–मार्गदर्शिका (इन्टरव्यू गाईड) इत्यादि। विधि से तात्पर्य सामग्री विश्लेषण के साधनों से है। प्रायः तकनीक/उपकरण और विधियों को परिभाषित करने में भ्रामक स्थिति बनी रहती है। स्पष्टता के लिए यहाँ उल्लेखनीय है कि विधि उपकरणों या तकनीकों से अलग किन्तु अन्तर्सम्बद्ध वह तरीका है जिसके द्वारा हम एकत्रित सामग्री की व्याख्या करने के लिए सैद्धान्तिक परिप्रेक्ष्यों का प्रयोग करते हैं। शोध कार्य में प्रक्रियात्मक नियमों के साथ विभिन्न तकनीकों के सम्मिलन से शोध की विधि बनती है। इसके अन्तर्गत अवलोकन, केस–स्टडी, जीवन–वृत्त इत्यादि शोध की विधियाँ उल्लेखनीय हैं।

सप्तम चरण– प्राथमिक तथ्य संकलन शोध का अगला चरण होता है। शोध के लिए प्राथमिक तथ्य संकलन हेतु जब उपकरणों एवं प्रविधियों का निर्धारण हो जाता है, और उन उपकरणों एवं तकनीकों का अध्ययन के उद्देश्यों के अनुरूप निर्माण हो जाता है, तो उसके पश्चात् क्षेत्र में जाकर वास्तविक तथ्य संकलन का अति महत्वपूर्ण कार्य प्रारम्भ होता है। कभी–कभी उपकरणों या तकनीकों की उपयुक्तता जाँचने के लिए और उसके द्वारा तथ्य संकलन का कार्य प्रारम्भ करने के पहले पूर्व–अध्ययन (पायलट स्टडी) द्वारा उनका पूर्व परीक्षण किया जाता है।

यदि कोई प्रश्न अनुपयुक्त पाया जाता है या कोई प्रश्न संलग्न करना होता है या और कुछ संशोधन की आवश्यकता पड़ती है तो उपकरण में आवश्यक संशोधन कर मुख्य तथ्य संकलन का कार्य प्रारम्भ कर दिया जाता है। सामान्यतः समाजशास्त्रीय शोध में प्राथमिक तथ्य संकलन को अति सरल एवं सामान्य कार्य मानने की भूल की जाती है। वास्तविकता यह है कि यह एक अत्यन्त दुरुह एवं महत्वपूर्ण कार्य होता है, तथा शोधकर्ता की पर्याप्त कुशलता ही वांछित तथ्यों को प्राप्त करने में सफल हो सकती है। शोधकर्ता को यह प्रयास करना चाहिए कि उसका कार्य व्यवस्थित तरीके से निश्चित समयावधि में पूर्ण हो जाये। उल्लेखनीय है कि कभी–कभी उत्तरदाताओं से सम्पर्क करने की विकट समस्या उत्पन्न होती है और अक्सर उत्तरदाता सहयोग करने को तैयार भी नहीं होते हैं। ऐसी परिस्थिति में पर्याप्त सुझ–बुझ तथा परिपक्वता की आवश्यकता पड़ती है। उत्तरदाताओं को विषय की गंभीरता को तथा उनके सहयोग के महत्व को समझाने की जरुरत पड़ती है। उत्तरदाताओं से झूठे वादे नहीं करने चाहिए और न उन्हें किसी प्रकार का प्रलोभन देना चाहिए। उत्तरदाताओं की सहूलियत के अनुसार ही उनसे सम्पर्क करने की नीति को अपनाना उचित

होता है। यथासम्भव घनिष्ठता बढ़ाने के लिए (संदेह दूर करने एवं सहयोग प्राप्त करने के लिए) प्रयास करना चाहिए। तथ्य संकलन अनौपचारिक माहौल में बेहतर होता है। कोशिश यह करनी चाहिए कि उस स्थान विशेष के किसी ऐसे प्रभावशाली, लोकप्रिय, समाजसेवी व्यक्ति का सहयोग प्राप्त हो जाये जिसकी सहायता से उत्तरदाताओं से न केवल सम्पर्क आसानी से हो जाता है। अपितु उनसे वांछित सूचनाएँ भी सही–सही प्राप्त हो जाती है।

यदि तथ्य संकलन का कार्य अवलोकन द्वारा या साक्षात्कार–अनुसूची, साक्षात्कार इत्यादि द्वारा हो रहा हो, तब तो क्षेत्र विशेष में जाने तथा उत्तरदाताओं से आमने–सामने की स्थिति में प्राथमिक सूचनाओं को प्राप्त करने की जरुरत पड़ती है। अन्यथा यदि प्रश्नावली का प्रयोग होना है, तो शोधकर्ता को सामान्यतः क्षेत्र में जाने की जरूरत नहीं पड़ती है। प्रश्नावली को डाक द्वारा और आजकल तो ई–मेल के द्वारा इस अनुरोध के साथ उत्तरदाताओं को प्रेषित कर दिया जाता है कि वे यथाशीघ्र (या निर्धारित समयाविधि में) पूर्ण रूप से भरकर उसे वापस शोधकर्ता को भेज दें।

यदि शोध कार्य में कई क्षेत्र–अन्वेषक कार्यरत हों, तो वैसी स्थिति में उनको समुचित प्रशिक्षण तथा तथ्य संकलन के दौरान उनकी पर्याप्त निगरानी की आवश्यकता पड़ती है। प्रायः अन्वेषक प्राथमिक तथ्यों की महत्ता को समझ नहीं पाते हैं, इसलिए वे वास्तविक तथ्यों को प्राप्त करने में विशेष प्रयास और रुचि नहीं लेते हैं। अक्सर तो वे मनगढ़न्त अनुसूची को भर भी देते हैं। इससे सम्पूर्ण शोधकार्य की गुणवत्ता प्रभावित न हो जाये, इसके लिए विशेष सावधानी तथा रणनीति आवश्यक है ताकि सभी अन्वेषक पूर्ण निष्ठा एवं ईमानदारी के साथ प्राथमिक तथ्यों का संकलन करें। तथ्य संकलन के दौरान आवश्यक उपकरणों जैसे टेपरिकार्डर, वायस रिकार्डर, कैमरा, विडियों कैमरा इत्यादि का भी प्रयोग किया जा सकता है। इनके प्रयोग के पूर्व उत्तरदाता की सहमति जरूरी है।प्राथमिक तथ्यों को संकलित करने के साथ ही साथ एकत्रित सूचनाओं की जाँच एवं आवश्यक सम्पादन भी करते जाना चाहिए। भूलवश छूटे हुए प्रश्नों, अपूर्ण उत्तरों इत्यादि को यथासमय ठिक करवा लेना चाहिए। कोई नयी महत्वपूर्ण सूचना मिले तो उसे अवश्य नोट कर लेना चाहिए।

तथ्यों का दूसरा स्रोत है द्वितीयक स्रोत द्वितीयक स्रोत तथ्य संकलन के वे स्रोत होते है, जिनका विश्लेषण एवं निर्वचन दूसरे के द्वारा हो चुका होता है। अध्ययन की समस्या के निर्धारण के समय से ही द्वितीयक स्रोतों से प्रात तथ्यों का प्रयोग प्रारम्भ हो जाता है और रिपोर्ट लेखन के समय तक स्थान–स्थान पर इनका प्रयोग होता रहता है।

अष्ठम चरण : आठवाँ चरण वर्गीकरण, सारणीयन एवं विश्लेषण अथवा रिपोर्ट लेखन का होता है। विविध उपकरणों या तकनीकों एवं प्रविधियों के माध्यम से एकत्रित समस्त गुणात्मक सामग्री को गणनात्मक रूप देने के लिए विविध वर्गों में रखा जाता है, आवश्यकतानुसार सम्पादित किया जाता है, तत्पश्चात् सारिणी में गणनात्मक स्वरूप (प्रतिशत सहित) देकर विश्लेषित किया जाता है। कुछ वर्षो पूर्व तक सम्पूर्ण एकत्रित सामग्री

को अपने हाथों से बड़ी–बड़ी कागज की शीटों पर कोडिंग करके उतारा जाता था तथा स्वयं शोधकर्ता एक–एक केस/अनुसूची से सम्बन्धित तथ्य की गणना करते हुए सारणी बनाता था। आज कम्प्यूटर का शोध कार्यों में व्यापक रूप से प्रचलन हो गया है। समाजवैज्ञानिक शोधों में कम्प्यूटर के विशेष सॉफ्टवेयर उपलब्ध हैं, जिनकी सहायता से सभी प्रकार की सारणियाँ (सरल एवं जटिल) शीघ्रातिशीघ्र बनायी जाती हैं। एस.पीएएसएएस. (स्टैटिस्टिकल पैकेज फार सोशल साइंसेज) एक ऐसा ही प्रोग्राम है, जिसका प्रचलन तेजी से बढ़ा है। समाजवैज्ञानिक शोधों में एस.पी.एस.एस. द्वारा सारिणीयाँ बनायी जा रही हैं। विविध परिवर्त्यों में सह–सम्बन्ध तथा सांख्यकीय परीक्षण इसके द्वारा अत्यन्त सरल हो गया है।

सारिणीयों के निर्मित हो जाने के पश्चात् उनका तार्किक विश्लेषण किया जाता है। तथ्यों में कार्य–कारण सम्बन्ध तथा सह–सम्बन्ध देखे जाते हैं। इसी चरण में उपकल्पनाओं की सत्यता की परीक्षा भी की जाती है। सैद्धान्तिक एवं अवधारणात्मक पृष्ठभूमि को ध्यान में रखते हुए समस्त शोध सामग्री को व्यवस्थित एवं तार्किक तरीके से विविध अध्यायों में रखकर विश्लेषित करते हुए शोध रिपोर्ट तैयार की जाती है।

अध्ययन के अन्त में परिशिष्ट के अन्तर्गत सन्दर्भ–ग्रन्थ सूची तथा प्राथमिक तथ्य संकलन की प्रयुक्त की गयी तकनीक (अनुसूची या प्रश्नावली या स्केल इत्यादि) को संलग्न किया जाता है। सम्पूर्ण रिपोर्ट/प्रतिवेदन में स्थान–स्थान पर विषय भी आवश्यकता के अनुसार फोटोग्राफ, डाईग्राम, ग्राफ, नक्शे, स्केल इत्यादि रखे जाते हैं।

उपरोक्त रिपोर्ट लेखन के सन्दर्भ में ही उल्लेखनीय है कि, शोध रिपोर्ट या प्रतिवेदन का जो कुछ भी उद्देश्य हो, उसे यथासम्भव स्पष्ट होना चाहिए (मेटा स्पेन्सर, 1979 : 47)। सेल्टिज तथा अन्य (1959:443) का कहना है कि, रिपोर्ट में शोधकर्ता को निम्नांकित बातें स्पष्ट करनी चाहिए–

1. समस्या की व्याख्या करें जिसे अध्ययनकर्ता सुलझाने की कोशिश कर रहा है।

2. शोध प्रक्रिया की विवेचना करें, जैसे निदर्शन कैसे लिया गया और तथ्यों के कौन से स्रोत प्रयोग किए गये हैं।

3. परिणामों की व्याख्या करें।

4. निष्कर्षों को सुझायें जो कि परिणामों पर आधारित हों। साथ ही ऐसे किसी भी प्रश्न का उल्लेख करें जो अनुत्तरीत रह गया हो और जो उसी क्षेत्र में और अधिक शोध की मांग कर रहा हो।

गेराल्ड आर. लेस्ली तथा अन्य (1994:35) का कहना है कि, ''समाजशास्त्रीय शोधों में विश्लेषण और व्याख्या अक्सर सांख्यिकीय नही होती। इसमें साहित्य और तार्किकता की आवश्यकता होती है। यद्यपि आजकल बहुत से विद्वान अतिक्लिष्ट सांख्यिकीय पद्धति का

भी प्रयोग करने लगे हैं। प्रत्येक समाजशास्त्री समस्या के सर्वाधिक उपयुक्त तरीकों जो सर्वाधिक ज्ञान एवं समझ पैदा करने वाला होता है, के अनुरूप शोध और तथ्य संकलन तथा विश्लेषण को अपनाता है। उपागमों का प्रकार केवल अन्य समाजशास्त्रियों के शोध को स्वीकार करने तथा यह विश्वास करने के लिए कि यह क्षेत्र में योगदान देगा कि इच्छा के कारण सीमित होता हैं।''

अन्त में यह कहा जा सकता है कि, यद्यपि सभी शोधकर्त्ता समाजशास्त्रीय पद्धति के इन्हीं चरणों से गुजरते हैं तथापि कई चरणों को दूसरी तरीके से प्रयोग करते हैं। गेराल्ड आर. लेस्ली (1994:38) तथा अन्य का कहना है कि, ''यह विविधता समाजशास्त्र को मजबूती प्रदान करती है और अपने द्वारा अध्ययन की जाने वाली समस्याओं के विस्तार को बढ़ाती है।''

1.5 सामाजिक शोध का अध्ययन क्षेत्र एवं सार्थकता :

समाजशास्त्र का अध्ययन क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है। स्वाभाविक है कि सामाजिक शोध का क्षेत्र भी अत्यन्त व्यापक होता है। सामाजिक शोध के विस्तृत क्षेत्र को कार्ल पियर्सन (1937 : 16) के इस कथन से आसानी से समझा जा सकता है कि, ''सामाजिक शोध का क्षेत्र वस्तुतः असीमित है,

और शोध की सामग्री अन्तहीन। सामाजिक घटनाओं का प्रत्येक समूह सामाजिक जीवन का प्रत्येक पहलू, पूर्व और वर्तमान विकास का प्रत्येक चरण सामाजिक वैज्ञानिक के लिए सामग्री है।'' पी.वी. यंग (1977 : 34–98) ने सामाजिक शोध के क्षेत्र की व्यापक विवेचना करते हुए विविध विद्वानों के अध्ययनों यथा कूले, मीड थामस, नैनकी, पार्क, बर्गेस, लिण्डस्, सी. राईट मिल्स, एंगेल, कोमोरोस्की, मर्डाल, स्टॉफर, मर्डोक, मर्टन, गौर्डन, आलपोर्ट, ब्लूमर, बेल्स, मैज का विवरण प्रस्तुत किया है।

एक समाजशास्त्री सामाजिक जीवन की किसी विशिष्ट अथवा सामान्य घटना को शोध हेतु चयन कर सकता है। सामाजिक शोध के अध्ययन क्षेत्र के अन्तर्गत मानव समाज व मानव जीवन के सभी पक्ष आते हैं। समाजशास्त्र की विविध विशेषीकृत शाखाओं यथा– ग्रामीण समाजशास्त्र, नगरीय समाजशास्त्र, औद्योगिक समाजशास्त्र, वृद्धावस्था का समाजशास्त्र, युवाओं का समाजशास्त्र, चिकित्सा का समाजशास्त्र, विचलन का समाजशास्त्र, सामाजिक आन्दोलन, सामाजिक वहिष्करण, सामाजिक परिवर्तन, विकास का समाजशास्त्र, जेण्डर स्टडीज, कानून का समाजशास्त्र, दलित अध्ययन, शिक्षा का समाजशास्त्र, परिवार एवं विवाह का समाजशास्त्र इत्यादि–इत्यादि से सामाजिक शोध का व्यापक क्षेत्र स्वतः ही स्पष्ट हो जाता है।

सामाजिक शोध के उपरोक्त विस्तृत क्षेत्र के परिप्रेक्ष्य में यह कहना कदापि गलत न होगा कि एक विस्तृत सामाजिक क्षेत्र के सम्बन्ध में वैज्ञानिक ज्ञान प्रदान करके सामाजिक शोध अज्ञानता का विनाश करता है। जब हम वृद्धों की समस्याओं, मजदूरों के शोषण और उनकी

शोचनीय कार्यदशाओं, बाल मजदूरी, महिला कामगारों की समस्याओं, भिक्षावृत्ति, वेश्यावृत्ति, बेकारी इत्यादि पर सामाजिक शोध करते हैं, तो उसके प्राप्त परिणामों से न केवल समाज कल्याण के क्षेत्र में सहायता प्राप्त होती है अपितु सामाजिक नीतियों के निर्माण के लिए भी आधार उपलब्ध होता है। विविध सामाजिक समस्याओं से सम्बन्धित शोध कार्य कानून निर्माण की दिशा में भी योगदान करते हैं। सामाजिक शोध से सैद्धान्तिक एवं अवधारणात्मक समझ विकसित होती है, कार्य–कारण सम्बन्ध ज्ञात होते हैं और अन्ततः विषय की उन्नति होती है। सामाजिक शोध न केवल सामाजिक नियन्त्रण में सहायक होता है, अपितु सामाजिक शोध साामाजिक–आर्थिक प्रगति में भी सहायक होता है। सूचना क्रान्ति के इस युग में भूमण्डलीकरण की प्रक्रिया ने समाजशास्त्रीय शोध के क्षेत्र को बढ़ा दिया है। पुराने विचार और सिद्धान्त अप्रासंगिक होते जा रहे हैं। नवीन परिस्थितियों ने जटिल सामाजिक यथार्थ को नये सिद्धान्तों एवं विचारों से समझने के लिए बाध्य कर दिया है। सामाजिक शोध के सैद्धान्तिक और व्यावहारिक महत्व का ही परिणाम है कि आज नीति निर्माता, कानूनविद्, पत्रकारिता जगत, प्रशासक, समाज सुधारक, स्वैच्छिक संगठन, बौद्धिक वर्ग के लोग इससे विशेष अपेक्षा रखते हैं।

1.6 निष्कर्ष :

उपरोक्त समस्त विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि सामाजिक जीवन के विविध पक्षों का वैज्ञानिक अध्ययन सामाजिक शोध है, जिसके सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक उद्देश्य होते हैं। शोध की सम्पूर्ण प्रक्रिया विविध चरणों से गुजरती हुई पूर्ण होती है। वस्तुनिष्ठता से युक्त सामाजिक शोध से न केवल विषय की समझ विकसित होती है, अपितु नवीन ज्ञान की प्राप्ति के साथ–साथ यह सामाजिक नियन्त्रण, समाज कल्याण, सामाजिक–आर्थिक प्रगति, नीति–निर्माण इत्यादि ने भी सहायक होता है। आपको इस इकाई से जो ज्ञान प्राप्त हुआ है उसकी सहायता से आस–पास की किसी एक लघु शोध समस्या का चयन करना है तथा शोध के बताये गये चरणों का अनुसरण करते हुए लघु रिपोर्ट प्रस्तुत करनी है।

1.7 शब्दावली

शोध : किसी क्षेत्र विशेष में नवीन ज्ञान की खोज या पुराने ज्ञान का पुनः परीक्षण अथवा दूसरे तरीके से विश्लेषण कर नवीन तथ्यों का उद्घाटन करना शोध कहलाता है।

सामाजिक शोध : सामाजिक घटनाओं एवं समस्याओं के सम्बन्ध में नये ज्ञान की प्राप्ति हेतु व्यवस्थित अन्वेषण को हम सामाजिक शोध कहते हैं

1.8 अभ्यास प्रश्न

1. सामाजिक शोध किसे कहते है ?
2. सामाजिक शोध के अध्ययन क्षेत्र एवं सार्थकता पर प्रकाश डालिए ?

3. सामाजिक शोध के चरणों का उल्लेख कीजिए ?

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- यंग, पी.वी., 'साईण्टिफिक सोशल सर्वेस एण्ड रिसर्च, इण्डियन रिप्रिन्टस, फोर्थ प्रिन्टिंग, प्रेन्टि्स हॉल ऑफ इण्डिया प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली, 1977
- मोज़र, सी.ए, 'सर्वे मेथड्स इन सोशल इन्वेस्टिगेशन, न्यूयार्कः दी मैकमिलन कम्पनी, 1961.
- गुडे एण्ड हाट, 'मेथड्स ऑफ सोशल रिसर्च, मैकग्रा–हिल बुक कम्पनी, न्यूयार्क, 1952.
- सारन्ताकोस, एसण 'सोशल रिसर्च', मैकमिलन : लन्दन, 1998.

इकाई–2

सामाजिक अनुसंधान के प्रकार
Types of Social Research

इकाई की रूपरेखा :

2.1 उद्देश्य

2.2 प्रस्तावना

2.3 अन्वेषणात्मक सामाजिक अनुसंधान

2.4 वर्णनात्मक सामाजिक अनुसंधान

2.5 परीक्षणात्मक सामाजिक अनुसंधान

2.6 विशुद्ध सामाजिक अनुसंधान

2.7 व्यवहारिक सामाजिक अनुसंधान

2.8 क्रियात्मक सामाजिक अनुसंधान

2.9 मूल्यांकनात्मक सामाजिक अनुसंधान

2.10 शब्दावली

2.11 अभ्यास प्रश्न

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

2.1 उद्देश्य

इस इकाई का प्रमुख उददेश्य सामाजिक अनुसंधान के विभिन्न प्रकारों के बारे में ज्ञान प्राप्त कराना है।

2.2 प्रस्तावना

आज जिन आधारों पर सामाजिक अनुसंधान को विकसित किया जा रहा है उनमें अवलोकन और सत्यापन पर आधारित अनुभवसिद्ध ज्ञान का महत्व अधिक है। सभी सामाजिक अनुसंधान समान प्रकृति के नहीं होते है। सामाजिक घटनाओं की प्रकृति विविधता पूर्ण होने के कारण विभिन्न अध्ययन के उददेष्य के अनुसार सामाजिक अनुसंधान की रूपरेखा भी भिन्न भिन्न प्रकार की होती है। विभिन्न अनुसंधान कार्यो में प्रयुक्त पद्धतियों की प्रकृति भी एक दूसरे से भिन्न होती है। इस दृष्टिकोण से सामाजिक अनुसंधान के उन विभिन्न प्रकारों को समझना जरूरी है। जिनकी प्रकृति और उददेष्य एक दूसरे से भिन्न हो सकती है।

2.3 अन्वेषणात्मक सामाजिक अनुसंधान (Exploratory Social Research)

जब किसी समस्या के सैद्धान्तिक तथा व्यावहारिक पक्ष की पर्याप्त जानकारी नहीं होती तथा अनुसन्धानकर्ता का उददेष्य किसी विषेष सामाजिक घटना के लिए उत्तरदायी कारणों को

खोज निकालना होता है। तब अध्ययन के लिए जिस अनुसंधान का सम्बन्ध प्राथकमिक अनुसन्धान से है। जिसके अर्न्तगत समस्या के विषय में प्राथमिक जानकारी प्राप्त करके भावी अध्ययन की आधार षिला तैयार की जाती है। इस प्रकार के शोध का सहारा तब लिया जाता है, जब विषय से सम्बन्धित कोई सूचना अथवा साहित्य उपलब्ध न हो और विषय के सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक पक्ष के सम्बन्ध में पर्याप्त ज्ञान प्राप्त करना हो, जिससे कि उपकल्पना का निर्माण किया जा सके।

इस प्रकार के शोध के लिये अनुसंधानकर्त्ता को निम्न चरणों को अपनाना आवश्यक होता है:–

(i)साहित्य का सर्वेक्षण

(ii)अनुभव सर्वेक्षण

(iii)सूचनादाताओं का चयन

(iv)उपर्युक्त प्रश्न पूछना

अन्वेषणात्मक अनुसंधान का महत्व

1. अनुसंधान समस्या के महत्व पर प्रकाष डालना तथा सम्बन्धित विषय पर अनुसंधानकर्ताओं के ध्यान को आकर्षित करना
2. पूर्व निर्धारित परिकल्पनाओं का तात्कालिक दशाओं में परीक्षण करना
3. विभिन्न अनुसंधान पद्धतियों की उपयुक्तता की सम्भावना को स्पष्ट करना
4. किसी विषय समस्या के व्यापक और गहन अध्ययन के लिए एक व्यवहारिक आधारशिला तैयार करना

2.4 वर्णनात्मक अनुसंधान (Descriptive Research)

वर्णनात्मक अनुसंधान का उददेष्य किसी अध्ययन विषयक के बारे में यर्थात तथा तथ्य एकत्रित करके उन्हें एक विवरण के रूप में प्रस्तुत करना होता है। सामाजिक जीवन के अध्ययन से सम्बन्धित अनेक विषय इस तरह के होते है जिनका अतीत में कोई गहन अध्ययन प्राप्त नहीं होता ऐसी दषा में यह आवष्यक होता है कि अध्ययन से सम्बन्धित समूह समूदाय अथवा विषय के बारे में अधिक से अधिक सूचनायें एकत्रिक करके उन्हें जनसामान्य के समक्ष्य प्रस्तुत की जाये ऐसे अध्ययनों के लिए जो अनुसंधान किया जाता है। उसे वर्णनात्मक अनुसंधान कहते है। इस प्रकार के अनुसंधान में किसी पूर्व निर्धारित सामाजिक घटना, सामाजिक परिस्थिति अथवा सामाजिक संरचना का विस्तृत विवरण देना होता है। अनुसंधान हेतु चयनित सामाजिक घटना या सामाजिक समस्या के विभिन्न पक्षों से सम्बन्धित तथ्यों को एकत्रित करके उनका तार्किक विश्लेषण किया जाता है, एवं निष्कर्ष निकाले जाते हैं। तथ्यों को एकत्रित करने के लिये, प्रश्नावली, साक्षात्कार अथवा अवलोकन आदि किसी भी प्रविधि का प्रयोग किया जा सकता है। ऐसे अनुसंधान को स्पष्ट करने के लिये जन

गणना उपक्रम का उदाहरण लिया जा सकता। जन गणना में भारत के विभिन्न प्रान्तों में भिन्न–भिन्न विशेषताओं से युक्त समूहों का संख्यात्मक तथा, आंशिक तौर पर, गुणात्मक विवरण दिया जाता है।

वर्णनात्मक अनुसंधान के चरण

1. अध्ययन विषय का चुनाव
2. अनुसंधान के उददेष्यों का निर्धारण
3. तथ्य संकलन की प्रविधियों का निर्धारण
4. निदर्शन का चुनाव
5. तथ्यों का संकलन
6. तथ्यों का विष्लेषण
7. प्रतिवेदन को प्रस्तुत करना

2.5 परीक्षणात्मक अनुसंधान (Experimental Research)

समाजशास्त्रीय अनुसंधान की वैज्ञानिकता के विरूद्ध यह आरोप लगाया जाता है कि इसमें प्रयोगी करण का अभाव होने का कारण इसे वैज्ञानिक नहीं कहा जा सकता है। जिस प्रकार प्राकृतिक विज्ञानों में अध्ययन विषय को नियन्त्रित करके घटनाओं का अध्ययन किया जाता है, उसी प्रकार नियन्त्रित परिस्थितियों में सामाजिक घटनाओं का निरीक्षण एवं परीक्षण परीक्षणात्मक अनुसंधान कहलाता है।

इस प्रकार के अनुसंधान द्वारा यह जानने का प्रयास किया जाता है कि किसी नवीन परिस्थिति अथवा परिवर्तन का समाज के विभिन्न समूहों, संस्थाओं अथवा संरचनाओं पर क्या एवं कितना प्रभाव पड़ा है। इसके लिये सामाजिक समस्या या घटना के उत्तरदायी कुछ चरों (Attributes) को नियन्त्रित करके, शेष चरों के प्रभाव को नवीन परिस्थितियों में देखा जाता है, और कार्य कारण सम्बन्धों की व्याख्या की जाती है।

परीक्षणात्मक अनुसंधान के निम्न तीन प्रकार हैंः–

(i) पश्चात् परीक्षण (ii) पूर्व पश्चात् परीक्षण (iii) कार्यान्तर परीक्षण

(i) पश्चात् परीक्षण (After only experiment)

पश्चात परीक्षण वह प्रविधि है जिसके अर्न्तगत पहले स्तर पर लगभग समान विषेषता वाले दो समूहो का चयन कर लिया जाता है। जिनमें से एक समूह को नियन्त्रित समूह (controlled group) कहा जाता है; क्योंकि उसमें कोई परिवर्तन नहीं लाया जाता है। दूसरा समूह परीक्षणात्मक समूह (experimental group) होता है; इसमें चर के प्रभाव में परिवर्तन करने का प्रयास किया जाता है। कुछ समय पश्चात् दोनों समूहों का अध्ययन किया जाता है। यदि परीक्षणात्मक समूह में नियन्त्रित समूह की तुलना में अधिक परिवर्तन आता है, तो इसका अर्थ यह माना जाता है कि इस परिवर्तन का कारण वह चर है जिसे

परिक्षणात्मक समूह में लागू किया गया था। उदाहरणस्वरूप, दो समान समूहों या गॉवों को लिया गया–जो कुपोषण की समस्या से ग्रस्त हैं। इनमें से एक समूह, में जिसे परीक्षणात्मक समूह माना गया है, कुपोषण के विरुद्ध प्रचार–प्रसार किया जाता है एवं जागरूकता पैदा की जाती है। एक निश्चित अवधि के पश्चात् परीक्षणात्मक समूह की तुलना नियन्त्रित समूह से की जाती है जिसे ज्यों का त्यों रहने दिया गया। यदि परीक्षणात्मक समूह में कुपोषण को लेकर नियन्त्रित समूह की तुलना में काफी अन्तर पाया जाता है तो इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि प्रचार–प्रसार एवं जागरूकता से कुपोषण को कम किया जा सकता है।

(ii) पूर्व पश्चात् परीक्षण (Before after experiment):

इस विधि के अर्न्तगत अध्ययन के लिए केवल एक ही समूह का चयन किया जाता है। ऐसे अनुसंधान के लिए चयनित समूह का दो विभिन्न अवधियों में अध्ययन करके पूर्व और पश्चात के अन्तर को देखा जाता है। इसी अन्तर को परीक्षण अथवा उपचार का परिणाम मान लिया जाता है।

(iii) कार्यान्तर तथ्य परीक्षण (Ex-post facto experiment):

यह वह विधि है जिसमें हम विभिन्न आधारों पर प्राचीन अभिलेखों के विभिन्न पक्षों की तुलना करके एक उपयोगी निष्कर्ष पर पहुँच सकते है। ऐसे अनुसंधान के लिए चयनित समूह का दो विभिन्न अवधियों में अध्ययन करके पूर्व और पश्चात के अन्तर को देखा जाता है। इस विधि का प्रयोग भूतकाल में घटी अथवा ऐतिहासिक घटना का अध्ययन करने के लिये किया जाता है। भूतकाल में घटी हुई घटना को दुबारा दोहराया नहीं जा सकता है। ऐसी स्थिति में उत्तरदायी कारणों को जानने के लिये इस विधि का प्रयोग किया जाता है। इस विधि द्वारा अध्ययन हेतु

दो ऐसे समूहों को चुना जाता है जिनमें से एक समूह ऐसा है जिसमें कोई ऐतिहासिक घटना घटित हो चुकी है। एवं दूसरा ऐसा समूह ऐसा है जिसमें वैसी कोई घटना घटित नहीं हुई है।

2.6 विशुद्ध अनुसंधान (Pure Research):

समाजिक अनुसंधान का उददेष्य जब किसी समस्या का समाधान ढूढ़ना नहीं होता है। बल्कि सामाजिक घटनाओं के बीच पाये जाने वाले कार्य कारण के सम्बन्धों समझकर विषय से सम्बन्धित वर्तमान ज्ञान में वृद्धि करना होता है तब इसे हम विषुद्ध अनुसंधान कहते है। विशुद्ध सामाजिक अनुसंधान का कार्य, नवीन ज्ञान की प्राप्ति कर, ज्ञान के भण्डार में वृद्धि करना है। साथ ही, पूर्व के अनुसंधानों से प्राप्त ज्ञान, पूर्व में बनाये गये सिद्धान्तों एवं नियमों को परिवर्तित परिस्थितियों में पुनःपरीक्षण करके परिमार्जन, परिष्करण एवं परिवर्द्धन करना है। इस प्रकार विशुद्ध सामाजिक अनुसंधान के उद्देश्यों को निम्नाकिंत रूप से व्यक्त किया जा सकता है।

विशुद्ध सामाजिक अनुसंधान के उद्देश्य

↓	↓	↓	↓	↓
नवीन ज्ञान की प्राप्ति का परीक्षण	नवीन अवधारणाों का प्रति–पादन	उपलब्ध अनुसंधान विधियों का जॉच	कार्यकारण सम्बन्ध बताना	पूर्व ज्ञान की पुनः परीक्षण

संक्षेप में, यह कहा जा सकता है कि विशुद्ध सामाजिक अनुसंधान विज्ञान की प्रगति एवं विकास में अत्यन्त उपयोगी है।

2.7 व्यावहारिक अनुसंधान (Applied Research)

एक अनुसंधान कर्ता जब स्वीकृत सिद्धान्तों के आधार पर किसी समस्या का इस दृष्टिकोण से अध्ययन करता है कि वह एक व्यवहारिक समाधान खो सके ऐसे अनुसंधान को हम व्यवहारिक अनुसंधान कहते है। विशुद्ध सामाजिक अनुसंधान का उद्देश्य सामाजिक समस्याओं के सम्बन्ध में नवीन ज्ञान प्राप्त करना ही नहीं है, वरन् सामाजिक जीवन के विभिन्न पक्षों जैसे जनसंख्या, धर्म, शिक्षा, स्वास्थ्य, आर्थिक एवं धार्मिक समस्याओं का वैज्ञानिक अध्ययन करना एवं इनके कार्य–कारण सम्बन्धों की तर्कसंगत व्याख्या करना भी है। अतः, व्यावहारिक अनुसंधान का सम्बन्ध हमारे व्यावहारिक जीवन से है। इस संदर्भ में श्रीमती यंग ने लिखा है, "ज्ञान की खोज का एक निश्चित सम्बन्ध लोगों की प्राथमिक आवश्यकताओं व कल्याण से होता है। वैज्ञानिकों की यह मान्यता है कि समस्त ज्ञान सारभूत रूप से इस अर्थ में उपयोगी है कि वह सिद्धान्तों के निर्माण में या एक कला को व्यवहार में लाने में सहायक होता है। सिद्धान्त तथा व्यवहार आगे चलकर प्रायः एक दूसरे से मिल जाते हैं।"

2.8 क्रियात्मक शोध (Action Research)

क्रियात्मक अनुसंधान के सम्बन्ध में गुड एव हाट ने लिखा है– "क्रियात्मक अनुसंधान उस योजनाबद्ध कार्यक्रम का भाग है जिसका लक्ष्य विद्यमान अवस्थाओं को परिवर्तित करना होता है, चाहे वे गन्दी बस्ती की अवस्थायें हो या प्रजातीय तनाव पूर्वाग्रह व पक्षपात हो या किसी संगठन की प्रभावशीलता हो।" स्पष्ट है कि क्रियात्मक अनुसंधान से प्राप्त जानकारियों एवं निष्कर्षों का उपयोग मौजूदा स्थितियों में परिवर्तन लाने वाली किसी भावी योजना में किया जाता है। वास्तव में, व्यावहारिक अनुसंधान व क्रियात्मक अनुसंधान कुछ अर्थों में एक–दूसरे से समानता रखते हैं; क्योंकि दोनों में ही सामाजिक घटनाओं अथवा समस्याओं का सूक्ष्म अध्ययन करने के पश्चात् ऐसे निष्कर्ष प्रस्तुत किये जाते हैं जो व्यावहारिक एवं

क्रियात्मक दृष्टि से महत्वपूर्ण होते हैं। उदाहरणस्वरूप, देश की शिक्षा व्यवस्था में आमूलचूल परिवर्तन व सुधार लाने के लिये 1964 में डॉ. डी.एस. कोठारी की अध्यक्षता में कोठारी आयोग की नियुक्ति की गई थी। उन्होंने देश की शिक्षा व्यवस्था के प्रत्येक पक्ष से सम्बन्धित ठोस प्रमाणों एवं तथ्यों को एकत्रित कर आवश्यक सुधार एवं परिवर्तन लाने के सम्बन्ध में सुझाव प्रस्तुत किये। आयोग ने शिक्षा से जुड़े देश–विदेश के सभी वर्गों के व्यक्तियों से लिखित एवं मौखिक विचारों एवं सुझावों, माँगों को अध्ययन में शामिल किया; साथ ही मौजूदा शिक्षा प्रणाली में उपस्थित दशाओं का विश्लेषण कर, भावी शिक्षा प्रणाली की संरचना तथा क्रियान्वियन हेतु व्यावहारिक सुझाव भी प्रस्तुत किये। उन सुझावों में से कई सुझाव भावी योजनाओं में सम्मिलित भी किये गये। तात्पर्य यह है, इस आयोग की रिपोर्ट भी क्रियान्वयन शोध का उदाहरण प्रस्तुत करती है।

2.9 मूल्यांकनात्मक अनुसंधान (Evaluative Research)

आज सभी देश नियोजित परिवर्तन की दिशा में विकास कार्यक्रमों को प्रोत्साहन दे रहे हैं।

लाखों, करोड़ों रूपये, अनेक विकास कार्यक्रमों, जैसे स्वास्थ्य सुधार, गरीबी उन्मूलन, आवास–विकास सम्बन्धी योजनाओं, परिवार नियोजन, मद्य निषेध, रोजगार योजनाओं एवं समन्वित ग्रामीण विकास आदि पर व्यय किये जा रहे हैं। तथापि, इन कार्यक्रमों एवं योजनाओं का लाभ वास्तव में लोगों को मिल भी रहा है या नहीं, यह जानना ही मूल्यांकनात्मक अनुसंधान का उद्देश्य है। मूल्यांकनात्मक अनुसंधान द्वारा इन कार्यक्रमों के लक्ष्यों एवं उपलब्धियों का मूल्यांकन किया जाता है कि लक्ष्य एवं उपलब्धियों में कितना अन्तर रहा; और अन्तर के कारण क्या रहे। जिससे कि भविष्य में बनाये जाने वाले कार्यक्रमों और योजनाओं में इस अन्तर को कम किया जा सके; अर्थात् योजनाओं को और अधिक प्रभावशाली बनाया जा सके। अनेक सरकारी, अर्द्ध–सरकारी एवं गैर सरकारी संस्थाओं द्वारा समय–समय पर ऐसे मूल्यांकन करवाये जाते है कि उनके द्वारा चलाये गये कार्यक्रमों की सफलता कितनी रही? असफलता के कारण क्या रहे आदि। उदाहरणस्वरूप, सामुदायिक विकास कार्यक्रम के मूल्यांकन के लिये भारत सरकार ने 'कार्यक्रम मूल्यांकन संगठन' की स्थापना की है।

(i) गणनात्मक अनुसंधान (Quantitative Research)

समाजिक जीवन में बहुत सी घटनाएँ और तथ्य इस तरह के होते है जिनका प्रत्यक्ष रूप सं अवलोकन करके उनकी गणना की जा सकती है। शाब्दिक रूप से **Quantity** अथवा परिमाण का अर्थ है मात्रा इस प्रकार के अनुसंधान में गणनात्मक मापन एवं सांख्यकीय विश्लेषण को अपनाया जाता है। तथ्यों के विश्लेषण में विभिन्न प्रकार की सांख्यकीय विधियों का प्रयोग किया जाता है जिससे अध्ययन में परिदर्शिता की मात्रा बढ़ जाती है।

उदाहरणस्वरूप, छठे वेतन आयोग के लागू हो जाने से विभिन्न वर्गों के वेतन में बढ़ोतरी का प्रतिशत क्या रहा? इस प्रकार के अनुसंधान में निर्दशन एवं अनुसंधान प्ररचना पर विशेष बल दिया जाता है।

(ii) गुणात्मक अनुसंधान (Qualitative Research)

सामाजिक घटनाओं के अध्ययन के लिए अनेक ऐसी पद्धतियों का भी उपयोग किया जाता है जो गुणात्मक विषेषताओं जैसे लोगों की मनोवृत्तियों तथा मानव व्यवहारों पर विभिन्न संस्थाओं और विष्वासों के प्रभाव को स्पष्ट कर सकें। जब अनुसंधान का उद्देश्य व्यक्तियों के गुणों का विश्लेषण करना हो, तो गुणात्मक अनुसंधान को अपनाया जाता है।

(iii) तुलनात्मक अनुसंधान (Comprative Research)

इस प्रकार के अनुसंधान में विभिन्न इकाइयों एवं समूहों के बीच पायी जाने वाली समानताओं एवं विभिन्नताओं का अध्ययन किया जाता है। भारतीय समाज एवं जापानी समाज का तुलनात्मक अध्ययन, भारत की ग्रामीण महिलाओं तथा इंग्लैण्ड अथवा अमरीका की ग्रामीण महिलाओं की तुलना किया जाना। अथवा, विभिन्न महानगरों में महिला अपराधियों का तुलनात्मक अध्ययन, आदि।

2.11 शब्दावली

वर्णात्मक अनुसंधान : वर्णात्मक सामाजिक अनुसंधान में घटना के सम्बन्ध में प्रमाणिक तथ्य एकत्रित करके उनका क्रमबद्ध एवं तार्किक वर्णन करना है।

परीक्षणात्मक अनुसंधान : ऐसा अनुसंधान जिसमें नियंत्रित दशाओं के अन्तर्गत मानवीय सम्बन्धों का अध्ययन किया जाता है।

अन्वेषणात्मक अनुसंधान : किसी घटना के सम्बन्ध में प्रारम्भिक जानकारी प्राप्त करने हेतु किया गया अनुसंधान जिससे कि मुख्य अनुसंधान की रूपरेखा एवं उपकल्पना का निर्माण किया जा सके।

क्रियात्मक अनुसंधान : समाज की मौजूदा दशाओं को परिवर्तित करने के उद्देश्य से किया गया अनुसंधान, चाहे गन्दी बस्ती हो या प्रजातीय तनाव।

2.12. अभ्यास प्रश्न

1. सामाजिक अनुसंधान के विभिन्न प्रकारों की चर्चा उदाहरण सहित कीजिये।
2. विशुद्ध एवं व्यावहारिक सामाजिक अनुसंधान की विशेषताओं को समझाइये।
3. अन्वेषणात्मक और वर्णनात्मक सामाजिक अनुसंधानों को उदाहरण सहित समझाइये।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- यंग पी.वी., साइन्टेफिक सोशल सर्वे एण्ड रिसर्च

- सी.ए. मोजर, सर्वे मैथड्स इन सोशल इन्वेस्टीगेशन।
- लुण्डवर्ग, जी.ए. सोशल रिसर्च।
- गुड एण्ड हाट, मैथड्स ऑफ सोशल रिसर्च।
- के.डी. बैली, मैथड्स ऑफ सोशल रिसर्च।
- आहूजा, राम, रिसर्च मैथड्स।

इकाई– 3

शोध प्रारूप
(RESEARCH DESIGN)

इकाई की रूपरेखा

3.0 अध्ययन के उद्देश्य
3.1 प्रस्तावना
3.2 शोध प्रारूप का अर्थ एवं परिभाषाएँ
3.3 शोध प्रारूप का उद्देश्य
3.4 शोध प्रारूप के घटक अंग
3.5 शोध प्रारूप का महत्व
3.6 शोध प्रारूप बनाम तथ्य संकलन की पद्धति
3.7 शोध प्रारूप के प्रकार
3.8 निष्कर्ष
3.9 शब्दावली
3.10 अभ्यास प्रश्न
सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

3.0 उद्देश्य :

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के उपरान्त आपके लिए यह सम्भव होगा कि–

- सामाजिक अनुसंधान में शोध प्रारूप के अर्थ एवं महत्व को बताना।
- शोध प्रारूप के उद्देश्यों एवं घटक अंगों को स्पष्ट करना, तथा
- शोध प्रारूप के विविध प्रकारों का वर्णन करना।

3.1 प्रस्तावना

सामाजिक शोध के सफल एवं उचित क्रियान्वयन के लिए सटीक एवं स्पष्ट शोध प्रारूप का होना आवश्यक है। शोध प्रारूप से तात्पर्य सम्पूर्ण शोध योजना के निर्धारण से है। शोध के वास्तविक क्रियान्वयन के पूर्व ही यह तय कर लिया जाता है कि विविध विषयों पर किस तरह से चरणबद्ध ढंग से कार्य करते हुए अन्तिम स्तर ;निष्कर्षद्ध तक पहुँचा जायेगा। शोध की स्पष्ट रूपरेखा पर ही यह निर्भर करता है कि शोधकर्त्ता इधर–उधर अनावश्यक समय एवं संसाधन बरबाद नही करता है। उसे शोध की सीमा और कार्यक्षेत्र का ज्ञान रहता है

और वह अपने शोध कार्य को निरन्तर समस्याओं का पूर्वानुमान लगाते हुए आगे बढ़ाता जाता है। प्रस्तुत इकाई में शोध प्रारूप के अर्थ, परिभाषाओं, उद्देश्यों, महत्व, घटक अंगों को बताते हुए संक्षेप में इसके विविध प्रकारों को विश्लेषित किया गया है।

3.2 शोध प्रारूप का अर्थ एवं परिभाषाएँ

प्रस्तावित सामाजिक शोध की विस्तृत कार्य योजना अथवा शोधकार्य प्रारम्भ करने के पूर्वसम्पूर्ण शोध प्रक्रियाओं की एक स्पष्ट संरचना 'शोध प्रारूप' या 'शोध अभिकल्प' के रूप में जानी जाती है। शोध प्रारूप के सम्बन्ध में यह स्पष्ट होना चाहिए कि यह शोध का कोई चरण नहीं है क्योंकि शोध के जो निर्धारित या मान्य चरण हैं, उन सभी पर वास्तविक कार्य प्रारम्भ होने के पूर्व ही विस्तृत विचार होता है और तत्पश्चात् प्रत्येक चरण से सम्बन्धित विषय पर रणनीति तैय्यार की जाती है। जब सम्पूर्ण कार्य योजना विस्तृत रूप से संरचित हो जाती है तब वास्तविक शोध कार्य प्रारम्भ होता है।

एफ.एन. करलिंगर (1964 : 275) के अनुसार, ''शोध प्रारुप अनुसंधान के लिए कल्पित एक योजना, एक संरचना तथा एक प्रणाली है, जिसका एकमात्र प्रयोजन शोध सम्बन्धी प्रश्नों का उत्तर प्राप्त करना तथा प्रसरणों का नियंत्रण करना होता है।''

पी.वी. यंग (1977 : 12.13) के अनुसार, ''क्या, कहाँ, कब, कितना, किस तरीके से इत्यादि के सम्बन्ध में निर्णय लेने के लिए किया गया विचार अध्ययन की योजना या अध्ययन प्रारूप का निर्माण करता है।''

आर.एल. एकॉफ (1953:5) के अनुसार, ''निर्णय लिये जाने वाली परिस्थिति उत्पन्न होने के पूर्व ही निर्णय लेने की प्रक्रिया को प्रारुप कहते हैं।''

विविध वेबसाइटों पर भी शोध प्रारूप की परिभाषाएँ दी गयी हैं। उनमें से कुछ परिभाषाएँ इस प्रकार हैं–

''शोध प्रारुप को शोध की संरचना के रुप में विचार किया जा सकता है– यह 'गोंद' होता है जो किसी शोध कार्य के सभी तत्वों को बाँधे रखता है।''

(www.socialresearchmethods.net/kb/design.php)

''शोध उद्देश्यों के उत्तर देने के लिए शोध की योजना है; विशिष्ट समस्या के समाधान की संरचना या खाका है।'' (www.decisionanalyst.com/glossary)

''ऐसी योजना जो शोध प्रश्नों को परिभाषित करे, परीक्षण की जाने वाली उपकल्पनाओं और अध्ययन किये जाने वाले परिवर्त्यों की संख्या और प्रकार स्पष्ट करें। यह वैज्ञानिक जाँच के सुविकसित सिद्धान्तों का प्रयोग करके परिवर्त्यो में सम्बन्धों का आँकलन करती है।''

(www.globalhivmeinfo.org/Digital Library)

''क्या तथ्य इकट्ठा करना है, किनसे, कैसे और कब तक इकठ्ठा करना है और प्राप्त तथ्यों को कैसे विश्लेषित करना है कि योजना शोध प्रारुप है।''

(www.ojp.usdoj.gov/BJA/evaluation/glossary)
स्पष्ट है कि शोध प्रारूप प्रस्तावित शोध की ऐसी रूपरेखा होती है, जिसे वास्तविक शोध कार्य को प्रारम्भ करने के पूर्व व्यापक रूप से सोच–समझ के पश्चात् तैय्यार किया जाता है। शोध की प्रस्तावित रूपरेखा का निर्धारण अनेकों बिन्दुओं पर विचारोपरान्त किया जाता है। इसे सरलतम रूप में **पी.वी. यंग (1977)** ने शोध सम्बन्धित विविध प्रश्नों के द्वारा इस तरह स्पष्ट किया है–

- अध्ययन किससे सम्बन्धित है और आँकड़ों का प्रकार जिनकी आवश्यकता है?
- अध्ययन क्यों किया जा रहा है?
- वांछित आँकड़े कहाँ से मिलेंगे?
- कहाँ या किस क्षेत्र में अध्ययन किया जायेगा?
- कब या कितना समय अध्ययन में सम्मिलित होगा?
- कितनी सामग्री या कितने केसों की आवश्यकता होगी?
- चुनावों के किन आधारों का प्रयोग होगा?
- आँकड़ा संकलन की कौन सी प्रविधि का चुनाव किया जायेगा?

इस तरह, निर्णय लेने में जिन विविध प्रश्नों पर विचार किया जाता है जैसे क्या, कहाँ, कब, कितना, किस साधन से अध्ययन की योजना निर्धारित करते हैं। (पी.वी. यंग 1977: 12.13)

न्यूयार्क यूनिवर्सिटी की फैकल्टी क्लास वेबसाईट (वॉट इज सोशल रिसर्च, चैप्टर 1 : 9–10) में शोध प्रारूप और शोध प्रारूप बनाम पद्धति विषय पर विधिवत विचार व्यक्त किया गया है। उसे हम यहाँ प्रस्तुत कर रहे हैं। उसके अनुसार शोध प्रारूप को भवन निर्माण से सम्बन्धित एक उदाहरण के द्वारा आसानी से समझा जा सकता है। भवन निर्माण करते समय सामग्री का आर्डर देने या प्रोजेक्ट पूर्ण होने की तिथि निर्धारित करने का कोई औचित्य नहीं है, जब तक कि हमें यह न मालूम हो कि किस प्रकार का भवन निर्मित होना है। पहला निर्णय यह करना है कि क्या हमें अति ऊँचे कार्यालयी भवन की, या मशीनों के निर्माण के लिए एक फैक्टरी की, एक स्कूल, एक आवासीय भवन या एक बहुखण्डीय भवन की आवश्यकता है। जब तक यह नहीं तय हो जाता हम एक योजना का खाका तैय्यार नहीं कर सकते, कार्य योजना तैय्यार नहीं कर सकते या सामग्री का आर्डर नहीं दे सकते हैं। इसी तरह से, सामाजिक अनुसन्धान को प्रारूप या अभिकल्प की आवश्यकता होती है या तथ्य संकलन के पूर्व या विश्लेषण शुरू करने के पूर्व एक संरचना की आवश्यकता होती है। एक शोध प्रारूप मात्र एक कार्य योजना (वर्क प्लान) नहीं है। यह प्रोजेक्ट को पूर्ण करने के लिए क्या करना है कि कार्य योजना का विस्तृत विवरण है। शोध प्रारूप का

प्रकार्य यह सुनिश्चित करना है कि प्राप्त साक्ष्य हमें प्रारम्भिक प्रश्नों के यथासम्भव सुस्पष्ट उत्तर देने में सक्षम बनाये।

कार्य योजना बनाने के पूर्व या सामग्री आर्डर करने के पूर्व भवन निर्माता या वास्तुविद् को प्रथमतः यह निर्धारित करना जरूरी है कि किस प्रकार के भवन की जरूरत है, इसका उपयोग क्या होगा और उसमें रहने वाले लोगों की क्या आवश्यकताएं हैं। कार्य योजना इससे निकलती है। इसी तरह से, सामाजिक अनुसन्धान में निदर्शन, तथ्य संकलन की पद्धति (उदाहरण के लिए प्रश्नावली, अवलोकन, दस्तावेज विश्लेषण) प्रश्नों के प्रारूप के मुद्दे सभी इस विषय के कि 'मुझे कौन से साक्ष्य इकट्ठे करने हैं', के सहायक/पूरक होते हैं।

गेराल्ड आर. लेस्ली (1994 : 25–26) का कहना है कि, ''शोध प्रारूप ब्लू प्रिन्ट है, जो परिवर्त्यों को पहचानता और तथ्यों को एकत्र करने तथा उनका विवरण देने के लिए की जाने वाली कार्य प्रणालियों को अभिव्यक्त करता है।'' शोध प्रारुप को अत्यन्त विस्तार से समझाते हुए सौमेन्द्र पटनायक (2006 : 31) ने लिखा है कि, ''शोध प्रारुप एक प्रकार की रूपरेखा है, जिसे आपको शोध के वास्तविक क्रियान्वयन से पहले तैयार करना है। योजनाबद्ध रूप से तैयार एक खाका होता है जो उस रीति को बतलाता है जिसमें आपने अपने शोध की कार्य योजना तैयार की है। आपके पास अपने शोध कार्य पर दो पहलुओं से विचार करने का विकल्प है, नामतः अनुभवजन्य पहलू और विश्लेषणपरक पहलू। ये दोनों ही पहलू एक साथ आपके मस्तिष्क में रहते हैं, जबकि व्यवहार में आपको अपना शोध कार्य दो चरणों में नियोजित करना है : एक सामग्री संग्रहण का चरण और दूसरा उस सामग्री के विश्लेषण का चरण। आपकी मनोगत सैद्धान्तिक उन्मुखता और अवधारणात्मक प्रतिदर्शताएँ आपको इस शोध सामग्री के स्वरूप को निर्धारित करने में मदद करती हैं जो आपको एकत्र करनी है और कुछ हद तक यह समझने में भी कि आपको उन्हें कैसे एकत्र करना है। तदोपरान्त, अपनी सामग्री का विश्लेषण करते समय फिर से आमतौर पर समाजिक यथार्थ सम्बन्धी सैद्धान्तिक और अवधारणात्मक समझ के सहारे आपको अपने शोध परिणामों को स्पष्ट करने में और प्रस्तुत करने के वास्ते शोध सामग्री को वर्गीकृत करने में और विन्यास विशेष को पहचानने में दिशानिर्देशन मिलता है।''

यंग (1977 :131) का कहना है कि, ''जब एक सामान्य वैज्ञानिक मॉडल को विविध कार्यविधियों में परिणत किया जाता है तो शोध प्रारुप की उत्पत्ति होती है। शोध प्रारुप उपलब्ध समय, कर्म शक्ति एवं धन, तथ्यों की उपलब्धता उस सीमा तक जहाँ तक यह वांछित या सम्भव हो उन लोगों एवं सामाजिक संगठनों पर थोपना जो तथ्य उपलब्ध करायेंगे, के अनुरूप होना चाहिए।'' ई.ए. सचमैन (1954 :254) का कहना है कि, ''एकल या 'सही' प्रारुप जैसा कुछ नही है..... शोध प्रारुप सामाजिक शोध में आने वाले बहुत से व्यावहारिक विचारों के कारण आदेशित समझौते का प्रतिनिधित्व करता है। . . . . (साथ

ही) अलग–अलग कार्यकर्त्ता अलग–अलग प्रारुप अपनी पद्वतिशास्त्रीय एवं सैद्धान्तिक प्रतिस्थापनाओं के पक्ष में लेकर आते हैं . . . . एक शोध प्रारुप विचलन का अनुसरण किए बिना कोई उच्च विशिष्ट योजना नही है, अपितु सही दिशा में रखने के लिए मार्गदर्शक स्तम्भों की श्रेणी है।'' दूसरे शब्दों में, एक शोध प्रारुप काम चलाऊ होता है। अध्ययन जैसे–जैसे प्रगति करता है, नये पक्ष, नई दशाएं और तथ्यों में नयी सम्बन्धित कड़ियाँ प्रकाश में आती हैं, और परिस्थितियों की माँग के अनुसार यह आवश्यक होता है कि योजना परिवर्तित कर दी जाये। योजना का लचीला होना जरूरी होता है। लचीलेपन का अभाव सम्पूर्ण अध्ययन की उपयोगिता को समाप्त कर सकता है। (उद्धृत पी.वी. यंग 1977 : 131)

3.3 शोध प्रारुप के उद्देश्य–

मैनहाईम (1977 : 142) के अनुसार शोध प्रारुप के निम्नांकित पाँच उद्देश्य होते हैं–

(i) अपनी उपकल्पना का समर्थन करने और वैकल्पिक उपकल्पनाओं का खण्डन करने हेतु पर्याप्त साक्ष्य इकठ्ठा करना।

(ii) एक ऐसा शोध करना जिसे शोध की विषयवस्तु और शोध कार्यविधि की दृष्टि से दोहराया जा सके।

(iii) परिवर्त्यों के मध्य सहसम्बन्धों को इस तरह से जाँचने में सक्षम होना जिससे सहसम्बन्ध ज्ञात हो सके।

(iv) एक पूर्ण विकसित शोध परियोजना की भावी योजनाओं को चलाने के लिए एक मार्गदर्शी अध्ययन की आवश्यकता को दिखाना।

(v) शोध सामग्रियों के चयन की उचित तकनीकों के चुनाव द्वारा समय और साधनों के अपव्यय को रोकने में सक्षम होना।

एक अन्य विद्वान ने शोध प्रारूप के निम्नांकित उद्देश्यों का उल्लेख किया है–

(1) शोध विषय को परिभाषित, स्पष्ट एवं व्याख्या करना।

(2) दूसरों को शोध क्षेत्र स्पष्ट करना।

(3) शोध की सीमा एवं परिधि प्रदान करना।

(4) शोध के सम्पूर्ण परिदृश्य को प्रदान करना।

(5) तरीकों ;उवकमेद्ध और परिणामों को बतलाना

(6) समय और संसाधनों की सुनिश्चितता।

3.4 शोध प्रारूप के घटक अंग :

शोध प्रारुप के उद्देश्यों से यह स्पष्ट है कि, यह शोध की वह युक्तिपूर्ण योजना होती है, जिसके अन्तर्गत विविध परस्पर सम्बन्धित अंग होते हैं, जिनके द्वारा शोध सफलतापूर्वक

सम्पादित होता है। पी.वी. यंग (1977 :13) ने शोध प्रारुप के अन्तर्गत निम्नांकित घटक अंगों का उल्लेख किया है जो अन्तर्सम्बन्धित होते हैं तथा परस्पर बहिष्कृत नही होते हैं–

(i) प्राप्त किये जाने वाले सूचनाओं के स्रोत,

(ii) अध्ययन की प्रकृति,

(iii) अध्ययन के उद्देश्य,

(iv) अध्ययन का सामाजिक–सांस्कृतिक संदर्श,

(v) अध्ययन द्वारा समाहित भौगोलिक क्षेत्र,

(vi) लगने वाले समय के काल का निर्धारण,

(vii) अध्ययन के आयाम,

(viii) आँकड़ा संकलन का आधार,

(ix) आँकड़ा संकलन हेतु प्रयोग की जाने वाली प्रविधियाँ।

उपरोक्त शोध प्रारूप के अन्तर्सम्बन्धित और परस्पर समावेषित अंगों की संक्षिप्त विवेचना यहाँ आवश्यक प्रतीत होती है।

(i) सूचना के स्रोत : कोई भी शोध कार्य सूचना के अनेकों स्रोत पर निर्भर करता है। मोटे तौर पर सूचना के इन स्रोतों को हम दो भागों में रख सकते हैं। (i) प्राथमिक स्रोत और

(ii) द्वैतियक स्रोत। प्राथमिक स्रोत वे हैं जिनका शोधकर्ता पहली बार स्वयं प्रयोग कर रहा है, यानि शोधकर्ता ने अपने अध्ययन क्षेत्र में जा कर जिस तकनीक या उपकरण अथवा विधि का प्रयोग कर मौलिक तथ्य प्राप्त किया है, वह प्राथमिक तथ्य कहलाता है। वही दूसरों के द्वारा जो सूचना प्रकाशित या अप्रकाशित अथवा अन्य तरीकों से सर्व उपलब्ध हो, और जिसका उपयोग शोधकर्ता कर रहा हो वह द्वैतियक सूचना का स्रोत होता है। उल्लेखनीय है कि बहुधा द्वैतियक सूचना का स्रोत एक समय में किसी शोधकर्ता का प्राथमिक सूचना स्रोत होता है।

अर्थपूर्ण तथ्यों की खोज में लगे समाजशास्त्री उस प्रत्येक सूचना के स्रोत का उपयोग करने में हिचकिचाहट महसूस नहीं करते हैं जिनसे भी शोध कार्य में जरा भी प्रमाण या सहायता मिलने की संभावना होती है। सूचना के इन स्रोत को विधिक विद्वानों ने अलग–अलग प्रकारों में रखकर विश्लेषित किया है।

बैगले (1938 : 202) ने सूचना के दो प्रमुख स्रोत का उल्लेख किया है– (v) प्राथमिक स्रोत और (c) द्वैतियक स्रोत।

पी.वी. यंग (1977 : 136) का कहना है कि सामान्यतः सूचना के स्रोत दो होते हैं– (i) प्रलेखीय और (ii) क्षेत्रीय स्रोत। सूचना के प्रलेखीय (डॉक्यूमेन्टरी) स्रोत वे होते हैं, जो कि

प्रकाशित और अप्रकाशित प्रलेखों, रिपोर्टों, सांख्यिकी, पाण्डुलिपियों, पत्रों, डायरियों इत्यादि में निहित होते हैं। दूसरी तरफ, क्षेत्रीय स्रोत के अन्तर्गत वे जीवित लोग सम्मिलित होते हैं, जिन्हें उस विषय का पर्याप्त ज्ञान होता है या जिनका सामाजिक दशाओं और परिवर्तनों के लम्बे समय तक का घनिष्ठ सम्पर्क होता है। ये लोग न केवल वर्तमान घटनाओं को विश्लेषित करने की स्थिति में होते हैं अपितु सामाजिक प्रक्रियाओं की अवलोकनीय प्रवृत्तियों और सार्थक मील का पत्थर को बताने की स्थिति में भी होते हैं। (वी.एम. पाल्मर, (1928 : 57) लुण्डबर्ग (1951 : 122) ने सूचनाओं के दो स्रोत का उल्लेख किया है–

(1) ऐतिहासिक स्रोत, और

(2) क्षेत्रीय स्रोत।

ऐतिहासिक स्रोत के अन्तर्गत प्रलेख, विविध कागजातों एवं शिलालेखों, भूर्तत्त्वीय स्तरों, उत्खनन से प्राप्त वस्तुओं को सम्मिलित करते हुए लुण्डबर्ग (1951:122) का कहना है कि, ''ऐतिहासिक स्रोत उन अभिलेखों का प्रतिनिधित्व करते हैं जो भूतकाल की घटनाएं अपने पीछे छोड़ गई हैं, जिनकों की उन साधनों द्वारा सुरक्षित रखा गया है जो मनुष्य से परे हैं।'' उदाहरण के लिए हम उल्लेख कर सकते हैं उन विविध स्थानों का जहाँ पुरातत्त्वीय उत्खनन के पश्चात तत्कालीन समाज की विविध सूचनाएँ प्राप्त हुई हैं, या विविध पुरातात्त्विक संग्रहालयों में सुरक्षित रखे दस्तावेजों ;सरकारीद्ध एवं गैर सरकारीद्ध का जिनका आज भी शोधकर्ता अपने शोध कार्यों में व्यापक रूप से प्रयोग करते हैं। क्षेत्रीय स्रोत के अन्तर्गत लुण्डबर्ग ने जीवित मनुष्यों से प्राप्त विशिष्ट सूचनाओं तथा क्रियाशील व्यवहारों के प्रत्यक्ष अवलोकन को सम्मिलित किया है। उपरोक्त समस्त विवरण स्पष्ट करता है कि सूचनाओं के कई स्रोत होते हैं, इन समस्त स्रोत को विद्वानों ने अपनी–अपनी तरह से विश्लेषित किया है। जो कुछ भी हो सूचनाओं के स्रोत जिन्हें प्रयोग में लाया जाता है, शोध प्रारूप का अंग होते हैं।

(ii) अध्ययन की प्रकृति : पी.वी. यंग (1977 : 14) का कहना है कि, ''अध्ययन की विशिष्ट प्रकृति का निर्धारण शुरू में और ठीक ठीक कर लेना चाहिए, विशेषकर जब सीमित समय और कर्मशक्ति गलत शुरूआत को रोक रहे हों। शोध केस की प्रकृति पर ही अपने को केन्द्रित करते हुए उन्होंने मटिल्डा वाइट रिले (1963 : 3–31) की पुस्तक में विविध विद्वानों के अध्ययनों के उल्लेख का उदाहरण देते हुए उन्होंने इस विषय को स्पष्ट किया है। क्या यह अध्ययन एक व्यक्ति से सम्बन्धित है ;जैसा शॉ की 'दी जैक रोलर' में हैद्ध कई लोगों से सम्बन्धित है ;विलियम वाईट की पुस्तक 'स्ट्रीट कार्नर सोसायटी' के विश्लेषण में डॉक, माईक और डैनीद्ध या क्या अध्ययन किसी छोटे समूह पर संकेन्द्रित है ;जैसा कि पॉल हैरे एवं अन्य के अध्ययन 'स्माल ग्रुप' या बहुत अधिक केसों पर संकेन्द्रित है, जैसा कि यौन व्यवहार सम्बन्धित किन्से का अध्ययन। इस अनुभव के साथ की प्रत्येक शोध अध्ययन जटिल होता है, उसकी विशिष्ट प्रकृति का यथाशीघ्र निर्धारण कर लेना चाहिए।

(iii) शोध अध्ययन का उद्देश्य : अध्ययन के उद्देश्यों का निर्धारण शोध प्रारूप का महत्वपूर्ण अंग है। अध्ययन की प्रकृति और प्राप्त किये जाने वाले लक्ष्यों के अनुसार उद्देश्य भिन्न–भिन्न होते हैं। कुछ शोध अध्ययनों का उद्देश्य विवरणात्मक तथ्य, या व्याख्यात्मक तथ्य या तथ्य जिनसे सैद्धान्तिक रचना की व्युत्पत्ति हो, या तथ्य जो प्रशासकीय परिवर्तन या तुलना को बढ़ावा दे, को इकट्ठा करना होता है। (पी.वी. यंग, (1977 : 14)
अध्ययन का जो भी उद्देश्य हो अपने शोध की प्रकृति के अनुरूप शोध कार्य की तैय्यारी आवश्यक है। शोध उद्देश्य के अनुरूप उपकल्पना का निर्माण और उसके परीक्षण की तैय्यारी या शोध प्रश्नों का निर्माण किया जाता है।

(iv) सामाजिक–सांस्कृतिक परिस्थिति : क्षेत्रीय अध्ययनों में उत्तरदाताओं की सामाजिक सांस्कृतिक परिस्थिति को जानना आवश्यक होता है। हम सभी जानते हैं कि स्थानीय आदर्श भिन्न–भिन्न होते हैं। इनमें इतनी ज्यादा भिन्नत सम्भव है जिसकी हम कल्पना भी नहीं कर सकते हैं। व्यवहार प्रतिरूपों को समझने के लिए स्थानीय आदर्शों को जानना जरूरी है। पीण्वीण यंग (1977 : 15) ने इस सन्दर्भ में उचित ही लिखा है कि ''एक व्यक्ति का निवास स्थान (प्राकृतिक वास) उसके जीवन के एक भाग से इतना घनिष्ठ होता है कि उसकी उपेक्षा करने का मतलब शून्य में अध्ययन करना है।'' उनका यह भी सुझाव महत्त्वपूर्ण है कि, ''प्रत्येक सामाजिक–सांस्कृतिक क्षेत्र का अध्ययन उसके प्राकृतिक और भौगोलिक पक्ष के सन्दर्भ में भी किया जाना चाहिए।'' (पी.वी. यंग, (1977 : 16)।

(v) सामाजिक–कालिक सन्दर्भ : यह निर्विवाद सत्य है कि किसी व्यक्ति पर, समुदाय पर, समाज पर ऐतिहासिक काल विशेष का प्रभाव व्यापक रूप से पड़ता है। किसी देश के कुछ निश्चित ऐतिहासिक काल को ही यहां सामाजिक–कालिक सन्दर्भ शब्द से सम्बोधित किया जा रहा है। कई बार भारतीय अध्ययनों में औपनिवेशिक काल के प्रभावों का उल्लेख इसी का उदाहरण माना जा सकता है। अण्डमान–निकोबार द्वीप समूहों में बन्दी उपनिवेश काल या भारतवर्ष में वैदिक काल, मुगल काल इत्यादि कुछ विशिष्ट ऐतिहासिक कालों का समाज पर प्रभाव से हम सभी परिचित हैं। इसलिए व्यक्ति को उसके सामाजिक–कालिक सन्दर्भ यानि समय और स्थान के ऐतिहासिक विन्यास में देखा जाना चाहिए। ;पी.वी. यंग, (1977 : 16)

(vi) **अध्ययन के आयाम और निदर्शन कार्यविधि** : सामाजिक शोध में अक्सर यह सम्भव नहीं होता है कि सम्पूर्ण समग्र से प्राथमिक तथ्य संकलन का कार्य किया जाये। ऐसी परिस्थिति में समग्र की कुछ इकाईयों का वैज्ञानिक आधार पर चयन कर लिया जाता है और तथ्य संकलन की उपयुक्त विधि के द्वारा उनसे प्राथमिक तथ्य इकट्ठे कर लिये जाते हैं। ये कुछ चुनी हुई इकाईयां ही निदर्शन कहलाती हैं। अच्छे निदर्शन को सम्पूर्ण समग्र का

प्रतिनिधित्व करना चाहिए ताकि प्राप्त सूचनायें विश्वसनीय हों तथा सम्पूर्ण समग्र का प्रतिनिधित्व कर सकें (यद्यपि निदर्शन के कुछ प्रकारों में इसकी कुछ कम संभावना होती है)।

इकाईयों का चयन निष्पक्ष रूप से पूर्वाग्रह रहित होकर करना चाहिए। सम्पूर्ण समूह जिसमें से निदर्शन लिया जाता है ***'पापुलेशन', 'यूनिवर्स' ;समग्रद्ध या 'सप्लाई'*** के नाम से जाना जाता है। (पी.वी. यंग 1977 : 325)

निदर्शन के कई प्रकार होते हैं। मोटे तौर पर निदर्शन को दो प्रकारों– संभावनात्मक और असंभावनात्मक में रखा जाता है। जब समग्र की प्रत्येक इकाई के चुने जाने की समान सम्भावना हो तो उसे संभावनात्मक निदर्शन कहते हैं और यदि ऐसी समान संभावना न हो तो उसे असंभावनात्मक निदर्शन कहते हैं।

संभावनात्मक और असंभावनात्मक निदर्शन के अन्तर्गत आने वाले विविध प्रकारों को निम्नवत् प्रस्तुत किया जा सकता है–

निदर्शन

संभावनात्मक निदर्शन	**असंभावनात्मक निदर्शन**
(क) दैव निदर्शन	(क) सुविधानुसार निदर्शन (या देखा और साक्षात्कार लिया निदर्शन)
(ख) क्रमबद्ध दैव निदर्शन	(ख) सोद्देशपूर्ण निदर्शन (नियत मात्रा)
(ग) स्तरीत दैव निदर्शन	(ग) कोटा निदर्शन
(घ) समूह दैव निदर्शन	(घ) स्नोबाल निदर्शन
	(ङ) स्वनिर्णय निदर्शन

निदर्शन, इसके प्रकार, निदर्शन आकार, गुण एवं सीमाओं पर विस्तृत चर्चा अन्यत्र अध्याय में की गई है। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि शोध प्रारूप को बनाते समय निदर्शन तथा उसके आकार पर उपलब्ध समय और साधनों की सीमाओं के अन्तर्गत व्यापक सोच–विचार किया जाता है। अध्ययन के उद्देश्यों के अनुसार तथा समग्र की संख्या तथा विशेषताओं के अनुसार निदर्शन का प्रकार तथा आकार अलग–अलग होता है। उत्तम एवं विश्वसनीय परिणाम प्राप्त करने के लिए यथेष्ट एवं उत्तम निदर्शन का होना जरूरी होता है।

सामाजिक शोध कार्यों में सबसे जटिल प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि निदर्शन का आकार क्या होगा? कितने लोगों को उत्तरदाताओं के रूप में चयनित किया जायेगा? सम्पूर्ण समग्र

का अध्ययन अक्सर समय और साधनों की सीमाओं के चलते सम्भव नहीं होता है। समुचित निदर्शन के निर्धारण की समस्या एक जटिल समस्या है। यद्यपि कई विद्वानों ने इस सन्दर्भ में अपने–अपने सुझावों को दिया है तथा सांख्यिकीविदों ने तो इसका सूत्र भी बना रखा है, परन्तु इसके बावजूद भी समस्या किसी न किसी रूप में बनी ही रहती है। पी.वी. यंग (1977 : 17) यह मानती हैं कि, ''एक परिपक्व शोधकर्ता द्वारा भी इस प्रश्न के उत्तर को देना कठिन है कि कितने केसों की जरूरत है।''

पी.वी. यंग (1977 :17) ने अपनी पुस्तक में सांख्यिकीविद् मारग्रेट हगुड़ (1953) द्वारा सुझाये निदर्शन के आधारों का उल्लेख किया है। हगुड़ (1953 : 272) ने निदर्शन चयन के निम्नांकित सुझाव दिए हैं'– ''(1) निदर्शन को समग्र का प्रतिनिधित्व करना चाहिए (अर्थात् उसे पूर्वाग्रह रहित होना चाहिए)((2) विश्वसनीय परिणाम प्राप्त करने के लिए निदर्शन पर्याप्त आकार का होना चाहिए ;अर्थात् दोष की विशिष्ट सीमा तक जैसे मापा जाय)((3) निदर्शन इस तरह से संरचित किया जाये कि कुशल हो ;अर्थात वैकल्पिक प्रारूप की तुलना में)।''

(vii) तथ्य संकलन के लिए प्रयुक्त तकनीक : शोध प्रारूप का एक महत्वपूर्ण अंग तथ्य संकलन की तकनीक है। शोध कार्य प्रारम्भ करने के पूर्व ही इस महत्वपूर्ण विषय पर शोध की प्रकृति और उत्तरदाताओं की विशेषताओं के परिप्रेक्ष्य में व्यापक सोच–विचार के पश्चात् यह निर्णय लिया जाता है कि प्राथमिक तथ्य संकलन का कार्य किस प्रविधि के द्वारा किया जायेगा। उल्लेखनीय है कि तथ्य संकलन की विविध प्रविधियां हैं– जैसे अवलोकन, साक्षात्कार, प्रश्नावली, अनुसूची, वैयक्तिक अध्ययन ;केस स्टडीद्ध इत्यादि। इन सभी प्रविधियों की अपनी–अपनी विशेषताएँ तथा सीमाएँ हैं। तथ्य संकलन की सही तकनीक का प्रयोग शोध की गुणवत्ता, विश्वसनीयता तथा वैज्ञानिकता निर्धारित करता है। उल्लेखनीय है कि इन प्रविधियों का प्रयोग प्रत्येक समाज एवं उत्तरदाताओं पर नहीं किया जा सकता है।

3.5 शोध प्रारूप का महत्व :

उपरोक्त विस्तृत व्याख्या से शोध प्रारूप के महत्व का स्पष्ट अनुमान हो जाता है। ब्लैक और चैम्पियन (1976:76-77) के शब्दों में कहा जाये तो–

(i) शोध प्रारुप से शोध कार्य को चलाने के लिए एक रूप रेखा तैयार हो जाती है।

(ii) शोध प्रारूप से शोध की सीमा और कार्य क्षेत्र परिभाषित होता है।

(iii) शोध प्रारूप से शोधकर्ता को शोध को आगे बढ़ाने वाली प्रक्रिया में आने वाली समस्याओं का पूर्वानुमान लगाने का अवसर प्राप्त होता है।

3.6 शोध प्रारूप बनाम तथ्य संकलन की पद्धति :

शोध प्रारूप और तथ्य संकलन की पद्धतियों के सन्दर्भ में उल्लेखनीय है कि शोध प्रारूप आँकड़े या तथ्य इकट्ठे किये जाने वाली पद्धति से अलग होता है। ''यह देखना असामान्य

नहीं है कि शोध प्रारूप को तथ्य संकलन के तरीके के रूप में देखा जाता है बजाये इसके कि जाँच की तार्किक संरचना के।'' (एन.वाई.यू. 2010 : 1 : 9)

शोध प्रारूप और तथ्य संकलन की पद्धति में समानता का भ्रम होने का कारण कुछ विशेष प्रारूपों को किसी विशेष तथ्य संकलन की पद्धति से जोड़कर देखना है। उदाहरण के लिए वैयक्तिक अध्ययनों को सहभागी अवलोकन और क्रास सेक्शनल सर्वे को प्रश्नावलियों से समीकृत किया जाता है। वास्तविकता यह है कि किसी भी प्रारूप के लिए तथ्य किसी भी तथ्य संकलन की पद्धति से इकट्ठा किया जा सकता है। विश्वसनीय तथ्य महत्वपूर्ण होते हैं न कि उन्हें इकट्ठा करने का तरीका। तथ्य कैसे इकट्ठा किया गया, यह प्रारूप की तार्किकता के लिए अप्रासंगिक/असम्बद्ध है।

न्यूयार्क यूनिवर्सिटी की फैकल्टी क्लास वेबसाइट (पृ. 10) में 'शोध प्रारूप क्या है?' अध्याय के अन्तर्गत शोध प्रारूप और तथ्य संकलन की पद्धतियों में सम्बन्ध को इस तरह दर्शाया गया–

शोध प्रारुप और विशिष्ट तथ्य संकलन की पद्धतियों के मध्य सम्बन्ध

प्रारुप का प्रकार	प्रयोगात्मक	केस स्टडी	अनुलम्ब प्रारूप	क्रास–सेक्शनल प्रारूप
	↓	↓	↓	↓
तथ्य संकलन की पद्धति	प्रश्नावली साक्षात्कार (संरचित या शिथिल संरचित) अवलोकन दस्तावेजों का विश्लेषण अप्रत्यक्ष पद्धतियाँ	प्रश्नावली साक्षात्कार (संरचित या शिथिल संरचित) अवलोकन दस्तावेजों का विश्लेषण अप्रत्यक्ष पद्धतियाँ	प्रश्नावली साक्षात्कार (संरचित या शिथिल संरचित) अवलोकन दस्तावेजों का विश्लेषण अप्रत्यक्ष पद्धतियाँ	प्रश्नावली साक्षात्कार (संरचित या शिथिल संरचित) अवलोकन दस्तावेजों का विश्लेषण अप्रत्यक्ष पद्धतियाँ

इसी तरह से प्रारुपों को अक्सर गुणात्मक और गणनात्मक शोध पद्वतियों से जोड़ा जाता है। सामाजिक सर्वेक्षण और प्रयोगों को अक्सर गुणात्मक शोध के मुख्य उदाहरणों के रुप में देखा जाता है और उनका मूल्यांकन सांख्यिकीय, गुणात्मक शोध पद्वतियों और विश्लेषण की क्षमता और कमजोरियों के विरुद्ध किया जाता है। दूसरी तरफ वैयक्तिक अध्ययन को अक्सर गुणात्मक शोध के मुख्य उदाहरण के रूप में देखा जाता है– जोकि तथ्यों के विवेचनात्मक उपागम का प्रयोग करता है, 'चीजों' का अध्ययन उनके सन्दर्भ के अन्तर्गत

करता है और लोग अपनी परिस्थितियों का जो वस्तुगत अर्थ लगाते हैं को विचार करता है। किसी विशिष्ट शोध प्रारुप को गुणात्मक या गणनात्मक पद्वति से जोड़ना भ्रान्तिपूर्ण या गलत है। वैयक्तिक अध्ययन प्रारुप की एक सम्मानित हस्ती यिन (1993) ने वैयक्तिक अध्ययन के लिए गुणात्मक/गणनात्मक विभेद की अप्रासंगिकता पर जोर दिया है। उनका कहना है कि वैयक्तिक अध्ययन पद्वति तथ्य संकलन के किसी विशिष्ट स्वरूप को अन्तर्निहित नहीं करती है। वह गुणात्मक या गणनात्मक कोई भी हो सकती है (1993 : 32)न्यूयार्क यूनिवर्सिटी की फैकल्टी क्लास वेबसाइट (पृ. 11.12) में 'शोध प्रारूप क्या है?' अध्याय के अन्तर्गत व्याख्या में संशयवादी उपागम को अपनाने की आवश्यकता का उल्लेख करते हुए लिखा गया है कि, ''शोध प्रारुप की आवश्यकता शोध के संशयवादी उपागम के तने और इस दृष्टिकोण से कि वैज्ञानिक ज्ञान हमेशा अस्थायी होता है, से निकलती है। शोध प्रारुप का उद्देश्य शोध के बहु साक्ष्यों की अस्पष्टता को कम करना होता है।''

हम हमेशा कुछ साक्ष्यों को लगभग सभी सिद्धान्तों के साथ निरन्तर पा सकते हैं। जबकि हमें साक्ष्यों के प्रति संशयपूर्ण होना चाहिए और बजाये उन साक्ष्यों को प्राप्त करना जो हमारे सिद्धान्त के साथ निरन्तर उपलब्ध हों। हमें ऐसे साक्ष्यों को प्राप्त करना चाहिए जो सिद्धान्त के अकाट्य परीक्षण को प्रदान करते हों।

शोध प्रारुप निर्मित करते समय यह आवश्यक है कि हमें आवश्यक साक्ष्यों के प्रकारों को चिन्हित कर लेना चाहिए जिससे कि शोध प्रश्नों का उत्तर विश्वासोंत्पादक हो। इसका तात्पर्य यह है कि हमें मात्र उन साक्ष्यों को इकट्ठा नहीं करना चाहिए जो किसी विशिष्ट सिद्धान्त या व्याख्या के साथ लगातार बने हुए हों। शोध इस प्रकार से संरचित किया जाना चाहिए कि उससे साक्ष्य वैकल्पिक प्रतिद्वन्दी व्याख्या दें और हमें यह चिन्हित करने में सक्षम बनाये कि कौन सी प्रतिस्पर्द्धी व्याख्या आनुभविक रूप से ज्यादा अकाट्य है। इसका यह भी तात्पर्य है कि हमें अपने प्रिय सिद्धान्त के समर्थन वाले साक्ष्यों को ही मात्र नहीं देखना चाहिए। हमें उन साक्ष्यों को भी देखना चाहिए जिनमें यह क्षमता हो कि वे हमारी वरीयतापूर्ण व्याख्या को नकार सकें। ;एन.वाई.यू., (2010 : 16)

3.7 शोध प्रारुप के प्रकार :

शोध प्रारुपों के कई प्रकार होते हैं। विविध विद्वानों ने शोध प्रारुपों के कुछ तो एक समान और कुछ अलग प्रकार के प्रकारों का उल्लेख किया है। उदाहरण के लिए सुसन कैरोल (2010:1) ने शोध प्रारुप के आठ प्रकारों का उल्लेख किया है। ये हैं–

(1) ऐतिहासिक शोध प्रारुप (Historical Research Design)

(2) वैयक्तिक और क्षेत्र शोध प्रारुप (Case and Field Research Design)

(3) विवरणात्मक या सर्वेक्षण शोध प्रारुप (Descriptive or Survey Research Design)

(4) सह सम्बन्धात्मक या प्रत्याशित शोध प्रारुप (Correlational or Prospective Research Design)

(5) कारणात्मक, तुलनात्मक या एक्स पोस्ट फैक्टों शोध प्रारुप (Causal Comparative or Ex-Post Facto Research Design)

(6) विकासात्मक या समय श्रेणी शोध प्रारुप (Developmental or Time Series Research Design)

(7) प्रयोगात्मक शोध प्रारुप (Experimental Research Design)

(8) अर्द्ध प्रयोगात्मक शोध प्रारुप (Quasi Experimental Research Design)

न्यूयार्क यूनिवर्सिटी की फैकल्टी क्लास वेबसाइट (2010 : 10) में 'शोध प्रारूप क्या है?' अध्याय के अन्तर्गत चार प्रकार के शोध प्रारुपों का उल्लेख किया गया है–

(1) प्रयोगात्मक (Experimental)

(2) वैयक्तिक अध्ययन (Case Study)

(3) अनुलम्ब प्रारूप (Longitudinal)

(4) अनुप्रस्थ काट प्रारुप (Cross-Sectional Design)

कुछ विद्वानों ने अनेकों प्रकारों का उल्लेख किया है। जो कुछ भी हो मोटे तौर पर शोध प्रारुपों को चार महत्वपूर्ण प्रकारों में विभक्त किया जा सकता है–

(1) विवरणात्मक प्रारुप या वर्णनात्मक शोध प्रारुप।

(2) व्याख्यात्मक प्रारुप

(3) अनवेषणात्मक प्रारुप, और

(4) प्रयोगात्मक प्रारुप

किसी विशिष्ट प्रारूप का चयन शोध की प्रकृति पर मुख्यतः निर्भर करता है। कौन सी सूचना चाहिए, कितनी विश्वसनीय सूचना चाहिए, प्रारूप की उपयुक्तता क्या है, लागत कितनी आयेगी, इत्यादि कारकों पर भी प्रारूप चयन निर्भर करता है।

3.7.1 विवरणात्मक या वर्णनात्मक शोध प्रारूप

जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है इस प्रारुप में अध्ययन विषय़ के सम्बन्ध में प्राप्त सभी प्राथमिक तथ्यों का यथावत् विवरण प्रस्तुत किया जाता है। इस प्रारुप का मुख्य उद्देश्य अध्ययन की जा रही इकाई, संस्था, घटना, समुदाय या समाज इत्यादि से सम्बन्धित पक्षों का हूबहू वर्णन किया जाता है। यह प्रारूप वैसे तो अत्यन्त सरल लगता है किन्तु यह दृढ़ एवं अलचीला होता है इसमें विशेष सावधानी अपेक्षित होती है। इस बात पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए कि निदर्शन पर्याप्त एवं प्रतिनिधित्वपूर्ण हो। प्राथमिक तथ्य संकलन की प्रविधि सटीक हो तथा प्राथमिक तथ्य संकलन में किसी भी प्रकार से पूर्वाग्रह या मिथ्या

झुकाव न आने पाये। अध्ययन समस्या के विषय में व्यापक तथ्यों को इकठ्ठा किया जाता है, इसलिए ऐसी सतर्कता बरतनी चाहिए कि अनुपयोगी एवं अनावश्यक तथ्यों का संकलन न होने पाये। अध्ययन पूर्ण एवं यथार्थ हो और अध्ययन समस्या का वास्तविक चित्रण हो इसके लिए विश्वसनीय तथ्यों का होना नितान्त आवश्यक है।

वर्णनात्मक शोध का उद्देश्य मात्र अध्ययन समस्या का विवरण प्रस्तुत करना होता है। इसमें नवीन तथ्यों की खोज या कार्य–कारण व्याख्या पर जोर नहीं दिया जाता है। इस प्रारुप में किसी प्रकार करके प्रयोग भी नही किए जाते हैं। इसमें अधिकांशतः सम्भावित निदर्शन का ही प्रयोग किया जाता है। इसमें तथ्यों के विश्लेषण में क्लिष्ट सांख्यिकीय विधियों का भी प्रयोग सामान्यतः नहीं किया जाता है।

इसमें शोध विषय के बारे में शोधकर्ता को अपेक्षाकृत यथेष्ट जानकारी रहती है इसलिए वह शोध संचालन सम्बन्धी निर्णयों को पहले ही निर्धारित कर लेता है। वर्णनात्मक शोध प्रारूप के अलग से कोई चरण नही होते हैं। सामान्यतः सामाजिक अनुसंधान के जो चरण हैं, उन्हीं का इसमें पालन किया जाता है। सम्पूर्ण एकत्रित प्राथमिक सामग्री के आधार पर ही अध्ययन सम्बन्धित निष्कर्ष निकाले जाते हैं एवं आवश्यकतानुसार सामान्यीकरण प्रस्तुत किये जाने का प्रयास किया जाता है।

3.7.2 व्याख्यात्मक शोध प्रारूप

शोध समस्या की कारण सहित व्याख्या करने वाला प्रारूप व्याख्यात्मक शोध प्रारुप कहलाता है। व्याख्यात्मक शोध प्रारुप की प्रकृति प्राकृतिक विज्ञानों की प्रकृति के समान ही होती है, जिसमें किसी भी वस्तु, घटना या परिस्थिति का विश्लेषण ठोस कारणों के आधार पर किया जाता है। सामाजिक तथ्यों की कार्य–कारण व्याख्या यह प्रारूप करता है। इस प्रारुप में विविध उपकल्पनाओं का परीक्षण किया जाता है तथा परिवर्त्यों में सम्बन्ध और सहसम्बन्ध ढूढ़ने का प्रयास किया जाता है।

3.7.3 अन्वेषणात्मक शोध प्रारूप

जब सामाजिक अनुसंधान का मुख्य उद्देश्य अध्ययन समस्या के सम्बन्ध में नवीन तथ्यों को उद्घाटित करना हो तो इस प्रारुप का प्रयोग किया जाता है। इसमें अध्ययन समस्या के वास्तविक कारकों एवं तथ्यों का पता नही होता है। अध्ययन के द्वारा उनका पता लगाया जाता है। चूँकि इसमें कुछ 'नया' खोजा जाता है इसलिए इसे अन्वेषणात्मक शोध प्रारुप कहा जाता है। इस प्रारूप द्वारा सिद्धान्त का निर्माण होता है।

कभी–कभी अन्वेषणात्मक और व्याख्यात्मक शोध प्रारुप को एक ही मान लिया जाता है। कई विद्वानों ने तो व्याख्यात्मक शोध प्रारुप का उल्लेख तक नहीं किया है। सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाये तो यह कहा जा सकता है कि जिस सामाजिक शोध में कार्य– कारण सम्बन्धों पर बल देने की कोशिश की जाती है, वह व्याख्यात्मक शोध प्रारुप के अन्तर्गत आता है, और जिसमें नवीन तथ्यों या कारणों द्वारा विषय को स्पष्ट किया जाता है, उसे

अन्वेषणात्मक शोध प्रारुप के अन्तर्गत रखते हैं। इसमें शोधकर्ता को अध्ययन विषय के बारे में सूचना नही रहती है। द्वैतियक स्रोतों के द्वारा भी वह उसके विषय में सीमित ज्ञान ही प्राप्त कर पाता है। अज्ञात तथ्यों की खोज करने के कारण या विषय के सम्बन्ध में अपूर्ण ज्ञान रखने के कारण इस प्रकार के शोध प्रारुप में सामान्यतः उपकल्पनाएँ निर्मित नहीं की जाती हैं। उपकल्पनाओं के स्थान पर शोध प्रश्नों का निर्माण किया जाता है और उन्हीं शोध प्रश्नों के उत्तरों की खोज द्वारा शोध कार्य सम्पन्न किया जाता है।

विलियम जिकमण्ड (1988 : 73) ने अन्वेषणात्मक शोध के तीन उद्देश्यों का वर्णन किया है (1) परिस्थिति का निदान करना (2) विकल्पों को छाँटना तथा, (3) नये विचारों की खोज करना।

सरन्ताकोस (1988) के अनुसार सम्भाव्यता, सुपरिचितिकरण, नवीन विचार, समस्या के निरुपण तथा परिचालनीकरण के कारण अन्वेषणात्मक शोध प्रारुप को अपनाया जाता है। वास्तव में जहोदा तथा अन्य (1959 : 33) ने ठीक ही कहा है कि, ''अन्वेषणात्मक अनुसन्धान अनुभव को प्राप्त करने के लिए आवश्यक है जो कि अधिक निश्चित खोज के लिए उपयुक्त उपकल्पना के निर्माण में सहायक हो।''

सामाजिक समस्या के अन्तर्निहित कारणों को खोजने के कारण कारण इस प्रारुप में लचीलापन होना जरुरी है। इसमें तथ्यों की प्रकृति अधिकांशतः गुणात्मक होती है, इसलिए अधिक से अधिक तथ्यों एवं सूचनाओं को प्राप्त करने की कोशिश की जाती है। तथ्य संकलन की प्रविधि इसकी प्रकृति के अनुरूप ही होनी चाहिए। समय और साधन का भी ध्यान रखना चाहिए।

3.7.4 प्रयोगात्मक शोध प्रारुप

ऐसा शोध प्रारुप जिसमें अध्ययन समस्या के विश्लेषण हेतु किसी न किसी प्रकार का 'प्रयोग' समाहित हो, प्रयोगात्मक शोध प्रारुप कहलाता है। यह प्रारुप नियंत्रित स्थिति में जैसे कि प्रयोगशालाओं में ज्यादा उपयुक्त होता है। सामाजिक अध्ययनों में सामान्यतः प्रयोगशालाओं का प्रयोग नही होता है। उनमें नियंत्रित समूह और अनियंत्रित समूहों के आधार पर प्रयोग किये जाते हैं। इस प्रकार के प्रारुप का प्रयोग ग्रामीण समाजशास्त्र और विशेषकर कृषि सम्बन्धी अध्ययनों में ज्यादा होता है। वैसे औद्योगिक समाजशास्त्र में वेस्टन इलेक्ट्रिक कम्पनी के हाथोर्न वर्क्स में हुए प्रयोग काफी चर्चित रहे हैं। ग्रामीण प्रयोगात्मक अध्ययनों में प्रयोगों के आधार पर यह पता लगाया जाता है कि संचार माध्यमों का क्या प्रभाव पड़ रहा है, योजनाओं का लाभ लेने वालों और न लेने वालों की सामाजिक–आर्थिक प्रस्थिति में क्या अन्तर आया है, इत्यादि इत्यादि। इसी प्रकार के बहुत से विषयों/प्रभावों को इस प्रारूप के द्वारा स्पष्ट करने की कोशिश की जाती है। परिवर्त्यों के बीच कारणात्मक सम्बन्धों का परीक्षण इसके द्वारा प्रामाणिक तरीके से हो पाता है।

3.8 निष्कर्ष :

उपरोक्त समस्त विश्लेषण से यह स्पष्ट है कि शोध प्रारूप सामाजिक अनुसन्धान की एक वृहत् योजना, एक संरचना तथा प्रणाली है जो शोध सम्बन्धी प्रश्नों का न केवल उत्तर देती है अपितु प्रसरणों का नियन्त्रण भी करती है। यह शोध के एक महत्वपूर्ण अंश की तार्किक एवं सुव्यवस्थित योजना तथा निर्देशन है। यह किसी जाँच की संरचना होती है तथा यह तार्किक विषय होता है। सम्पूर्ण शोध प्रक्रिया में प्रश्नों के गठन से लेकर, निदर्शन प्रक्रिया, तथ्य संकलन की प्रविधियों के चयन तथा प्राथमिक तथ्यों के संकलन और तत्पश्चात् विश्लेषण में शोध प्रारूप की महत्वपूर्ण भूमिका होती है।

शोध प्रारूप का उद्देश्य शोध को स्पष्ट एवं निश्चित दिशा में निर्देशित करते हुए क्रियान्वित करना होता है। यह न केवल शोध प्रश्नों के सटीक उत्तर देता अपितु अध्ययन समस्या से सम्बन्धित आनुभविक प्रमाणों को वैज्ञानिक प्रविधियों के द्वारा उपलब्ध भी कराता है।

शोध प्रारूप के अनेकों प्रकारों का विद्वानों ने उल्लेख किया है। चार प्रमुख प्रकारों यथा– विवरणात्मक या वर्णनात्मक, व्याख्यात्मक, अन्वेषणात्मक और प्रयोगात्मक का संक्षिप्त विश्लेषण यह स्पष्ट करता है कि विवरणात्मक शोध प्रारूप का मुख्य उद्देश्य अध्ययन विषय का पूर्ण एवं यथार्थ विवरण प्रस्तुत करना होता है। व्याख्यात्मक प्रारूप में कार्य–कारण सम्बन्ध पर बल दिया जाता है, वहीं अन्वेषणात्मक शोध प्रारूप का मुख्य उद्देश्य किसी सामाजिक घटना/परिस्थिति के अन्तर्निहित कारणों को ढूढ़ना होता है। इसमें अध्ययन समस्या के अन्जान पक्षों को उद्घाटित किया जाता है। सिद्धान्त निर्माण में यह प्रारूप सहायक होता है सामान्यतः इस प्रकार के प्रारूप में उपकल्पना का निर्माण न करके शोध प्रश्नों को रखा जाता है। प्रयोगात्मक शोध प्रारूप में नियन्त्रित परिस्थिति में अवलोकन करते हुए मानवीय सम्बन्धों का क्रमबद्ध अध्ययन किया जाता है। इसमें विषय की आवश्यकतानुसार स्वतन्त्र और आश्रित चरों का परीक्षण भी किया जाता है। इसके लिए मानवीय हस्तक्षेप द्वारा प्रभाव स्थितियों को निर्मित किया जाता है। तत्पश्चात् आश्रित चरों पर इसके प्रभाव का अवलोकन किया जाता है।

शोध प्रारूप की केन्द्रीय भूमिका तथ्यों से गलत कारणानात्मक निष्कर्षों को निकालने की सम्भावना को न्यूनतम करना होता है। इसके द्वारा यह सुनिश्चित होता है कि जो साक्ष्य इकट्ठे किये गये हैं वे प्रश्नों के उत्तर देने में या सिद्धान्तों के परीक्षण में यथासम्भव स्पष्ट होंगे।

3.9 शब्दावली

शोध प्रारूप: शोध प्रारूप प्रस्तावित शोध की ऐसी रूपरेखा होती है, जिसे वास्तविक शोध कार्य को प्रारम्भ करने के पूर्व व्यापक रूप से सोच–समझ के पश्चात् तैय्यार किया जाता है

3.10 अभ्यास प्रश्न

1. शोध प्रारूप किसे कहते है ?
2. शोध प्रारूप के विभिन्न प्रकारों की व्याख्या कीजिए ?
3. शोध प्रारूप के महत्वों को बताइये ?

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- मुकर्जी, पी.एन. (2000) मैथडोलॉजी इन सोशल रिसर्च : डिलेमाज् एण्ड पर्सपैक्टिव्स, सेज पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली
- सारन्ताकोस, एस. (1988) सोशल रिसर्च, मैकमिलन, लन्दन
- यंग, पी.वी. (1977) साईन्टिफिक सोशल सर्वेस एण्ड रिसर्च, प्रेन्टिस हाल, नई दिल्ली
- डाबी, जॉन टी. (1954) एन इन्ट्रोडक्शन टू सोशल रिसर्च (सम्पादित), द स्टेकवेल कम्पनी, लन्दन
- करलिंगर, एफ.एन. (1964) फाउण्डेशन ऑफ विहैवियरल रिसर्च, हाल्ट रिनेहार्ट एण्ड विन्सटन, न्यूयार्क
- ब्लैक जेम्स ए. एण्ड डी.जे. चैम्पियन (1976) मैथेड्स एण्ड ईश्यूज इन सोशल रिसर्च, जॉन विले, न्यूयार्क
- यिन, आर.के. (1991) केस स्टडी रिसर्च : डिजाइन एण्ड मैथड, सेज पब्लिकेशन्स, न्यूवरी पार्क, सी.ए.
- वेबसाइट : न्यूयार्क यूनिवर्सिटी फैकल्टी क्लास वेबसाइट्स www.nyu.edu/classes/bkg/methods/005847/chapter1 (what is social research?)/pdf.

इकाई–4

उपकल्पना : अर्थ, विषेषताएँ, प्रकार एवं निर्माण

Hypothesis

इकाई की रूपरेखा :

4.0 उद्देश्य
4.1 प्रस्तावना
4.2 उपकल्पना का अर्थ एवं परिभाषाएँ
4.3 उपकल्पना की विशेषताएँ
4.4 उपकल्पना के प्रकार
4.5 उपकल्पना निर्माण के स्त्रोत
4.6 उपकल्पना का महत्व
4.7 उपकल्पना की सीमाएँ
4.8 शब्दावली
4.10 अभ्यास प्रश्न
सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

4.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन का मुख्य उददेश्य उपकल्पना के अर्थ, उपकल्पना की विशेषताओं एवं प्रकारों, सामाजिक अनुसंधान में उपकल्पना का क्या महत्व है तथा इसकी क्या सीमाएँ हैं इनके बारे में ज्ञान अर्जित करना है।

4.1 प्रस्तावना :

उपकल्पना को अनेक बार प्राक्कल्पना, परिकल्पना, पूर्व कल्पना, आदि नामों से भी सम्बोधित किया जाता है। ''किसी भी सामाजिक प्रघटना के वैज्ञानिक अध्ययन में अनुसंधानकर्ता वस्तुतः एक कदम भी आगे नहीं बढ़ सकता, जब तक कि वह अपना अनुसंधान कार्य उपकल्पना से प्रारम्भ न करे।'' उपकल्पना के अभाव में अनुसंधान की न तो दिशा निर्धारित होती है, एवं न ही विषय–क्षेत्र का ज्ञान अनुसंधानकर्ता को होता है। अतः, अनुसंधानकर्ता के लिए यह आवश्यक है कि वह आँकड़ों के संकलन, अवलोकन के लिए अपनी कल्पना, अनुभव या अन्य किसी स्त्रोत के आधार पर एक कार्यकारी तर्क–वाक्य का निर्माण करे एवं बाद में, अनुसंधान के दौरान, इस तर्क वाक्य की परीक्षा करे। यही तर्क वाक्य, सामान्यतः उपकल्पना कहलाता है।

4.2 उपकल्पना का अर्थ एवं परिभाषाएँ :

किसी भी अनुसंधान और सर्वेक्षण के समस्या के चुनाव के बाद अनुसंधानकर्ता समस्या के बारे में कार्य–कारण सम्बन्धों का पूर्वानुमान लगा लेता है या पूर्व चिन्तन कर लेता है यह पूर्व चिन्तन या पूर्वानुमान ही प्राक्कल्पना, परिकल्पना या 'उपकल्पना' कहलाती जॉर्ज लुण्डबर्ग ने अपनी पुस्तक "Social Research" में उपकल्पना को परिभाषित करते हुए लिखा है कि ''उपकल्पना एक सामयिक तथा काम चलाऊ सामान्यीकरण अथवा निष्कर्ष है जिसकी सत्यता की परीक्षा करना शेष है। अपने बिल्कुल प्रारम्भिक चरणों में उपकल्पना कोई मनगढ़न्त अनुमान, कल्पनापूर्ण विचार अथवा सहजज्ञान, इत्यादि कुछ भी हो सकता है, जो क्रिया अथवा अनुसंधान का आधार बन जाता है।''

एफ.एन. कर्लिंगर का कहना है, ''एक उपकल्पना दो या दो से अधिक परिवर्त्यों के बीच सम्बन्ध प्रदर्शित करने वाला एक अनुमानात्मक कथन है।''

पी.वी. यंग के अनुसार, ''एक कार्यवाहक उपकल्पना एक कार्यवाहक केन्द्रीय विचार है जो उपयोगी अध्ययन का आधार बन जाता है।''

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर यह सुगमतापूर्वक विश्लेषित किया जा सकता है कि उपकल्पना एक ऐसा कार्यकारी तर्क–वाक्य, कल्पनात्मक धारणा या पूर्वानुमान होता है जिसे अनुसंधानकर्ता अनुसंधान की प्रकृति के आधार पर पहले से निर्मित कर लेता है एवं अनुसंधान के दौरान उसकी वैधता की परीक्षा करता है। यह उपकल्पना सत्य एवं असत्य दोनों हो सकती है। यदि अनुसंधान में संकलित एवं विश्लेषित किए गए तथ्यों के आधार पर उपकल्पना प्रमाणित हो जाती है एवं इसी प्रकार की उपकल्पनाएँ अनेक बार, अनेक स्थानों पर अर्थात् समय व काल से परे प्रमाणित होती जाती हैं तो वे धीरे– धीरे एक सिद्धान्त के रूप में प्रतिस्थापित हो जाती हैं।

4.3 उपकल्पना की विशेषताएँ

गुडे एवं हॉट ने सामाजिक अनुसंधान में उपयोगी उपकल्पना की विशेषताओं की विवेचना की है, जो निम्नलिखित है :–

स्पष्टता : उपकल्पनाओं का अवधारणात्मक रूप में स्पष्ट होना परमावश्यक है। उपकल्पना की स्पष्टता में, गुडे तथा हॉट के अनुसार, दो बातें सम्मिलित हैं – एक तो यह कि उपकल्पना में निहित अवधारणाओं को स्पष्ट रूप से परिभाषित किया जाए ओर दूसरी यह कि परिभाषाऐं ऐसी स्पष्ट भाषा में लिखी जाएँ कि अन्य लोग भी सामान्यतः उसका सही अर्थ समझ सकें।

अनुभवाश्रित सन्दर्भ : इस विशेषता का तात्पर्य यह है कि वही उपकल्पना वैज्ञानिक अनुसंधान में प्रयुक्त की जा सकती है जिसमें कि आदर्शात्मक निर्णय का पुट नहीं है। इसका अर्थ यह है कि वैज्ञानिक को अपनी उपकल्पना में किसी आदर्श को प्रस्तुत करने का प्रयत्न नहीं करना चाहिए। अपितु उसका सम्बन्ध ऐसे विचार या ऐसी अवधारणा से होना

चाहिए जिसकी सत्यता की परीक्षा वास्तविक प्रयोग अथवा वास्तविक तथ्यों के आधार पर की जा सके।

विशिष्टता : उपकल्पना अगर अत्यन्त सामान्य है तो उससे यथार्थ निष्कर्ष तक पहुँचना संभव नहीं होता है; क्योंकि किसी विषय के सभी पक्षों का वैज्ञानिक अध्ययन हम एक ही समय पर नहीं कर सकते, अतः यथार्थ ज्ञान की प्राप्ति के लिए यह आवश्यक है कि उपकल्पना अध्ययन–विषय के किसी विशेष पहलू से सम्बद्ध हो; अगर उसमें विशिष्टता का गुण नहीं हुआ तो उसकी सत्यता की जाँच करना भी कठिन हो जाता है, और जो उपकल्पना जाँच से परे है वह वैज्ञानिक के लिए निरर्थक भी है।

उपलब्ध प्रविधियों से सम्बद्ध : उपकल्पना का निर्माण इस बात को ध्यान में रखते हुए करना चाहिए कि उसकी सत्यता की जाँच उपलब्ध प्रविधियों द्वारा संभव हो। इसका तात्पर्य यह है कि उपकल्पना इस प्रकार की हो कि वह अनुसंधान का एक सामयिक आधार भी बन सकती है या नहीं, इसकी परीक्षा उपलब्ध प्रविधियों द्वारा की जा सके।

सिद्धान्त समूह से सम्बद्ध : उपकल्पना अध्ययन विषय से सम्बद्ध किसी पूर्वस्थापित सिद्धान्त के क्रम में हो क्योंकि असम्बद्ध उपकल्पनाओं की परीक्षा विस्तृत सिद्धान्तों के सन्दर्भ में ही की जा सकती है।

4.4 उपकल्पनाओं के प्रकार

एक अनुसंधानकर्ता के लिए इस बात की जानकारी भी आवश्यक है कि सामाजिक विज्ञानों में किन–किन प्रकारों की उपकल्पनाओं का प्रयोग किया जाता है। सामाजिक यथार्थ की जटिल एवं अमूर्त प्रकृति के कारण उपकल्पनाओं का कोई एक सर्वमान्य वर्गीकरण प्रस्तुत करना संभव नहीं है। अतः अनेक विद्वानों ने अपने–अपने मतानुसार उपकल्पनाओं को वर्गीकृत किया है।

मैक गुइगन ने तीन प्रकार की उपकल्पनाएँ बताई हैं –

सार्वभौमिक (Universal) : इस वर्ग में वे उपकल्पनाऐं सम्मिलित की जाती है जिनका अध्ययन किया जाने वाला सम्बन्ध सभी चरों से सभी समय तथा सभी स्थानों पर रहता है।

अस्तित्वात्मक (Existential) : ऐसी उपकल्पना जो कम से कम एक मामलें में चरों के अस्तित्व को उचित घोषित कर सके।

हेज ने दो प्रकार की उपकल्पनाएँ बताई है :

सरल उपकल्पना – इसमें किन्हीं दो चरों में सहसम्बन्ध ज्ञात करते हैं।

जटिल उपकल्पना – इसमें एक से अधिक चर होते हैं तथा उनमें सहसम्बन्ध ज्ञात करने के लिये उच्च सांख्यिकीय प्रविधियों का प्रयोग करते हैं।

वैज्ञानिक अनुसंधान में उपकल्पना को सिद्ध करना वैज्ञानिक का मुख्य कार्य है। वैज्ञानिक अस्तित्वात्मक उपकल्पना द्वारा अपनी अनुसंधानिक उपकल्पना को सिद्ध करने में

अधिक सफल रह सकता है तथा वह किसी घटना के अस्तित्व को स्थापित करता है। तत्पश्चात् वह अध्ययन की जाने वाली घटना का सामान्यीकरण करना चाहता है। किसी विशिष्ट घटना का अस्तित्वात्मक उपकल्पना द्वारा अध्ययन अथवा निरीक्षण करना कठिन कार्य है। इसी कारण अति विशिष्ट उपकल्पना से सार्वभौमिक उपकल्पना बनाने में यह कठिनाई अनुभव करता है। वैज्ञानिक का मुख्य कार्य यह स्थापित करना होता है कि किन विशेष दशाओं में कोई घटना उत्पन्न होती है जिससे वह आवश्यक दशाओं को पाकर सार्वभौमिक उपकल्पनाओं का निर्माण कर सके। अनुसंधानों में सार्वभौमिक कथनों की भी आवश्यकता होती है। सार्वभौमिक कथनों में पुर्वानुमान मूल्य अधिक होता है। अतएव इस प्रकार के कथन अनुसंधान में अधिक महत्वपूर्ण है।

(क) सकारात्मक कथन : इसमें उपकल्पना का कथन सकारात्मक रूप में करते हैं; जैसे वर्ग 'अ' की बुद्धिलब्धि वर्ग 'ब' से अधिक है।

(ख) नकारात्मक कथन : इस प्रकार की उपकल्पना में कथन नकारात्मक होता है; जैसे वर्ग 'अ' की बुद्धिलब्धि वर्ग 'ब' से अधिक नहीं है।

इन दोनों प्रकार की उपकल्पनाओं को निर्देशित उपकल्पना कहते हैं। इनमें एक दोष यह होता है कि जब अनुसंधानकर्ता एक कथन सकारात्मक अथवा नकारात्मक रूप में कर देता है तो उसमें उनके स्वनिहित हो जाने की संभावना रहती है।

शून्य उपकल्पना (Null Hypothesis) : इसमें यह मानकर चलते हैं कि दो चर जिनमें सम्बन्ध ज्ञात करने जा रहे हैं उनमें कोई अन्तर नहीं है। नल (Null) जर्मन भाषा का शब्द है जिसका अर्थ होता है ''शून्य''। अतः इस उपकल्पना को शून्य उपकल्पना भी कहते हैं उदाहरणार्थ वर्ग 'अ' और वर्ग 'ब' की बुद्धिलब्धि में कोई अंतर नहीं है। शून्य उपकल्पना को नकारात्मक उपकल्पना इस अर्थ में मानते हैं कि इसमें यह मानकर चलते हैं कि दो चरों में कोई सम्बन्ध नहीं है अथवा दो समूहों में किसी विशेष चर के आधार का कोई अन्तर नहीं है।

गुडे एवं **हॉट** ने "Methods in Social Research" में उपकल्पनाओं के तीन प्रकारों का उल्लेख किया है:

आनुभविक एकरूपताओं सम्बन्धी (Related to Empirical Uniformities) : समाज और संस्कृति में अनेक कहावतें, मुहावरें, लोकोक्तियाँ होती हैं जिनको उससे सम्बन्धित सभी लोग जानते हैं तथा सत्य मानते हैं। सामाजिक अनुसंधानकर्ता उन्हीं को उपकल्पना बनाकर अवलोकनों, आनुभविक तथ्यों तथा आँकड़ों को एकत्र करके उनकी जाँच करते हैं और निष्कर्ष के रूप में उन्हें प्रस्तुत करते हैं। इस प्रकार की उपकल्पनाएँ सामान्य ज्ञान पर आधारित कथनों का आनुभविक तथ्यों द्वारा परीक्षण करती हैं।

आदर्श प्रारूपों सम्बन्धी (Related to Complex Ideal Types) : कुछ उपकल्पनाएँ जटिल आदर्श प्रारूपों से सम्बन्धित होती है। इन उपकल्पनाओं का उद्देश्य आनुभविक

समरूपताओं के बीच तार्किक आधार पर निकाले गये सम्बन्धों का परीक्षण करना है। इन उपकल्पनाओं का उद्देश्य तथा कार्य उपकरणों तथा समस्याओं का निर्माण करना है। इसमें आगे जटिल क्षेत्रों में अनुसंधान करने के लिए सहायता मिलती है। आदर्श प्रारूप से सम्बन्धित उपकल्पनाओं की जाँच तथ्य एकत्र करके की जाती है; और तत्पश्चात् निष्कर्ष निकाले जाते हैं।

विश्लेषणात्मक चरों सम्बन्धी (Related to Analytical Variables) : यह उपकल्पना चरों के तार्किक विश्लेषण के अतिरिक्त विभिन्न चरों में परस्पर क्या गुण सम्बन्ध हैं, उसका भी विशेष रूप से विश्लेषण करती है। विभिन्न चर एक दूसरे को प्रभावित करते हैं । इन प्रभावों का तार्किक आधार ढूढ़ना इन उपकल्पनाओं का उद्देश्य है। विश्लेषणात्मक चरों से सम्बन्धित उपकल्पनाएँ अमूर्त प्रकृति की होती हैं। प्रयोगात्मक अनुसंधान में इन उपकल्पनाओं का विशेष रूप से प्रयोग किया जाता है।

4.5 उपकल्पना निर्माण के स्त्रोत :

सामान्यतः, सामाजिक विज्ञानों में उपकल्पनाओं के दो प्रमुख स्त्रोतों का उल्लेख किया गया है:—

वैयक्तिक या निजी स्त्रोत — इसमें अनुसंधानकर्ता की अपनी स्वयं की अन्तर्दृष्टि, सूझ—बूझ, विचार, अनुभव कुछ भी हो सकता है। वह सामान्यतया अपनी प्रतिभा तथा अनुभवों के आधार पर उपकल्पना का निर्माण कर सकता है।

बाह्य स्त्रोत — इसमें कोई भी साहित्य, कल्पना, कहानी, कविता, नाटक, उपन्यास आदि कुछ भी हो सकता है जो कि उपकल्पना का स्त्रोत होता है।

गुडे एवं हॉट ने Methods in Social Research में उपकल्पना के चार स्त्रोतों का उल्लेख किया है :—

सामान्य संस्कृति : व्यक्तियों की गतिविधियों को समझने का सबसे अच्छा तरीका उनकी संस्कृति को समझना है। व्यक्तियों का व्यवहार एवं उनका सामान्य चिन्तन, एक सीमा तक उनकी अपनी संस्कृति के अनुरूप ही होता है। अतः अधिकांश उपकल्पनाओं का मूल स्त्रोत वह सामान्य संस्कृति होती है, जिसमें विशिष्ट विज्ञान का विकास होता है। सामान्य संस्कृति को तीन प्रमुख भागों में बाँटकर समझा जा सकता है :—

(i)सांस्कृतिक पृष्ठभूमि (ii)सांस्कृतिक चिन्ह (iii) सामाजिक—सांस्कृतिक परिवर्तन।

सांस्कृतिक पृष्ठभूमि का तात्पर्य है कि जिस सांस्कृतिक पृष्ठभूमि में हम रहते हैं उस संस्कृति की जो विशेषताएँ है वह उपकल्पना का स्त्रोत बन सकती है जैसे भारत व ब्रिटेन की पृथक—पृथक सांस्कृतिक पृष्ठभूमि।

सांस्कृतिक चिन्ह के अन्तर्गत लोक विश्वास, लोक कथाएँ उपकल्पना का स्त्रोत हो सकती हैं।

सामाजिक—सांस्कृतिक परिवर्तनों के कारण परिवर्तित सांस्कृतिक मूल्य भी उपकल्पना के स्त्रोत बन सकते हैं।

वैज्ञानिक सिद्धान्त : वैज्ञानिक सिद्धान्त जो समय–समय पर वैज्ञानिकों द्वारा प्रस्तुत किये जाते हैं, भी उपकल्पना के स्त्रोत हो सकते हैं। प्रत्येक विज्ञान में अनेकों सिद्धान्त होते हैं। इन सिद्धान्तों से हमें एक विषय के विभिन्न पहलुओं के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त होती है। इस प्रकार इन सिद्धान्तों के अन्तर्गत सम्मिलित पक्षों के सम्बन्ध में प्राप्त ज्ञान भी उपकल्पनाओं का स्त्रोत माना जा सकता है।

सादृश्यताएँ : जब कभी दो क्षेत्रों में कुछ समानताएँ या समरूपताएँ दिखाई देती हैं तो, सामान्यतया, इस आधार पर भी उपकल्पनाओं का निर्माण कर लिया जाता है; अर्थात, ऐसी समरूपताएँ भी उपकल्पना के लिये स्त्रोत बन जाती हैं। कभी–कभी दो तथ्यों के मध्य समानता के कारण नई उपकल्पना का जन्म होता है, और इनकी प्रेरणा का कारण सादृश्ताएँ होती हैं।

व्यक्तिगत अनुभव : व्यक्तिगत अनुभव भी उपकल्पना का महत्वपूर्ण स्त्रोत है। न्यूटन ने पेड़ से गिरने वाले सेव को देखकर गुरूत्वाकर्षण के महान सिद्धान्त की रचना की। इसी प्रकार, डार्विन को जीवन संघर्ष एवं उपयुक्त व्यक्ति की जीवन क्षमता का सिद्धान्त स्थापित करने में अपने व्यक्तिगत अनुभवों पर ही उपकल्पनाओं का निर्माण करना पड़ा था।

4.6 उपकल्पना का महत्व :

अनुसंधान में उपकल्पना के महत्व को अनेक प्रकार से दर्शाया गया है। विद्वान इसकी तुलना ध्रुवतारे एवं कुतुबनुमा से करते हैं, तो कुछ विद्वान समुद्र में जहाजों को रास्ता दिखलाने वाले प्रकाश स्तम्भ से जो वैज्ञानिकों को भटकने से बचाते हैं। इसी के द्वारा अनुसंधानकर्ता सत्य और असत्य की पुष्टि करता है एवं विषय से सम्बन्धित वास्तविकता का पता लगाता है। उपकल्पना के महत्व की विवेचना हम इस प्रकार कर सकते हैंः–

अध्ययन के उद्देश्य का निर्धारण : उपकल्पना हमारे अध्ययन के उद्देश्य को निर्धारित करती है। उपकल्पनाएँ हमें यह बताती है कि हमें किन तथ्यों का संकलन करना है और किनका नहीं, कौन से तथ्य हमारे उद्देश्य के अनुरूप और सार्थक है तथा कौन से निरर्थक।

अध्ययन को उचित दिशा प्रदान करना : उपकल्पनाएँ अनुसंधानकर्ता का ध्यान अध्ययन–विषय के एक विशिष्ट पहलू पर केन्द्रित कर देती है और अनुसंधानकर्ता उसी के अनुसार एक निश्चित दिशा की ओर बढ़ता चला जाता है। उपकल्पना के आधार पर अनुसंधानकर्ता यह जानता है कि उसे क्या करना है और क्या नहीं करना है ? वास्तव में ठीक–ठीक उपकल्पना का निर्माण कर लेने से न केवल अध्ययन क्षेत्र का ही अपितु लक्ष्य का भी, स्पष्टीकरण हो जाता है और अनुसंधानकर्ता का प्रत्येक प्रयास उद्देश्यपूर्ण हो जाता है।

अध्ययन क्षेत्र को सीमित करना : तथ्यों की दुनियां बहुत बड़ी है और किसी भी अनुसंधानकर्ता के लिये यह संभव नहीं है कि वह एक विषय से सम्बद्ध सभी पहलुओं का

एक ही समय पर अध्ययन करे, अगर ऐसा किया गया तो अध्ययन विषय के सम्बन्ध में कोई भी विशिष्ट व यथार्थ ज्ञान हमें प्राप्त नहीं हो सकता। ऐसी स्थिति में उपकल्पना अध्ययन क्षेत्र को सीमित कर अध्ययन विषय के एक विशिष्ट पहलू पर अनुसंधानकर्ता का ध्यान आकर्षित करती रहती है।

तथ्यों के संकलन में सहायक : उपकल्पना अनुसंधानकर्ता को समस्या से सम्बन्धित उपयुक्त तथ्यों को संकलित करने को प्रेरित करती है। प्रारम्भ में ऐसा भी हो सकता है कि वैचारिक अस्पष्टता के कारण हम सभी तथ्यों को एकत्रित कर लेते हैं किन्तु बाद में उनमें से हमें कुछ विशिष्ट तथ्यों का ही चुनाव करना पड़ता है। इस कार्य में उपकल्पना सहायक होती है।

निष्कर्ष निकालने में सहायक : जो भी वैज्ञानिक अध्ययन उपकल्पना के निर्माण में प्रारम्भ होता है। उसमें अध्ययन के अन्त में निष्कर्ष निकालने में उपकल्पना बहुत अधिक सहायक सिद्ध होती है क्योंकि तथ्यों का संकलन, वर्गीकरण और सारणीयन उपकल्पना को ध्यान में रखकर किया जाता है। इसके बाद जब निष्कर्ष निकाले जाते हैं तो उसमें यह देखा जाता है कि उपकल्पना सत्य है अथवा असत्य। उपकल्पना में जिन तथ्यों का परस्पर गुण सम्बन्ध दिया होता है उन्हीं की सत्यता की जॉच करके अध्ययनकर्ता निष्कर्ष रूप में प्रस्तुत करता है।

सिद्धान्त निर्माण में सहायक : उपकल्पना तथ्यों व सिद्धान्तों के बीच की कड़ी है, क्योंकि जब उपकल्पना सत्य सिद्ध हो जाती है तथा स्थापित हो जाती है तो वह एक सिद्धान्त का भाग बन जाती है।

4.7 उपकल्पना की सीमाएँ :

उपकल्पनाएँ सामाजिक अनुसंधान में मार्गदर्शन की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। फिर भी यदि इसका प्रयोग सावधानी से नहीं किया गया तो यह अध्ययन के लिए खतरा भी पैदा कर सकती है इसकी सीमाएँ निम्नलिखित है :–

अनुसंधान की असावधानियाँ : अनुसंधानकर्ता उपकल्पना के निर्माण के समय स्वयं की भावनाओं, पूर्वाग्रहों तथा इच्छाओं पर नियन्त्रण नहीं कर पाता है, इस असावधानी के कारण उपकल्पना में पक्षपात आ जाता है जिसके फलस्वरूप दोषपूर्ण परिणाम निकलते हैं।

उपकल्पना को अंतिम मार्गदर्शक मानना : अध्ययनकर्ता उपकल्पना को अंतिम मार्गदर्शक मान बैठता है, और जैसी उपकल्पना होती है उसी को ध्यान में रखकर तथ्यों को एकत्र करता है। अध्ययन क्षेत्र में स्वयं के विवेक को बिल्कुल काम में नहीं लेता है। इससे अध्ययन वैज्ञानिक नहीं रह पाता है।

अध्ययन में पक्षपात : कई बार अनुसंधानकर्ता अपनी किसी विशिष्ट रूचि और संवेग के कारण एक विशेष अध्ययन–विषय का चुनाव करता है और उसके प्रति पक्षपातपूर्ण रवैया अपनाता है। तब उसके द्वारा किया जाने वाला अध्ययन अवैज्ञानिक हो जाता है।

उपकल्पना आधारित तथ्य : प्रारम्भ में अध्ययकर्ता उपकल्पना के आधार पर ही तथ्यों का संकलन करता है। उसे चाहिये कि वह वास्तविक तथ्यों के आधार पर अपनी उपकल्पना में संशोधन एवं परिवर्तन कर ले; ऐसा न करने पर संकलित तथ्य असंगत एवं व्यर्थ सिद्ध होते हैं।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि उपकल्पना अपने आप में अनुसंधान में महत्वपूर्ण कार्य करती है; लेकिन थोड़ी सी असावधानी से वह हानिकारक सिद्ध हो सकती है। यंग का कहना है कि अध्ययनकर्ता को तथ्यों को सिद्ध करने की ओर ध्यान नहीं देना चाहिये; उसे तो परिस्थिती को सीखनें तथा समझने की ओर ध्यान रखना चाहिए; अतः, उसे उपकल्पना के प्रति तटस्थ रहना चाहिए।

4.8 शब्दावली :

उपकल्पना : किसी भी समस्या के बारे में कार्य–कारण संबंधों का पूर्वानुमान लगा लेना ही उपकल्पना कहलाती है।

चर : यह एक संकेत है जिससे अनेकों अंश (Numeral) अथवा मान (Value) निर्धारित किए जा सकते हैं।

सांस्कृतिक चिन्ह : किसी समाज या संस्कृति के लोक–ज्ञान के विभिन्न अंग जैसे लोककथाएँ सांस्कृतिक चिन्ह कहे जाते हैं।

शून्य उपकल्पना : जब कभी दो चरों के मध्य कोई अंतर नहीं होता तो उसे शून्य उपकल्पना कहते हैं।

सादृश्यताएँ : जब कभी दो वस्तुओं में समानता होती है तथा एक वस्तु पर पड़ने वाले प्रभाव के आधार पर दूसरी वस्तु पर भी उसी प्रभाव को जानने की कोशिश की जाती है तब उसे सादृश्यताएँ कहते हैं। यही सादृश्यताएँ उपकल्पना का स्त्रोत बन जाती हैं।

4.10 अभ्यास प्रश्न

1. उपकल्पना को परिभाषित कीजिए तथा इसके विभिन्न स्त्रोतों की व्याख्या कीजिए।
2. एक उत्तम उपकल्पना की विशेषताओं का वर्णन कीजिए।
3. सामाजिक अनुसंधान में उपकल्पना का क्या महत्व है? इसके विभिन्न प्रकारों को समझाइए।
4. उपकल्पना की सीमाओं का विवेचन कीजिये।

संदर्भ ग्रंन्थ :

- एकॉफ, आर.. एल. : द् डिजाइन ऑफ सोशल रिसर्च : शिकागो, 1953.
- कोहन, एम. एण्ड नैगेल : एन इन्ट्रोडक्शन टू लॉजिक एण्ड साइन्टिफिक मैथड्स, न्यूयार्क, 1934.

- गुडे, डब्ल्यू, जी. एण्ड हॉट, पी.के. : मैथ्ड्स इन सोशल रिसर्च : न्यूयार्क, 1952.
- लुण्डबर्ग, जी.ए. : सोशल रिसर्च, न्यूयार्क, 1942.
- यंग, पी.वी. : साइन्टिफिक सोशल सर्वे एण्ड रिसर्च, न्यूयार्क, 1949.

इकाई–5

अवलोकन
Observation

इकाई की रूपरेखा :

5.0 उद्देश्य
5.1 प्रस्तावना
5.2 अवलोकन का अर्थ एवं अवलोकन की विशेषतायें
5.3 अवलोकन की प्रक्रिया
5.4 अवलोकन के प्रकार एवं उनके गुण दोष
5.5 अवलोकन पद्धति की उपयोगिता एवं सीमाएं
5.6 शब्दावली
5.7 **अभ्यास प्रश्न**
संदर्भ ग्रंथ **सूची**

5.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप

- अवलोकन का सामाजिक अनुसंधान सम्बन्धी अर्थ एवं उसकी विशेषतायें जान सकेंगे।
- सामाजिक शोध में वैज्ञानिक अवलोकन की प्रक्रिया की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- सामाजिक शोध में प्रयुक्त अवलोकन के प्रकारों की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- सामाजिक शोध में अवलोकन की भूमिका को समझ सकेंगे।

5.1 प्रस्तावना

सामाजिक विज्ञान के सन्दर्भ में निरीक्षण विधि कोई नवीन विधि नहीं रही है। प्राकृतिक विज्ञानों में इस प्रवधि का प्रयोग सम्भतः प्राचीन समय से होता आ रहा है। और विज्ञान के क्षेत्र में नये प्रयोग और अनुसंधानों मे जो प्रमुखतः एवं सबसे लोकप्रिय विधि है वह अवलोकन अथवा निरीक्षण विधि है।

मानव ने अपने चारों ओर के पर्यावरण का प्रारम्भिक ज्ञान अवलोकन द्वारा ही प्राप्त किया है। मानव के पास संचित ज्ञान का अधिकाशं भाग अवलोकन का ही परिणाम है। इस पाठ को पढ़ने के बाद आप यह जान जायेगें कि दैनिक जीवन में ही नहीं वरन् विज्ञानों के संदर्भ में भी अवलोकन, अनुसंधान की प्रमुख प्रविधि के रूप में जाना जाता है। सामाजिक विज्ञानों में तो इस प्रविधि का प्रयोग बाद में आरम्भ हुआ है, लेकिन प्राकृतिक विज्ञानों में

इसका प्रयोग सम्भवतः प्रारम्भ से ही होता आया है। गुडे एवं हाट अवलोकन को विज्ञान का आधार मानते हुए लिखते है, ''विज्ञान अवलोकन से प्रारम्भ होता है तथा उसे सत्यापन के लिये अन्ततः आवश्यक रूप से अवलोकन पर ही पुनः लौटना पड़ता है।'' समाजशास्त्र के जन्मदाता अगस्त कॉम्ट जब समाजशास्त्र की रूपरेखा का निर्माण कर रहे थे, तब उन्होंने भी यह अनुभव किया कि यदि समाजशास्त्र को विज्ञान का दर्जा दिलाना है, तो अवलोकन द्वारा उसकी विषय वस्तु का निर्माण करना होना चाहिए। उनके उत्तराधिकारी के रूप में माने जाने वाले समाजशास्त्री इमाइल दुर्खीमी ने भी अपनी पुस्तक **''द रूल्स ऑफ सोशियोलोजिकल मैथड्स''** में तथ्यों के वैज्ञानिक अवलोकन पर ही बल दिया है।

5.2 अवलोकन का अर्थ एवं विशेषतायें

अवलोकन शब्द अंग्रेजी भाषा के शब्द **'Observation'** का पर्यायवाची है। जिसका अर्थ 'देखना, प्रेक्षण, निरीक्षण, अर्थात् कार्य–कारण एवं पारस्पारिक सम्बन्धों को जानने के लिये स्वाभाविक रूप से घटित होने वाली घटनाओं का सूक्ष्म निरीक्षण है। प्रो0 गडे एवं हॅाट के अनुसार विज्ञान निरीक्षण से प्रारम्भ होता है और फिर सत्यापन के लिए अन्तिम रूप से निरीक्षण पर ही लौटकर आता है। और वास्तव में कोई वैज्ञानिक किसी भी घटना को तब तक स्वीकार नहीं करता जब तक कि वह स्वंय उसका अपनी इन्द्रियों से निरीक्षण नहीं करता।

सी.ए. मोजर ने अपनी पुस्तक 'सर्वे मैथड्स इन सोशल इनवेस्टीगेशन' में स्पष्ट किया है कि अवलोकन में कानों तथा वाणी की अपेक्षा नेत्रों के प्रयोग की स्वतन्त्रता पर बल दिया जाता है। अर्थात्, यह किसी घटना को उसके वास्तविक रूप में देखने पर बल देता है। श्रीमती पी.वी.यंग ने अपनी कृति ''सांइटिफिक सोशल सर्वेज एण्ड रिसर्च'' में कहा है कि ''अवलोकन को नेत्रों द्वारा सामूहिक व्यवहार एवं जटिल सामाजिक संस्थाओं के साथ–साथ सम्पूर्णता की रचना करने वाली पृथक इकाईयों के अध्ययन की विचारपूर्ण पद्धति के रूप में प्रयुक्त किया जा सकता है।'' अन्यत्र श्रीमती यंग लिखती है कि ''अवलोकन स्वतः विकसित घटनाओं का उनके घटित होने के समय ही अपने नेत्रों द्वारा व्यवस्थित तथा जानबूझ कर किया गया अध्ययन है।'' इन परिभाषाओं में निम्न बातों पर बल दिया गया है। (1) अवलोकन का सम्बन्ध कृत्रिम घटनाओं एवं व्यवहारों से न हो कर, स्वाभाविक रूप से अथवा स्वतः विकसित होने वाली घटनाओं से है। (2) अवलोकनकर्त्ता की उपस्थिति घटनाओं के घटित होने के समय ही आवश्यक है ताकि वह उन्हें उसी समय देख सके। (3) अवलोकन को सोच समझकर या व्यवस्थित रूप में आयोजित किया जाता है।

उपरोक्त परिभाषाओं के अध्ययन से यह स्पष्ट है कि एक निरीक्षण विधि प्राथमिक सामग्री (Primary data) के संग्रहण की प्रत्यक्ष विधि है। निरीक्षण का तात्पर्य उस प्रविधि से है जिसमें नेत्रों द्वारा नवीन अथवा प्राथमिक तत्यों का विचाारपूर्वक संकलन किया जाता है।

उपरोक्त विश्लेषण के आधार पर हम अवलोकन की निम्न विशेषतायें स्पष्ट कर सकते हैं।

1. मानवीय इन्द्रियों का पूर्ण प्रयोग— यद्यपि अवलोकन में हम कानों एवं वाक् शक्ति का प्रयोग भी करते हैं, परन्तु इनका प्रयोग अपेक्षाकृत कम होता है। इसमें नेत्रों के प्रयोग पर अधिक बल दिया जाता है। अर्थात्, अवलोकनकर्त्ता जो भी देखता है— वही संकलित करता है।

2. उद्देश्यपूर्ण एवं सूक्ष्म अध्ययन— अवलोकन विधि सामान्य निरीक्षण से भिन्न होती है। हम हर समय ही कुछ न कुछ देखते रहते हैं; परन्तु वैज्ञानिक दृष्टिकोण से इसे अवलोकन नहीं कहा जा सकता। वैज्ञानिक अवलोकन का एक निशचित उद्देश्य होता है; और उसी उद्देश्य को दृष्टिगत रखते हुये समाज वैज्ञानिक सामाजिक घटनाओं का अवलोकन करते हैं।

3. प्रत्यक्ष अध्ययन— अवलोकन पद्धति की यह विशेषता है कि इसमें अनुसंधानकर्त्ता स्वयं ही अध्ययन क्षेत्र में जाकर अवलोकन करता है, और वांछित सूचनायें एकत्रित करता है।

4. कार्य—कारण सम्बन्धों का पता लगाना— सामान्य अवलोकन में अवलोकनकर्त्ता घटनाओं को केवल सतही तौर पर देखता है, जबकि वैज्ञानिक अवलोकन में घटनाओं के बीच विद्‌यमान कार्य—कारण सम्बन्धों को खोजा जाता है ताकि उनके आधार पर सिद्धान्तों का निर्माण किया जा सके।

5. निष्पक्षता— अवलोकन में क्योंकि अवलोकनकर्त्ता स्वयं अपनी आँखों से घटनाओं को घटते हुये देखता है, अतः उसके निष्कर्ष निष्पक्ष होते हैं।

6. सामूहिक व्यवहार का अध्ययन— सामाजिक अनुसंधान में जिस प्रकार से व्यक्तिगत व्यवहार का अध्ययन करने के लिये ''वैयक्तित्व अध्ययन पद्धति'' को उत्तम माना जाता है, उसी प्रकार से सामूहिक व्यवहार का अध्ययन करने के लिये अवलोकन विधि को उत्तम माना जाता है।

5.2.1 निरीक्षण प्रविधि की विषेषताएँ

मानव इन्द्रियों का प्रयोग — निरीक्षण प्रविधि में मानवीन ज्ञानिन्द्रियों का पूर्ण उपयोग होता है। यद्यपि हम इस प्रविधि में कान व नाक शक्ति का भी प्रयोग करते है। परन्तु अपेक्षाकृत इनका प्रयोग कम होता है। विशेषकर नेत्रों के प्रयोग को महत्वपूर्ण माना गया है। निरीक्षण कर्ता जो कुछ देखता है नहीं संकलित कर लेता है।

निश्चित उददेश्य और सूक्ष्यमता पूर्वक अध्ययन — निरीक्षण प्रविधि में निरीक्षण सदैव उददेश्यपूर्ण और सूक्ष्म होता है। इस रूप में यह सामान्य निरीक्षण से भिन्न है। प्रत्येक मनुष्य सदैव कुछ न कुछ देखता है परन्तु वैज्ञानिक ऋणि से इसे निरीक्षण नहीं कहा जा सकता है। निरीक्षण का विशेष उददेश्य होता है। और इसिलिये वह सूक्ष्म और गहन भी होता है।

प्रत्यक्षता के आधार पर — निरीक्षण प्रविधि की प्रमुख विषेषता यह है कि इसका प्रत्यक्ष निरीक्षण किया जा सकता है अनुसंधान कर्ता स्वंय ही अनुसंधान केन्द्र में जाता है। और निरीक्षण आंकड़ों का संकलन करता है। और यही प्रत्यक्ष अध्ययन है।

कार्य कारण में संबंध का पता लगाना – इस प्रविधि की अन्य विषेषता यह है कि यह कार्य कारण में संबंध का पता लगाती हैं। यद्यपि किसी भी प्रकार के गहन या उददेष्यपूर्ण निरीक्षण को हम निरीक्षण कर सकते है। परन्तु वैज्ञाानिक पद्वति के रूप में इसका उददेष्य कार्य कारण संबंध का पता लगाना होता है।

व्यवहारिक और सामूहिक व्यवहार का अध्ययन – निरीक्षण प्रविधि की अन्तिम महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि इस प्रविधि का प्रयोग सामूहिक व्यवहार के अध्ययन के लिए किया जाता है। वैयक्ति व्यवहार की जिस जिस प्रकार सबसे अच्छी प्रविधि वैक्तिक अध्ययन है। उसी प्रकार सामूहिक व्यवहार की अध्ययन की सबसे उत्तम प्रविधि है।

5.3 अवलोकन की प्रक्रिया

अवलोकन सोच समझ कर की जाने वाली क्रमबद्ध प्रक्रिया है। अतः अवलोकन प्रारम्भ करने से पूर्व, अवलोकनकर्त्ता अवलोकन के प्रत्येक चरण को सुनिश्चित कर लेता है।

5-3-1 प्रारम्भिक आवश्यकतायें

अवलोकनकर्त्ता को सर्व प्रथम अवलोकन की रूपरेखा बनाने के लिये यह निशचित करना पड़ता है कि (1) उसे किसका अवलोकन करना है? (2) तथ्यों का आलेखन कैसे करना है? (3) अवलोकन का कौनसा प्रकार उपयुक्त होगा? (4) अवलोकनकर्त्ता व अवलोकित के मध्य सम्बन्ध किस प्रकार स्थापित किया जाना है?

5-3-2 पूर्व जानकारी प्राप्त करना

इस चरण में अवलोकनकर्त्ता निम्न जानकारी पूर्व में प्राप्त कर लेता है। (1) अध्ययन क्षेत्र की इकाईयों के सम्बन्ध में जानकारी। (2) अध्ययन समूह की सामान्य विशेषताओं की जानकारी; जैसे स्वभाव, व्यवसाय, रहन–सहन, इत्यादि। (3) अध्ययन क्षेत्र की भौगोलिक स्थिति की जानकारी, घटना स्थलों का ज्ञान एवं मानचित्र, आदि।

5-3-3 विस्तृत अवलोकन रूपरेखा तैयार करना

रूपरेखा तैयार करने के लिये निम्न बातों को निशचित करना होता है।

(1) उपकल्पना के अनुसार अवलोकन हेतु तथ्यों का निर्धारण,

(2) आवश्यकतानुसार नियंत्रण की विधियों एवं परिस्थितियों का निर्धारण,

(3) सहयोगी कार्यकर्त्ताओं की भूमिका का निर्धारण।

5-3-4 अवलोकन यंत्र

अवलोकन कार्य प्रारम्भ करने से पूर्व, उपयुक्त अवलोकन यंत्रों का निर्माण करना आवश्यक होता है;

जैसे

(1) अवलोकन निर्देशिका या डायरी

(2) अवलोकित तथ्यों के लेखन के लिये उचित आकार के अवलोकन कार्ड

(3) अवलोकन–अनुसूची एवं चार्ट–सूचनाओं को व्यवस्थित रूप से संकलित करने के लिये इनका प्रयोग किया जाता है।

5-3-5 अन्य आवश्यकतायें

इसमें कैमरा, टेप रिकार्डर, मोबाइल आदि को शामिल किया जा सकता है। इनकी सहायता से भी सूचनायें संकलित की जाती है।

5.4 अवलोकन के प्रकार

अध्ययन की सुविधा हेतु निरीक्षण को कई भागों में बाटा जाता है। प्रमुख रूप से निरीक्षण का निम्नवत वर्गीकरण किया जा सकता है।

1 अनियन्त्रित निरीक्षण (Un-controlled observation)

2 नियन्त्रित निरीक्षण (Controlled observation)

3 सहभागी निरीक्षण (Participant observation)

4 असहभागी निरीक्षण (Non-participant-observation)

5 अर्द्वसहभागी निरीक्षण (Quasi-participant observation)

6 सामूहिक निरीक्षण (Mass observation)

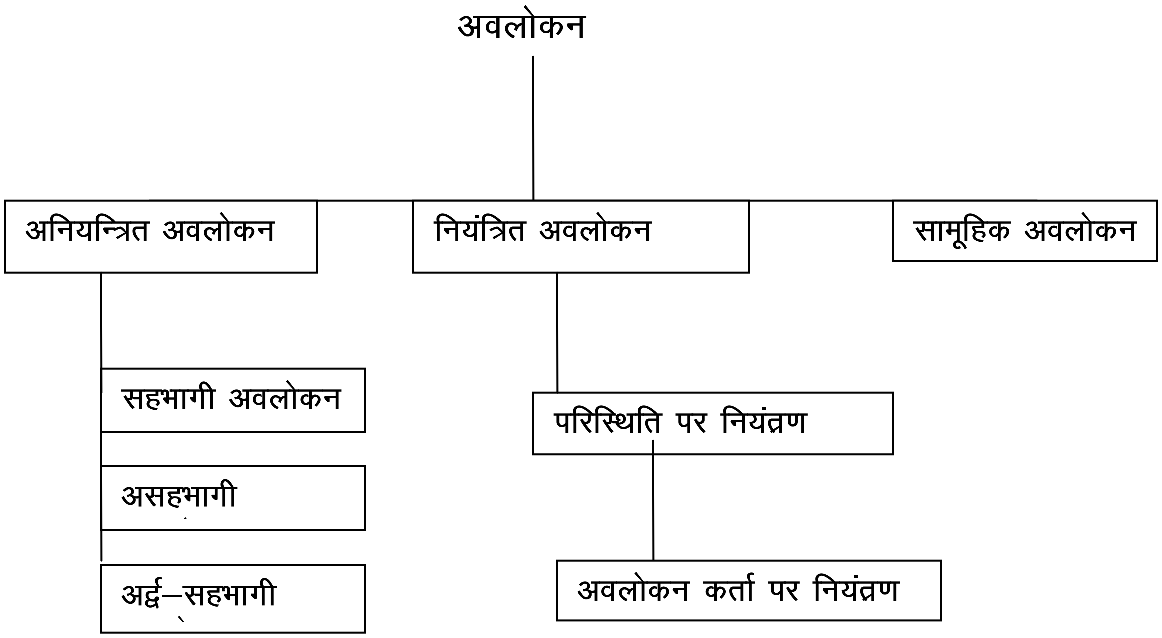

5.4.1 अनियन्त्रित अवलोकन (Uncontrolled Observation)

अनियन्त्रित निरीक्षण ऐसे निरीक्षण को कहा जा सकता है जबकि उन लोगों पर किसी प्रकार का कोई नियंत्रण न रहे जिनका अनुंसधनकर्ता निरीक्षण कर रहा है। दूसरे शब्दों में जब प्राकृतिक पर्यावरण एव अवस्था में किन्ही क्रियाओं का निरीक्षण किया जाता है। साथ

ही क्रियाये किसी भी बाहय शक्ति द्वारा संचालित एंव प्रभावित नही की जाती है तो ऐसे निरीक्षण का अनियंव्रित निरीक्षण कहा जाता है। इस प्रकार के अवलोकन में अवलोकन की जाने वाली घटना को बिना प्रभावित किये हुये, उसे उसके स्वाभाविक रूप में देखने का प्रयास किया जाता है। इसलिए गुड एवं हाट इसे साधारण अवलोकन (Simple observation) कहते हैं। जहोदा एवं कुक इसे 'असंरचित अवलोकन' (Unstructured observation) का नाम देते हैं। समाज विज्ञानों में इस अवलोकन को स्वतन्त्र अवलोकन (Open observation), अनौपचारिक अवलोकन (Informal observation) तथा अनिश्चित अवलोकन (Undirected observation) भी कहा जाता है। सामाजिक अनुसंधानों में अनियन्त्रित अवलोकन पद्धति ही सर्वाधिक प्रयुक्त होती है। जैसा कि गुड एवं हाट कहते हैं कि ''मनुष्य के पास सामाजिक सम्बन्धों के बारे में उपलब्ध अधिकांश ज्ञान अनियन्त्रित (सहभागी अथवा असहभागी) अवलोकन से ही प्राप्त किया गया है।'' इस प्रकार उपरोक्त विवेचन अनियन्त्रित अवलोकन की चार विशेषताओं को स्पष्ट करता है।

(1) अवलोकनकर्त्ता पर किसी भी प्रकार का नियन्त्रण नहीं लगाया जाता है।

(2) अध्ययन की जाने वाली घटना पर भी कोई नियन्त्रण नहीं लगाया जाता है।

(3) घटना का स्वाभाविक परिस्थिति में अध्ययन किया जाता है।

(4) यह अत्यन्त सरल एवं लोकप्रिय विद्यि है।

अनियन्त्रित अवलोकन के तीन प्रकार होते हैं–

5.4.2 अनियन्त्रित अवलोकन की उपयोगिता–

अब आपको स्पष्ट हो गया होगा कि अनियंत्रित अवलोकन, घटनाओं का उनके स्वाभाविक रूप में अध्ययन करने की प्रविधि है। इसके महत्व को इस प्रकार स्पष्ट किया जा सकता है–

(1)सामाजिक घटनाओं को बिना प्रभावित किये, उन्हें उनके स्वाभाविक रूप में देखा जाने एवं सूचनायें एकत्रित किया जाने को संभव बनाना।

(2)अध्ययन में निष्पक्षता व वैषयिकता बनाये को संभव बनाना।

(3)परिवर्तनशील व जटिल सामाजिक घटनाओं एवं व्यवहारों के अध्ययन को व्यावहारिक बनाना।

5.4.3 अनियन्त्रित अवलोकन के दोष–

(1)अवलोकनकर्त्ता इस विश्वास से ग्रसित हो सकता है कि उसने जो कुछ अपनी आँखों से देखा है, वह सब सही है। परिणामस्वरूप, त्रुटियों, भ्रान्तियों आदि की संभावनाएँ बढ़ जाती हैं।

(2)कभी–कभी अनावश्यक तथ्यों के संकलित हो जाने के कारण समय, धन व परिश्रम के अपव्यय होने की सम्भावना रहती है।

(3)घटनाओं को देखते समय अवलोकनकर्त्ता तथ्यों का लेखन नहीं कर पाता है। अतः, आवश्यक सूचनायें छूट भी सकती हैं।

(4)व्यक्तिगत पक्षपात आ जाने के कारण, वैज्ञानिकता खतरे में पड़ सकती है।

5.4.4 नियन्त्रित अवलोकन–

अनियन्त्रित अवलोकन में पायी जाने वाली कमियों जैसे– विश्वसीनयता एवं तटस्थता का अभाव–ने ही नियन्त्रित अवलोकन का सूत्रपात किया है। नियन्त्रित अवलोकन में अवलोकनकर्त्ता पर तो नियन्त्रण होता ही है, साथ ही साथ अवलोकन की जाने वाली घटना अथवा परिस्थिति पर भी नियन्त्रण किया जाता है। अवलोकन सम्बन्धी पूर्व योजना तैयार की जाती है, जिसके अन्तर्गत निर्धारित प्रक्रिया एवं साधनों की सहायता से तथ्यों का संकलन किया जाता है। इस प्रकार के अवलोकन में निम्न दो प्रकार से नियन्त्रण लागू किया जाता है : –

(1)सामाजिक घटना पर नियन्त्रण– इस प्रविधि में अवलोकित घटनाओं को नियन्त्रित किया जाता है जिस प्रकार प्राकृतिक विज्ञानों में प्रयोगशाला में परिस्थितियों को नियन्त्रित करके अध्ययन किया जाता है, उसी प्रकार समाज वैज्ञानिक भी सामाजिक घटनाओं अथवा परिस्थितियों को नियन्त्रित कर के, उनका अध्ययन करता है। तथापि, सामाजिक घटनाओं एवं मानवीय व्यवहारों को नियन्त्रित करना अत्यन्त कठिन कार्य होता है। इस प्रविधि का प्रयोग बालकों के व्यवहारों, श्रमिकों की कार्य–दशाओं, आदि, के अध्ययनों में प्रयुक्त किया जाता है।

(2)अवलोकनकर्त्ता पर नियन्त्रण– इसमें घटना पर नियन्त्रण न रखकर, अवलोकनकर्त्ता पर नियन्त्रण लगाया जाता है। यह नियन्त्रण कुछ साधनों द्वारा संचालित किया जाता है। जैसे– अवलोकन की विस्तृत पूर्व योजना, अवलोकन अनुसूची, मानचित्रों, विस्तृत क्षेत्रीय नोट्स व डायरी, कैमरा, टेप रिकार्डर आदि प्रयुक्त किया जाना। नियन्त्रण के सम्बन्ध में गुडे एवं हाट का कहना है ''सामाजिक अनुसंधान में अध्ययन–विषय पर नियन्त्रण रख सकना तुलनात्मक दृष्टि से कठिन होता है; अतः अवलोकनकर्त्ता पर नियन्त्रण अधिक व्यावहारिक एवं प्रभावी प्रतीत होता है।'' स्पष्ट है कि नियन्त्रित अवलोकन सामाजिक अनुसंधान में वैज्ञानिकता, विश्वसनीयता एवं तटस्थता की दृष्टि से अनियन्त्रित अवलोकन की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण है; और यही इसकी लोकप्रियता का आधार है।

5.4.5 नियन्त्रित एवं अनियन्त्रित अवलोकनों में अन्तर–

उपरोक्त दोनों पद्धतियों में निम्न अन्तर स्पष्ट किये जा सकते हैं : –

(1) नियन्त्रित अवलोकन में घटनाओं एवं परिस्थितियों को अध्ययन के दौरान कुछ समय तक नियन्त्रित रखना पड़ता है, जबकि अनियन्त्रित अवलोकन में घटनाओं के विभिन्न पक्षों को, आवश्यकतानुसार, उनके स्वाभाविक रूप में अवलोकित किया जाता है।

(2) नियन्त्रित अवलोकन का संचालन पूर्व योजना के अनुसार ही किया जाता है। अनियन्त्रित अवलोकन बिना पूर्व योजना किया जाता है।

(3) नियन्त्रित अवलोकन में अवलोकनकर्त्ता को अपने व्यवहार को पूर्व निर्धारित निर्देशों के अनुसार ही क्रियान्वित करना पड़ता है। अनियन्त्रित अवलोकन में इस प्रकार का कोई नियन्त्रण नहीं होता है।

(4) नियन्त्रित अवलोकन में अवलोकन हेतु कतिपय यन्त्रों–जैसे, अवलोकन निर्देशिका, अनुसूची, अवलोकन कार्ड, आदि–का प्रयोग किया जाता है; जबकि अनियन्त्रित अवलोकन में यन्त्रों की आवश्यकता प्रायः नहीं पड़ती है।

(5) नियन्त्रित अवलोकन में अवलोकनकर्त्ता को पूर्व निर्धारित निर्देशों के अनुसार ही कार्य करना होता है। अतः अध्ययन निष्पक्ष, विश्वसनीय एवं वस्तु निष्ठ बना रहता है। अनियन्त्रित अवलोकन में घटनाओं को उनके स्वाभाविक रूप में ही देखा जाता है। अतः पक्षपात की सम्भावना रहती है।

(6) नियन्त्रित अवलोकन में अवलोकनकर्त्ता पर नियन्त्रण होने के कारण अध्ययन गहन एवं सूक्ष्म नहीं हो पाता है; जबकि अनियन्त्रित अवलोकन में अवलोकनकर्त्ता पर नियन्त्रण न होने के कारण अध्ययन स्वाभाविक, गहन एवं सूक्ष्म हो जाता है।

5.4.6 सहभागी अवलोकन (Participant Observation) :

सहभागी निरीक्षण की अवधारणा का प्रयोग सर्वप्रथम एण्डवर्ड लिण्डमैंट ने अपनी पुस्तक 'वबपंस कपेवअमे में किया था इसके बाद ही सहभागी निरीक्षण एक महत्वपूर्ण प्रविधि के रूप में लोगों के सामने आया, इस प्रविधि को स्पष्ट करते हुए पी0एच0मान से लिखा है '' सहभागी अवलोकन की तात्पर्य एक ऐसी दशा है जिसमें अवलोकनकर्ता अध्ययन किये जाने वाले समूह को अत्यधिक घनिष्ट सदस्य बन जाता है। पूर्ण–सहभागी अवलोकन से तात्पर्य उस अवलोकन से है जिसमें अवलोकनकर्त्ता अध्ययन किये जाने वाले समूह में जा कर रहने लगता है। उस समूह की सभी क्रियाओं में एक सदस्य की तरह भाग लेता है। समूह के सदस्य भी उसे स्वीकार कर लेते हैं, और उसे अपने समूह का सदस्य मान लेते हैं। अध्ययनकर्त्ता समूह के उत्सवों, संस्कारों एवं अन्य क्रियाकलापों में उसी तरह भाग लेता है जिस तरह अन्य सदस्य भाग लेते हैं। जॉन मैज ने अपनी पुस्तक ''द टूल्स इन सोशल साइन्सेस'' में लिखा है– ''जब अवलोकनकर्त्ता के हृदय की घड़कनें समूह के अन्य व्यक्तियों की धड़कनों में मिल जाती हैं और वह बाहर से आया हुआ कोई अन्जान व्यक्ति नही रह जाता, तो इस प्रकार का अवलोकनकर्त्ता पूर्ण–सहभागी अवलोकनकर्त्ता कहलाने का अधिकार प्राप्त कर लेता है।'' सन् 1924 में, लिण्ड मैन ने अपनी पुस्तक ''सोशल डिस्कवरी'' में सर्व प्रथम सहभागी अवलोकन शब्द का प्रयोग किया था। लिण्ड मैन ने कहा है कि औपचारिक प्रश्नों पर आधारित साक्षात्कार–विधि द्वारा समस्या के तल में नहीं पहुँचा जा सकता। सामाजिक अन्तािक्रयाओं के पीछे छुपे हुये व्यक्तिपरक तथ्य असहभागिक अवलोकन के नेत्रों से प्रायः औझल हो जाते हैं। अतः, व्यक्तिपरक तथ्यों को समझने के लिये

पूर्ण–सहभागी अवलोकन का प्रयोग आवश्यक है। पूर्ण–सहभागी अवलोकन को अधिक स्पष्ट करने के लिये, निम्न विद्वानों की परिभाषाओं पर दृष्टिपात करना उचित रहेगा : –

श्रीमती पी.वी. यांग – ''सामान्यतः अनियन्त्रित अवलोकन का प्रयोग करने वाला सहभागी अवलोकनकर्त्ता उस समूह के जीवन में ही रहता तथा भाग लेता है जिसका कि वह अध्ययन कर रहा है।''

जार्ज ए. लुण्डबर्ग – ''अवलोकनकर्त्ता अवलोकित समूह से यथासम्भव पूर्ण तथा घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित करता है, अर्थात् वह समुदाय में बस जाता है तथा उस समूह के दैनिक जीवन में भाग लेता है।''

श्री जॉन हॉबर्ड जेल और उसमें रहने वाले कैदियों का अध्ययन करने के लिये अनेक वर्षों तक जेल में कैदियों के साथ ही रहे।

श्री मैलिनोवस्की (मानव शास्त्री) ने पश्चिमी प्रशान्त महासागर के तट पर रहने वाली Agronaut जन–जाति का अध्ययन उनके साथ रह कर ही किया।

फ्रेडलीपले ने श्रमिक परिवारों पर औद्योगिककरण के प्रभावों का अध्ययन करने के लिये सहभागी अवलोकन प्रविधि को ही अपनाया।

पूर्ण–सहभागी अवलोकन के संदर्भ में चूंकि अध्ययनकर्त्ता को अध्ययन समूह में अपने आपको पूर्णतया सहभागी बना कर इस समूह की उन सभी क्रियाकलापों में यथासंभव उन्मुक्त रूप में भाग लेना होता है। तथापि यह भी आवश्यक होता है कि वह अपने उद्देश्य से विचलित न हो; अर्थात् अपने उद्देश्य के प्रति सदैव सजग रहे। अतः, यह प्रश्न विचारणीय हो जाता है कि अवलोकनकर्त्ता द्वारा समूह को अपने प्रति जागरूक किया जाना चाहिये अथवा नहीं? यानि, क्या अवलोकनकर्त्ता द्वारा समूह के लोगों को अपना परिचय एवं उद्देश्य स्पष्ट कर देना चाहिये? इस संदर्भ में विद्वानों में वैचारिक भिन्नता है। अमेरिकन समाजशास्त्रियों का मत है कि अवलोकनकर्त्ता को अपना परिचय एवं मूल उद्देश्य स्पष्ट नहीं करना चाहिये। उसे चालाकी और सजगता से काम लेते हुये समूह की सभी क्रियाओं में भागीदार निभानी चाहिये और, साथ ही साथ, अपने प्रति समूह के विश्वास को भी बनाये रखना चाहिये। दूसरी ओर भारतीय समाज शास्त्रियों का मत है कि अवलोकनकर्त्ता को अपना परिचय व उद्देश्य अध्ययन समूह से छिपाना नहीं चाहिये; वरन् उनके मध्य अपना वास्तविक परिचय व उद्देश्य स्पष्ट कर देना चाहिये; अन्यथा समूह के सदस्यों को उस पर सन्देह हो सकता है। ऐसी स्थिति में, समूह के सदस्यों का व्यवहार स्वाभाविक न हो कर कृत्रिमतापूर्ण हो सकता है और यदि ऐसा हुआ तो अवलोकनकर्त्ता अपने उद्देश्य में असफल हो जायेगा। नैतिकता के दृष्टि से भी यह उचित है कि अवलोकनकर्ता को अपना परिचय व उद्देश्य अध्ययन समूह को स्पष्ट कर देना चाहिये। स्पष्ट है, सहभागी अवलोकन में अवलोकनकर्त्ता की व्यवहार कुशलता, वाक पटुता, चतुरता एवं सजगता ही उसे समूह में अपनी दोहरी भूमिका के निर्वहन में सहायक हो सकते हैं।

उपरोक्त विश्लेषण से पूर्ण सहभागी अवलोकन की निम्न विशेषतायें स्पष्ट हो जाती हैं–

(1) अवलोकनकर्त्ता, अवलोकन की जाने वाली परिस्थितियों अथवा समूह में स्वयं भागीदारी करता है।

(2) अवलोकनकर्त्ता अध्ययन समूह का पूर्ण रूपेण सदस्य बन जाता है। और उनके सभी क्रिया कलापों में सक्रिय रूप से भाग लेता है।

(3) सत्य की खोज के लिये सजगता, वाक् पटुता व चतुरता के साथ वास्तविक तथ्यों का संकलन करने का प्रयास करता है

5.4.7 सहभागी अवलोकन के गुण

तथ्य संकलन की एक महत्वपूर्ण प्रविधि के रूप में पूर्ण–सहभागी अवलोकन के निम्न गुणों को रेखांकित किया जा सकता है।

(1)गहन एवं सूक्ष्म अध्ययन– अवलोकनकर्त्ता अध्ययन परिस्थिति अथवा समूह में स्वयं प्रत्यक्ष रूप से लम्बे समय तक भागीदारी निभाता है। अतः, उसे समूह की जितनी सूक्ष्म जानकारी प्राप्त हो जाती है, उतनी अन्य प्रविधियों से सम्भव नहीं है।

(2)स्वाभाविक व्यवहार का अध्ययन– अवलोकनकर्त्ता समूह में इतना घुलमिल जाता है कि उसकी उपस्थिति समूह के व्यवहार को किसी भी तरह से प्रभावित नहीं करती है। अतः, उसे समूह के वास्तविक व्यवहार को नजदीकी से देखने व अध्ययन करने का अवसर मिलता है।

(3)अधिक विश्वसनीयता– अवलोकनकर्त्ता सम्बन्धित समूह में रहकर स्वयं अपने नेत्रों से घटनाओं को स्वाभाविक तथा क्रमबद्ध रूप से घटते हुये देखता है। अतः, संकलित सूचनायें अधिक विश्वसनीय एवं भरोसा योग्य होती है।

(4)संग्रहित सूचनाओं का परीक्षण सम्भव– अवलोकनकर्त्ता, व्यक्तिगत रूप में समूह की विभिन्न गतिविधियों में भाग लेता रहता है। अतः, शंका होने पर पुनः वैसी ही परिस्थिति में सूचनाओं की शुद्धता एवं विश्वसनीयता की जाँच सम्भव है।

(5)सरल अध्ययन– सम्बन्धित समूह का सदस्य बन जाने के कारण अवलोकनकर्त्ता घटनाओं एवं परिस्थितियों का सरलता से अवलोकन कर सकता है। यही कारण है कि अनेक मानवशास्त्रियों एवं समाजशास्त्रियों ने छोटे समुदायों, जन – जातियों एवं साँस्कृतिक समूहों के किसी भी पक्ष का अध्ययन करने में इस विधि का सफलतापूर्वक प्रयोग किया है।

5.4.8 सहभागी अवलोकन के दोष/सीमायें–

(1)पूर्ण सहभागिता सम्भव नहीं– रेडिन एवं हरस्कोविट्स ने इस विधि को पूर्णतया अव्यवहारिक कहा है। यह सत्य भी है। उदाहरण के लिए, जनजातियों के साथ सहभागिता के दौरान उनके रीति–रिवाजों, आदतों, मनोवृत्तियों के अनुसार अवलोकनकर्त्ता का रहना सम्भव नहीं हो सकता है। इसी प्रकार, पागलों के अध्ययन के दौरान भी सहभागिता सम्भव

नहीं है। अतः, एम.एम. बसु ने उचित ही लिखा है– ''एक क्षेत्रीय कार्यकर्त्ता कुछ व्यावहारिक कारणों से अध्ययन किये जाने वाले समुदाय के जीवन में कभी भी पूर्णतया भाग नहीं ले सकता है।''

(2)व्यक्तिगत प्रभाव– अवलोकनकर्त्ता अध्ययन समूह में इतना घुलमिल जाता है कि कभी–कभी अवलोकनकर्त्ता के व्यवहार एवं स्वभाव का प्रभाव, समूह के व्यक्तियों के व्यवहार में भी परिवर्तन ला देता है। ऐसी स्थिति में, समूह के स्वाभाविक एवं वास्तविक व्यवहार का अवलोकन सम्भव नहीं हो पाता है।

(3)साधारण तथ्यों का छूट जाना– कभी–कभी अवलोकनकर्त्ता अध्ययन समूह से सहभागिता के चलते कई महत्वपूर्ण तथ्यों को सामान्य समझ कर छोड़ देता है, जबकि वे तथ्य अध्ययन की दृष्टि महत्वपूर्ण होते हैं।

(4)वस्तु–निष्ठता का अभाव– अवलोकनकर्त्ता की समूह में अत्याधिक सहभागिता उसमें समूह के प्रति लगाव व आत्मीयता पैदा कर देती है। परिणामस्वरूप, वह समूह के अवगुणों को छिपा कर अच्छाइयों को ही चिन्हित करने लग जाता है, जिससे कि अध्ययन की वस्तुनिष्ठता में कमी आती है।

(5)अत्यधिक खर्चीली– अवलोकनकर्त्ता को अध्ययन समूह से सहभागिता प्राप्त करने एवं उनका विश्वास जीतने में काफी समय के साथ–साथ अधिक धन भी व्यय करना पड़ता है।

(6)सीमित क्षेत्र का अध्ययन– इस प्रविधि से बड़े समुदाय के सभी लोगों का अध्ययन सम्भव नहीं है। अतः, इस प्रविधि का प्रयोग लघु समुदाय में ही संभव है।

(7)भूमिका सामन्जस्य में कठिनाई– अवलोकनकर्त्ता को दो भूमिकाओं का निर्वहन करना होता है। एक भूमिका अवलोकनकर्त्ता की एवं दूसरी समूह के सदस्य की। दोनों भूमिकाओं के उचित निर्वहन से ही वह निष्पक्ष सूचनायें एकत्रित कर सकता है। अन्यथा 'भूमिका संघर्ष' अवलोकनकर्त्ता की मेहनत पर पानी फेर सकता है। मोजर ने लिखा है– "सहभागिक अवलोकन एक व्यक्ति प्रधान क्रिया है, अतः इसकी सफलता बहुत कुछ अवलोकनकर्त्ता के व्यक्तिगत गुणों पर निर्भर करती है।''

5.4.9 असहभागिक अवलोकन–

यह विधि सहभागी अवलोकन के विपरीत है। इस प्रकार की क्रिया में निरीक्षणकर्ता समुदाय का न तो अस्थाई सदान्य बनता है और न उनकी क्रियाओं में भागीदार ही होता है इस से ही निरीक्षण कर उसकी गहराई में जाने का प्रयत्न करता है। वह सामुहिक जीवन में स्वंय प्रवेष करने के बजाए उसके बाहय पहलुओं का ही निरीक्षण करता है। इस प्रकार से निष्पदन एव स्वत्रंतापूर्वक अध्ययन इस प्रकार की प्रवधि की विषेषता है इसमें अवलोकनकर्त्ता अध्ययन समूह के बीच उपस्थिति रहते हुये भी, उनके क्रियाकलापों में भागीदारी नहीं निभाता है; वरन् तटस्थ तथा पृथक रहते हुए वह एक मूक दर्शक की तरह घटनाओं को घटते हुए देखता है, सुनता है एवं उनका आलेखन करता है। जैसे किसी महाविद्यालय के

वार्षिकोत्सव में अतिथियों के साथ बैठकर घटनाओं का निरीक्षण करना। तथापि, यह आवश्यक है कि असहभागी अवलोकनकर्त्ता को अपनी उपस्थिति से समूह के घटनाक्रम को प्रभावित नहीं होना देना चाहिये।

असहभागी अवलोकन की विशेषतायें– उपरोक्त विवेचन से असहभागी अवलोकन की निम्न विशेषताओं को रेखांकित कर सकते हैं : –

(1)वस्तु परकता– अवलोकनकर्त्ता अध्ययन समूह में घुलता मिलता नहीं है, वरन् एक मौन दर्शक के ही रूप में रह कर तथ्यों का संकलन करता है। अतः, उसके अध्ययन में वस्तु–निष्ठता बनी रहती है।

(2)कम खर्चीली– सहभागी अवलोकन की तुलना में अपेक्षाकृत समय व धन कम खर्च होता है। तथा भूमिका सामंजस्य की समस्या से भी मुक्ति मिल जाती है।

(3)विश्वसनीयता– अवलोकनकर्त्ता अपरिचित के रूप में होता है। अतः अध्ययन समूह के सदस्य बिना हिचकिचाये स्वाभाविक रूप से व्यवहार करते हैं। अतः, तथ्यों की विश्वसनीयता बनी रहती है।

असहभागी अवलोकन के दोष–

(1)पूर्ण असहभागिता सम्भव नहीं हो पाती है; अर्थात् अवलोकनकर्त्ता प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से कहीं न कहीं घटनाओं से प्रभावित हो सकता है।

(2)यदि अध्ययन समूह के सदस्यों को अवलोकनकर्त्ता पर सन्देह हो जाने की दशा में, उनके व्यवहार में कृत्रिमता आ सकती है।

(3)अवलोकनकर्त्ता घटनाओं को केवल अपने दृष्टिकोण से ही देखता है जिससे मौलिकता संदेहपूर्ण हो सकती है।

(4)अचानक घटित होने वाली घटनाओं का अध्ययन इस प्रविधि से सम्भव नहीं है।

(5)इस प्रविधि से गहन अध्ययन सम्भव नहीं होता है।

उपरोक्त विश्लेषण के आधार पर, आप सहभागी व असहभागी अवलोकन में निम्न अन्तर स्पष्ट कर सकते हैं : –

(1)अध्ययन की प्रकृति– सहभागी अवलोकन में अवलोकनकर्त्ता सामुदायिक जीवन की गहराई तक पहुँच कर समूह का गहन, आन्तरिक एवं सूक्ष्म अध्ययन कर सकता है। इसके विपरीत असहभागी अवलोकन से समूह के केवल बाहरी व्यवहार का अध्ययन सम्भव हो सकता है। गोपनीय सूचनायें प्राप्त नहीं की जा सकती हैं।

(2)सहभागिता का स्तर– सहभागी अवलोकन में अवलोकनकर्त्ता स्वयं अध्ययन समूदाय में जा कर रच बस जाता है एवं उसके क्रिया कलापों में सक्रियता से भाग लेता है। असहभागी अवलोकन में अवलोकनकर्त्ता की स्थिति एक अपरिचित की रहती है; अर्थात् वह अध्ययन समूह से पृथक व तटस्थ रह कर अध्ययन करता है।

(3)सूचनाओं की पुर्नपरीक्षा– सहभागी अवलोकन में सहभागिता के कारण अवलोकनकर्त्ता प्राप्त सूचनाओं की शुद्धता की जाँच कर सकता है, जबकि अहसभागी अवलोकन में अवलोकनकर्त्ता कभी–कभी या घटनाओं के घटने की सूचना मिलने पर ही अध्ययन समूह में जाता है। अतः, अवलोकित घटनाओं की पुर्नपरीक्षा सम्भव नहीं हो पाती है।

(4)सामूहिक व्यवहार की प्रकृति– सहभागी अवलोकन में अवलोकनकर्त्ता सामूदायिक जीवन में घुलमिल जाता है। अतः, घटनाओं का अवलोकन उनके सरल एवं स्वाभाविक रूप में सम्भव

होता है जबकि असहभागी अवलोकन में अवलोकनकर्त्ता के एक अपरिचित व्यक्ति के रूप में होने के कारण लोग उसे शंका एवं संदेह की दृष्टि से देखते हैं। अतः, स्वाभाविक मानवीय व्यवहार का अध्ययन सम्भव नहीं होता है।

(5)समय व धन– सहभागी अवलोकन समय व धन दोनों की दृष्टि से खर्चीला है, क्योंकि अवलोकनकर्त्ता को लम्बे समय तक अध्ययन समूह में रहना पड़ता है। इसकी तुलना में असहभागी अवलोकन में समय व धन तुलनात्मक रूप से कम खर्च होता हैं।

5.4.10 अर्द्धसहभागी अवलोकन–

पूर्ण सहभागिता एवं पूर्ण असहभागिता दोनों ही स्थितियाँ व्यावहारिक दृष्टि से असम्भव होती है। इसी तथ्य को ध्यान में रखते हुये, गुडे एवं हॉट ने मध्यम मार्ग को अपनाने का सुझाव दिया है। अर्थात्, अर्द्धसहभागी अवलोकन, सहभागी एवं असहभागी अवलोकन दोनों का समन्वय है। इस प्रकार के अवलोकन में अवलोकनकर्त्ता परिस्थिति, आवश्यकता और घटनाओं की प्रकृति के अनुसार कभी अध्ययन समूह में सहभागिता निभाते हुए सूचनायें एकत्रित करता है, और कभी उससे पूर्णतया पृथक रह कर एक मूक दर्शक के रूप में सूचनायें एकत्रित करता है। विलियन ह्नाइट का मानना है कि ''हमारे समाज की जटिलता को देखते हुये पूर्ण एकीकरण का दृष्टिकोण अव्यावहारिक रहा है। एक वर्ग के साथ एकीकरण से उसका सम्बन्ध अन्य वर्गों से समाप्त हो जाता है। अतः अर्द्ध–सहभागिता अधिक संभव होने के साथ ही उपयुक्त भी प्रतीत होती है।''

5.4.11 सामूहिक अवलोकन–

सामूहिक अवलोकन में अध्ययन की जाने वाली घटना के विभिन्न पक्षों का एकाधिक विषय–विशेषज्ञों द्वारा अवलोकन किया जाता है, स्पष्ट है कि सामूहिक अवलोकन में अवलोकन का कार्य कई व्यक्तियों के माध्यम से किया जाता है। इन सभी अवलोकनकर्त्ताओं में कार्य को बाँट दिया जाता है, और उनके कार्यों का समन्वय एक केन्द्रीय संगठन द्वारा किया जाता है।

सामूहिक अवलोकन का प्रयोग 1984 में इंग्लैण्ड में वहाँ के निवासियों के जीवन, स्वभाव व विचारों के अध्ययन हेतु किया गया था। 1944 में जमैका में स्थानीय दशाओं के

अध्ययन हेतु भी इस विधि का प्रयोग किया गया था। यह प्रविधि खर्चीली होने के साथ–साथ कुशल प्रशासन भी चाहती है। इसी वजह से इस विधि का प्रयोग व्यक्ति के बजाय सरकारी या अर्द्ध सरकारी संस्थानों द्वारा अधिक किया जाता है।

सामूहिक अवलोकन के गुण–

(1) यह अध्ययन की सहकारी एवं अन्तर– अनुशासकीय विधि है।
(2) इसमें अध्ययन विश्वसनीय एवं निष्पक्ष होता है।
(3) व्यक्तिगत पक्षपात की सम्भावना नहीं होती है।
(4) इसमें नियन्त्रित एवं अनियन्त्रित अवलोकन विधियों का मिश्रण होता है।
(5) इसमें व्यापक क्षेत्र का अध्ययन सम्भव है।
(6) गहन अध्ययन एवं पुनः परीक्षण सम्भव है।

5.4.12 सामूहिक अवलोकन की सीमाएँ –

(1) एक से अधिक कुशल अवलोकन कर्त्ताओं को जुटा पाना कठिन कार्य है।
(2) विभिन्न अवलोकनकर्त्ताओं के कार्यों में परस्पर समन्वय व सन्तुलन बनाया जाना आसान नहीं है।
(3) वांछित मात्राओं में समय, धन एवं परिश्रम की व्यवस्था कर पाना आसान नहीं है।
(4) इस प्रविधि का प्रयोग प्रायः सरकारी संगठनों के द्वारा ही अधिक संभव है।

5.5 अवलोकन पद्धति– उपयोगिता एवं सीमायें

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप अवलोकन पद्धति की उपयोगिता को निम्न बिन्दुओं के अन्तर्गत स्पष्ट कर सकते हैं–

(1) **सरलता** : यह विधि अपेक्षाकृत सरल है। अवलोकन करने के लिये अवलोकनकर्त्ता को कोई विशेष प्रशिक्षण की आवश्यकता नहीं होती है।
(2) **स्वाभाविक पद्धति** : मानव आदि काल से ही स्वाभावतः अवलोकन करता आया है।
(3) **वैषयिकता** : चूँकि इस विधि में अवलोकनकर्त्ता घटनाओं को अपनी आँखों से देख कर उनका हूबहू विवरण प्रस्तुत करता है। अतः वैषयिकता बनी रहती है।
(4) **विश्वसनीयता** : अध्ययन निष्पक्ष होने के कारण विश्वसनीयता बनी रहती है।
(5) **सत्यापन शीलता** : संकलित सूचनाओं पर संशय होने पर पुनः परीक्षण सम्भव होता है।
(6) **उपकल्पना का स्त्रोत** : अवलोकन के दौरान अवलोकनकर्त्ता द्वारा घटना के प्रत्यक्ष निरीक्षण के कारण घटनाओं के प्रति नवीन विचारों एवं उपकल्पनाओं की उत्पत्ति होती है, जो भावी अनुसन्धान का आधार बनती है।
(7) **सर्वाधिक प्रचलित पद्धति** : अपनी सरलता, सार्थकता एवं वस्तुनिष्ठता के कारण अवलोकन सर्वाधिक लोकप्रिय पद्धति है।

5.5.1 अवलोकन पद्धति की सीमायेंः इस विधि की कुछ सीमायें भी है–

(1)सभी घटनाओं का अध्ययन सम्भव नहीं – कुछ घटनाओं का अध्ययन सम्भव नहीं हो पाता। जैसे– (i) पति–पत्नि के व्यक्तिगत व व्यावहारिक जीवन का अवलोकन (ii) कुछ घटनाओं के घटित होने का समय व स्थान का निशचित ना होना। जैसे पति–पत्नि की कलह, साह–बहू का तकरार। (iii) अमूर्त घटनायें, जैसे, व्यक्ति के विचार, भावनायें, मनोदशा आदि।

(2)व्यवहार में कृत्रिमता – कभी–कभी अवलोकन के दौरान लोग अपने स्वाभाविक व्यवहार से हटकर नाटकीय व्यवहार करते हैं। परिणामस्वरूप सही निष्कर्ष नहीं निकल पाते हैं।

(3)सीमित क्षेत्र – समय, धन एवं परिश्रम की सीमितता के चलते यह विधि सीमित क्षेत्र का ही अध्ययन कर पाती है।

(4)पक्षपात– अवलोकित समूह के व्यवहार में कृत्रिमता एवं अवलोकनकर्त्ता के मिथ्या–झुकाव के कारण अध्ययन में पक्षपात आने की सम्भावना रहती है।

(5)ज्ञानेन्द्रियों में दोष – कभी–कभी ज्ञानेन्द्रियाँ वास्तविक व्यवहार को समझने में समर्थ नहीं होती हैं जबकि अवलोकन में ज्ञानेन्द्रियों की भूमिका महत्वपूर्ण होती है। ऐसी स्थिति में अध्ययन प्रभावित होता है।

5.6 शब्दावली

अवलोकन	: शोध में अध्ययन की वह विधि जिसमें अध्ययनकर्त्ता अपनी ज्ञानेन्द्रियों, विशेषकर नेत्रों से अवलोकन कर तथ्यों का संकलन करता है।
अर्द्ध सहभागी अवलोकन	: यह सहभागी एवं अहसभागी अवलोकनों का मिश्रण है जिसमें अवलोकनकर्त्ता अध्ययन समूह की कुछ क्रियाओं में भाग लेता है और कुछ से अपने अपको पृथक रखता है।
सामूहिक अवलोकन	: घटना के विभिन्न पक्षों का अध्ययन सम्बन्धित विषय विशेषज्ञों द्वारा मिलकर किया जाता है।

5.7 अभ्यास प्रश्न

1. अवलोकन विधि क्या है? इसकी प्रमुख विशेषताओं की चर्चा कीजिये।
2. अवलोकन के विभिन्न प्रकारों की समीक्षा कीजिये।
3. नियन्त्रित व अनियन्त्रित अवलोकन में अन्तर स्पष्ट कीजिये।
4. सहभागी एवं असहभागी अवलोकन के गुण–दोषों की तुलना कीजिये।
5. अवलोकन पद्धति की विश्वसनीयता एवं प्रमाणिकता को बनाये रखने में किन बातों का ध्यान अपेक्षित है।

संदर्भ ग्रंथ

गुडे एण्ड हॉट, 1952, मैथड्स इन सोशल रिसर्च, मैक ग्रो हिल कम्पनी, इंक टोक्यो।
मोजर, सी.ए., सर्वे मैथड्स इन सोशल इनवेस्टीगेशन।
यंग, पी.वी., साइन्टिफिट सोशल सर्वे एण्ड रिसर्च।
जहोदा एण्ड कुक, रिसर्च मैथड्स इन सोशल रिलेशन्स।
मॉन पी.एच., मैथड्स ऑफ सोशियोलोजिकल इन्क्वारी।

इकाई 6

अनुसूची
Schedule

इकाई की रूपरेखा

6.0 उद्देश्य
6.1 प्रस्तावना
6.2 अनुसूचियों के प्रकार
6.3 अनुसूची निर्माण की प्रकिया
6.4 अनुसूची की गुणवत्ता
6.5 अनुसूची के दोष या सीमाएं
6.6 सारांश
6.7 शब्दावली
6.8 अभ्यास प्रश्न
संदर्भ ग्रन्थ सूची

6.0 उद्देश्य–

इस इकाई के द्वारा आप–

- अनुसूची का अर्थ, विशेषताएं तथा आवश्यकता जानेंगे।
- अनुसूची के विविध प्रकार जान सकेंगे।
- अनुसूची का निर्माण किस प्रकार के प्रश्नों के चयन द्वारा वैज्ञानिक शोध के अन्तर्गत आता है, जानेंगे।

6.1 प्रस्तावना

अनुसूची प्राथमिक तथ्य संकलन की एक ऐसी विधि है जिसमें अवलोकन, साक्षात्कार तथा प्रष्नावली इन तीनों की ही विशेषताएं एवं गुण एक साथ पाये जाते हैं। इसके द्वारा उन क्षेत्र के सूचनादाताओं से भी सूचना प्राप्त की जाती है जो कि पढ़े–लिखे नहीं हैं। यह एक प्रत्यक्ष विधि है जिसमें साक्षात्कारकर्ता उत्तरदाता के साथ आमने–सामने प्रष्न पूछकर भरता है, अतः प्रष्नों का चयन सही प्रकार किया जाना आवश्यक होता है। यह प्रष्नों की एक औपचारिक तालिका या फार्म होती है, जिसका प्रयोग द्वितीयक समंक या तथ्य संकलन में होता है। अनुसूची के माध्यम से वैयक्तिक मान्यताओं, सामाजिक अभिवृत्तियों, विश्वासों, विचारों, व्यवहार प्रतिमानों, समूह व्यवहारों, आदतों तथा जनगणना आदि से संबंधित तथ्यों

का संकलन किया जाता है। यही कारण है कि सामाजिक शोध में यह प्रमुखता से प्रयुक्त होती है।

- प्राथमिक तथ्यों के संकलन की एक विधि अनुसूची है।
- अनुसूची को उत्तरदाता के पास डाक द्वारा नहीं भेजा जाता है।
- अनुसूची में अवलोकन, साक्षात्कार तथा प्रष्नावली तीनों की ही विषेषताओं एवं गुणों का समन्वय पाया जाता है।
- अनुसूची एक फार्म के रूप में प्रष्नों की एक लिखित सूची होती है जिसमें अध्ययन विषय से संबंधित प्रष्न एवं सारणियां होती हैं, जिसे क्षेत्रीय कार्यकर्ता सूचनादाता से पूछकर या व्यक्तिगत रूप से अवलोकन करके भरता है।
- सभी क्षेत्रीय कार्यकर्ता यदि समान प्रष्न पूछते हैं तब अनुसूची में सजातीय सूचना एकत्र होती है।

गुडे एवं हाट् : ''अनुसूची उन प्रष्नों का समुच्चय है, जिन्हें साक्षात्कारकर्ता द्वारा किसी दूसरे व्यक्ति के आमने–सामने की स्थिति में पूछे और भरे जाते हैं''। (मैथड्स इन सोषल रिसर्च के अनुसार)

पी.वी.यंग _: ''यह गणना की एक विधि है जिसका प्रयोग औपचारिक एवं मानवीकृत गवेषनाओं में विभिन्न प्रकार के परिमाणात्मक तथ्यों के लिए किया जाता है''।(साइंटिफिक सोषल सर्वे एण्ड रिसर्च के अनुसार)

6.2 अनुसूची के प्रकार

यंग, लुण्डबर्ग तथा अन्य समाजषास्त्रियों ने अनुसूची को कई प्रकार से विभाजित किया है। मुख्यतः अनुसूची के निम्न प्रकार हो सकते हैं।

1. अवलोकन अनुसूची
2. मूल्यांकन अनुसूची
3. संस्था सर्वेक्षण अनुसूची
4. साक्षात्कार अनुसूची
5. प्रलेखीय अनुसूची

6.2.1 अवलोकन अनुसूची

- इस अनुसूची का प्रयोग अवलोकनकर्ता कार्य को व्यवस्थित, क्रमबद्ध एवं प्रभावी बनाने में करता है।
- इसमें प्रष्न के स्थान पर सारिणी का प्रयोग होता है। अतः प्रष्न रचना की जगह कुछ मोटी बातों का उल्लेख रहता है। जिसमें विषय के अनुसार क्रमबद्ध रूप से घटती घटनाओं का अवलोकनकर्ता विवरण स्वयं देखकर लिखता है।
- यह विषय क्षेत्र को सीमित करने एवं आवश्यक तथ्यों पर ध्यान देने में सहायक होती है।

6.2.2 मूल्यांकन अनुसूची–

- इस प्रकार की अनुसूची का प्रयोग किसी विषय के बारे में लोगों की अभिवृत्ति, रूचि, राय, विष्वास तथा अभिमति आदि के सांख्यिकीय मापन हेतु किया जाता है। जिसे बाद में सांख्यिकीय आंकड़ों में व्यक्त किया जाता है।
- समाजशास्त्रीय शोध में दहेज प्रथा, बाल विवाह, मादक द्रव्य व्यसन जैसी गम्भीर समस्या को निर्बल बनाने वाले कारकों का अध्ययन इस विधि से होता है।
- इसी प्रकार राजनीतिक शोध में राजनीति में जाति की भूमिका, पंचायती राज में महिला भागीदारी आदि विषयों में प्रष्न पूछकर उत्तरदाताओं की पसंद ज्ञात की जाती है।
- इसके द्वारा सूचनादाता की पसंद नापसंद तथा पक्ष विपक्ष के विचारों को जाना जाता है

6.2.3 संस्था सर्वेक्षण अनुसूची

- किसी संस्था के समक्ष उतपन्न होने वाली अथवा उसमें विद्यमान समस्याओं का निरीक्षण करने में इस प्रकार की अनुसूची का प्रयोग होता है।
- इस प्रकार विभिन्न संस्थाओं की कार्यप्रणाली तथा समाज में उनकी प्रस्थिति की तुलना करने में यह प्रयुक्त होती है।
- धर्म, परिवार व शिक्षा आदि के पक्षों का इसी विधि से अध्ययन होता है।

6.2.4 साक्षात्कार अनुसूची

- इस प्रकार की अनुसूचियों में सूचनाएं प्रत्यक्ष साक्षात्कार के द्वारा एकत्र की जाती हैं।
- इसमें निश्चित प्रश्न अथवा खाली सारिणी दी हुई होती है जिन्हें साक्षात्कारकर्ता सूचनादाता से पूछकर भरता है। यह उत्तर उसके लिए तथ्य का कार्य करते हैं जिनका वह समस्या के संदर्भ में विश्लेषण एवं वर्गीकरण करता है।
- इसके द्वारा विश्वसनीय एवं प्रमाणित सूचनाएं प्राप्त होती हैं। व्यक्तिगत संपर्क के कारण इसमें अनुसंधानकर्ता सूचनादाता को सूचना देने के लिए प्रेरित कर सकता है।

6.2.5 प्रलेखीय अनुसूची–

- यह अनुसूची विधि लिखित स्त्रोतों से सूचना एकत्र करने में प्रयुक्त होती है।
- यह स्त्रोत मुख्यतः आत्मकथा, डायरी, सरकारी एवं गैर सरकारी अभिलेख, पुस्तकें, प्रतिवेदन, अखबार आदि हो सकते हैं। इसमें विषयों से संबंधित प्रारम्भिक जानकारियों को एकत्र कर प्रलेखीय अनुसूची की रचना की जाती है।

- उदाहरण– अपराधी का अध्ययन करते समय जेल के दस्तावेज से उसके अपराध के रूप, अपराधों की संख्या, आयु, षिक्षा, व्यवसाय आदि के संबंध में जानकारी एकत्रित करने के लिए प्रलेखीय अनुसूची की रचना की जा सकती है।

6.3 अनुसूची निर्माण की प्रकिया

अनुसूची के दो प्रमुख भाग होते हैं

1. अनुसूची का भौतिक या वाहृय पक्ष

2. अनुसूची की अर्न्तवस्तु

उपरोक्त के आधार पर ही अनुसूची में निर्माण किये जाने वाले–

- प्रश्नों की विषयवस्तु
- प्रश्नों की शब्द रचना या भाषा
- प्रश्नों का क्रम
- प्रत्युत्तर के विकल्प आदि की रचना होती है।

6.3.1 अनुसूची का भौतिक या वाहृय पक्ष

इसके अन्तर्गत अनुसूची का आकार, कागज की क्वालिटी, उत्तर भरने का स्थान तथा विषय को विभिन्न शीर्षकों में बांटना आदि आता है।

- अनुसूची का आकार 8"×11" से अधिक बड़ा न हो।अनुसूची में प्रयुक्त कागज चिकना, साफ, सफेद या रंगीन हो सकता है।
- सूचना सारिणी में भरने के लिए बॉक्स तथा लिखने के लिए खाली स्थान होना चाहिए।
- कालम, शीर्षक तथा उपशीर्षक द्वारा विषय को व्यवस्थित किया जाता है।

6.3.2 अनुसूची की अर्न्तवस्तु

अनुसूची की अर्न्तवस्तु के अर्न्तगत जानकारियों के लिए दो भागों में सूचना एकत्रित की जाती है।

1. **उत्तरदाता के बारे में प्रारम्भिक जानकारी**– इसमें उत्तरदाता का नाम, पता, आयु, लिंग, षिक्षा, जाति, धर्म, व्यवसाय, आय आदि के बारे में सूचनाएं एकत्रित करनी होती हैं।

2. **समस्या से संबंधित प्रश्न एवं सारणियां**– दूसरे भाग में प्रष्न एवं सारणियों के अतिरिक्त अनुंसंधानकर्ता के लिए आवष्यक निर्देश भी होते हैं। इसी में अनुसंधान विषय तथा अनुसंधान करने वाले संस्थान या व्यक्ति का परिचय भी होता है।

6.3.3 अनुसूची की प्रश्नावली एवं प्रश्न :

अनुसूची में प्रष्नों द्वारा सूचनाओं का संकलन किया जाता है। अतः इसके निर्माण में उचित शब्दों एवं प्रश्नों का चयन आवष्यक है। अनुसूची में विभिन्न प्रकार के जो प्रष्न पूछे जाते हैं उन्हें निम्नांकित भागों में वर्गीकृत किया जा सकता है।

1. अनिर्दिष्ट प्रश्न/ खुले प्रश्न

इस प्रकार के प्रष्नों का उत्तर देने में सूचनादाता को स्वतंत्रता होती है और वह अपनी राय जिस प्रकार से चाहे व्यक्त कर सकता है।उदा0

(क) आपकी राय में विद्यार्थियों में विर्द्यमान अनुषासनहीनता के क्या कारण हैं ?

(ब) आपकी राय में उसे कैसे दूर किया जा सकता है ?

2. निर्दिष्ट प्रश्न/ संरचित या आयोजित प्रश्न

इसमें प्रश्नों के संभावित उत्तर पहले से ही लिखे होते हैं और सूचनादाता को इनमें से ही कोई एक उत्तर चुनना होता है।उदा0

(क) आपकी आयु क्या है ?

(ख) आप शिक्षित अथवा अशिक्षित हैं ? शिक्षित/अशिक्षित ।

(ग) आपकी वैवाहिक स्थिति क्या है ? विवाहित/अविवाहित, विधुर अथवा विधवा/तलाक षुदा।

3. दोहरे प्रश्न

जब किसी प्रष्न के दो ही संभावित उत्तर हो सकते हैं तो ऐसे प्रश्नों को द्वंदात्मक या दोहरे उत्तरों वाले प्रश्न कहते हैं। इन प्रष्नों का एक उत्तर सकारात्मक (हां) तथा दूसरा उत्तर नकारात्मक (नहीं) होता है। उदा0

(अ) क्या आप अनुसूचित जाति के हैं ? हॉ /नहीं ।

(ब) आपकी राष्टीयता संबंधी स्थिति क्या है ? भारतीय/विदेशी

5. निर्देशक प्रश्न–

जब किसी प्रष्न के द्वारा उसके उत्तर की ओर संकेत किया जाता है तो उसे निर्देषक प्रष्न कहते हैं। ऐसे प्रष्न पक्षपात को प्रोत्साहन देते हैं। उदा

(अ) क्या यह परिवार के लिए अधिक उपयोगी न होगा कि स्त्रियॉ बाहर सेवा करने के बजाय घर में बच्चों की देखभाल करें ।

6. बहुअर्थक प्रश्न/ अनेकार्थक प्रश्न

इस प्रकार के प्रश्नों की भाषा ऐसी होती है कि उनके एक से अधिक अर्थ निकलते हैं, ऐसे प्रष्नों के सूचनादाता अपने अर्थ निकालता है। अतः इनसे बचना चाहिए।उदा0

(i) अपने लिए तुम कौन सा धंधा चुनना पसंद करोगे?

(अ) व्यापार अथवा उद्योग

(ब) सरकारी नौकरी

(स) व्यक्तिगत नौकरी

(द) पेशागत रोजगार

(ई) अन्य कोई

7. श्रेणीबद्ध प्रश्न

इस प्रकार के प्रश्नों में उत्तरदाता को कई उत्तरों में से एक नहीं वरन सभी को चुनना तथा उन्हें अपनी पसंद के अनुसार एक क्रम में लिखना होता है।उदा0

(i) अपने लिए तुम कौ सा धंधा पसंद करोगे?

(अ) किसी बडे मिल के डायरेक्टर ।

(ब) भारतीय प्रषासनिक सेवा ।

(स) प्रथम श्रेणी की अनुसंधानशाला का डायरेक्टर ।

(द) प्रथम श्रेणी की यूनिवसिटी का आफिसर ।

(ई) अच्छी ख्याति या हाई कोर्ट का वकील ।

(फ) ख्याति प्राप्त डाक्टर ।

8. अस्पष्ट प्रश्न

ऐसे प्रश्नों से उत्तरदाता यह नहीं जान पाता है कि **प्रश्न** क्या पूछा गया है और उसका उत्तर क्या होगा।उदा0

(अ) आप शिक्षित हैं अथवा अशिक्षित हॉ नहीं ।

(ब) जब ऐसे विशिष्ट शब्दों का प्रयोग किया जाय जिनका अर्थ सर्वसाधारण में प्रचलित नहीं है। जैसे आप स्वतंत्र अर्थ व्यवस्था पसंद करते हैं अथवा नियंत्रित।

6.3.4 प्रश्नों का चयन/विशेषताएं

प्रश्नों का चयन करते समय अध्ययन विषय के उद्देश्य, क्षेत्र की स्थिति, उत्तरदाताओं के स्वभाव तथा अनुसंधान करने वाले कार्यकर्ताओं की योग्यता का ध्यान रखा जाना चाहिए। इस प्रकार प्रश्नों का चयन सावधानीपूर्वक निम्न बातों को ध्यान में रखकर करना चाहिए।

1. आकार : प्रश्न छोटे, सरल, सुगम एवं सूचनादाता से संबंधित हों एवं संख्या में कम हों।

2. बौद्धिक स्तर : उत्तरदाता के बौद्धिक स्तर को ध्यान में रखकर प्रष्न बनाने चाहिए।

3. श्रेणीबद्धता, क्रमबद्धता : एक ही विषय या उपविषय से संबंधित प्रश्न बार–बार तथा विभिन्न स्थानों पर नहीं पूछे जाने चाहिए।

4. स्पष्टता : प्रश्न की भाषा सरल एवं स्पष्ट होनी चाहिए ताकि प्रष्न आसानी से समझ में आ जाए।

5. वैषयिक्ता : प्रश्न विषय से संबंधित होने चाहिए, विषय से अलग नहीं पूछे जाने चाहिए।

6. बहुअर्थक पेचीदा प्रश्न : ऐसे प्रश्नों का प्रयोग उत्तरदाता को सही उत्तर देने से वंचित करता है। क्योंकि वह उसे सही से समझ ही नहीं पाता है।

7. अस्पष्टता : प्रश्नों में अस्पष्टता से बचना चाहिए, प्रश्न अस्पष्ट होगा तो उसका सही उत्तर नहीं मिल सकेगा।

8. समय : प्रश्नों के चयन में इस बात का विशेष ध्यान रखा जाना चाहिए कि उत्तरदाता कम समय में अधिक उत्तर दे सके। अन्यथा उसका मन विलग हो जायेगा और वह विषय से ऊबकर सही सूचना नहीं देगा।

9. निषिद्ध क्षेत्र या गुप्त जीवन से संबंधित प्रश्न : ऐसे प्रश्न नहीं पूछे जाने चाहिए, क्योंकि ऐसी सूचना देने में उत्तरदाता स्वयं को लज्जित पाता है अतः वह इनसे बचने या गलत उत्तर देने का प्रयास करता है।

10. विचारात्मक गहन प्रश्नों का प्रयोग :इस प्रकार के प्रश्नों का प्रयोग होने से उत्तरदाता जब क्यों, कब, कैसे आदि प्रष्नों का उत्तर देता है, तब कई विष्वसनीय सूचनाएं भी मिलती हैं जो अन्य उत्तर की सत्यता को समझने में उपयोगी होती हैं।

6.3.5 अनुसूची द्वारा सूचना प्राप्ति

अनुसूची द्वारा सूचना प्राप्त करने में कुछ आवष्यक स्तरों से गुजरना पड़ता है जो निम्न हैं।

1. **उत्तरदाताओं का चयन**– अनुसूची का प्रयोग करने में सर्वप्रथम उत्तरदाताओं का चयन किया जाता है जिनसे कि सूचना एकत्र करनी होती है। इसके लिए दो प्रकार की तथ्य संकलन विधि प्रयुक्त होती है–

(अ) संगणना पद्धति (ब) निदर्शन पद्धति

संगणना पद्धतिः जब समूह के सभी व्यक्तियों से साक्षात्कार करके अनुसूची को भरा जाता है तब संगणना पद्धति प्रयुक्त होती है। इसमें अनुसंधानकर्ता अध्ययन से पूर्व यह देख लेता है कि समूह को उपसमूहों में विभाजित कर वह सभी से सूचनाएं लेकर अनुसूची में भरेगा। पर यदि ऐसा संभव नहीं होता है तब यह पद्धति उपयोगी नहीं रहती है।

निदर्षन पद्धतिः निदर्षन पद्धति द्वारा कुछ उत्तरदाताओं का चयन कर उनका साक्षात्कार किया जाता है और उनसे प्राप्त सूचनाओं को अनुसूची में भर दिया जाता है। चुने हुए व्यक्तियों की पूरी जानकारी को पूर्व में लिख लिया जाता है।

2. **क्षेत्रीय कार्यकर्ताओं का चयन एवं प्रश्क्षिण**– यदि क्षेत्र के कुछ लोगों से सूचना प्राप्त करनी है तो साक्षात्कारकर्ता स्वयं जाकर अनुसूची के माध्यम से अवलोकन कर एवं प्रष्न पूछकर सूचनाएं ज्ञात कर लेता है। पर यदि साक्षात्कारदाताओं की संख्या अधिक है एवं क्षेत्र विस्तृत है तब समय की बचत के लिए वह अन्य कार्यकर्ताओं की मदद लेता है। इसमें ऐसे कार्यकर्ताओं का शोध के लिए चयन करता है। जो कुषल सूझ–बूझ, होषियारी एवं धैर्य से

अनुसूची में साक्षात्कार द्वारा सूचना भर सकता है। अतः अनुभवी कार्यकर्ता का चयन महत्वपूर्ण है एवं अनुसंधान कार्य को सुचारु रूप से संचालित करने के लिए प्रारम्भिक प्रषिक्षण , षिविर के माध्यम से दिया जाना चाहिए। जिससे उन्हें अध्ययन की प्रकृति, क्षेत्र, उद्देश्य, अनुसूचियों को भरने का तरीका, साक्षात्कार के तरीके, कौन सी सूचनाएं महत्वपूर्ण होंगी आदि बातों का पूरा ज्ञान दिया जाना चाहिए।

3.तथ्य सामग्री का संकलन– तथ्य सामग्री के संकलन के लिए अध्ययनकर्ता को साक्षात्कार के लिए सूचनादाताओं के पास जाना होता है और प्रष्नों के माध्यम से अनुसूची को भरना होता है। लेकिन इसके लिए एक कमिक प्रकिया अपनानी पड़ती है जो इस प्रकार है।

(क) सूचनादाताओं से संपर्कः सूचनादाताओं से संपर्क करने वाले क्षेत्रीय कार्यकर्ता को कुषलता, चतुरता, धैर्य एवं शान्ति से कार्य लेना पड़ता है। यदि प्रारम्भ में कार्यकर्ता सूचनादाता को अपने परिचय से प्रभावित नहीं कर पाता है तो उसके लिए सूचना प्राप्त करना मुष्किल हो जाता है। इसके लिए वाणी की मधुरता, सौम्य स्वभाव तथा विवादन एवं व्यवहार से सूचनादाता के साथ तारतम्य स्थापित करना चाहिए ताकि ऐसी स्थिति का निर्माण हो कि सूचनादाता स्वयं उत्साहित होकर सूचना दे।

इसलिए कार्यकर्ता को क्षेत्र तथा व्यक्ति के बारे में संक्षिप्त जानकारी आरम्भ में ही कर लेनी चाहिए। सूचनादाता की सुविधा के अनुसार उपलब्ध समय में ही उससे प्रष्न पूछे जाने चाहिए तथा उसके किसी कार्यसमय में विघ्न नहीं डालना चाहिए।

(ख) साक्षात्कारः जहां एक ओर सूचनादाता से संपर्क करना मुष्किल है वहीं दूसरी ओर साक्षात्कार करना भी अत्यन्त कठिन है। साक्षात्कार के दौरान विषय अनुकूल प्रष्न कर सूचना प्राप्त की जाती है। साथ ही अन्य प्रष्न कर सूचनादाता की रुचि को बनाये रखा जाता है। साक्षात्कार जितना अधिक रोचक और उत्साही होगा सूचनाएं उतनी ही अधिक आसानी से प्राप्त होंगी तथा विष्वसनीय भी होंगी।

(ग) सूचना प्राप्त करनाः साक्षात्कार करने में यह समस्या उत्पन्न होती है कि किस प्रकार संगतपूर्ण एवं विष्वसनीय सूचना प्राप्त की जाय। साक्षात्कारकर्ता प्रष्न को कम के अनुसार पूछकर सूचना प्राप्त करता है परन्तु यदि साक्षात्कारदाता को ऐसा लगता है कि वह उससे कोई गुप्त जानकारी प्राप्त करना चाह रहा है तब सूचनादाता विषय से हट जाता है। ऐसे में सावधानीपूर्वक ध्यान से सूचनादाता का मन विषय की ओर केन्द्रित करना होता है तथा साक्षात्कार के दौरान अन्य बातें बंद करनी चाहिए। यदि प्रष्न का अर्थ सूचनादाता अलग समझता है तब भी वह मुख्य विषय से विचलित हो जाता है।

6.3.6 अनुसूचियों का संपादन–

जब क्षेत्रीय कार्यकर्ताओं से सभी अनुसूचियां प्राप्त हो जाती हैं तब उनका संपादन किया जाता है जिसकी प्रक्रिया निम्नवत है।

1. अनुसूचियों की जांचः जब अनुसंधान का कार्य बडे पैमाने पर होता है तो अध्ययनकर्ता भरी हुई अनुसूचियों को अध्ययन संस्थान अथवा कार्यालय में भेज देता है। जहॉ जांच करने से पूर्व यह मिलान किया जाता है कि सभी अनुसूचियां प्राप्त हुई हैं अथवा नहीं। इसके बाद इनका वर्गीकरण होता है। क्षेत्रीय कार्यकर्ताओं द्वारा भेजी गयी अनुसूचियों की अलग–अलग क्षेत्रवार फाइल तैयार की जाती है और उस पर कार्यकर्ता का नाम, क्षेत्र, सूचनाओं की संख्या आदि लिख दी जाती है।

2. **प्रविष्टियों की जांचः** अनुसंधानकर्ता समस्त प्रविष्टियों की जांच करता है यदि कोई खाना नहीं भरा गया है या उत्तर गलत खाने में लिखा है तो उनके कारण का पता लगाकर त्रुटि को दूर करने का प्रयत्न करता है। यदि गलती को स्वयं उसी क्षण सही करना सम्भव है तो ठीक कर देता है अन्यथा कार्यकर्ता द्वारा उसे दुबारा भेजकर सूचना प्राप्त की जाती है।

3. संकेतनः अनुसंधानकर्ता सारणीयन के बारे में असुविधा दूर करने के लिए संकेतन का कार्य करता है। वह सभी उत्तरों का निष्चित भागों में वर्गीकरण कर प्रत्येक वर्ग को संकेत संख्या प्रदान करता है। जिसके बाद निष्कर्ष निकाला जाता है और प्रतिवेदन तैयार किया जाता है।

6.4 अनुसूची के लाभ :

अनुसूची के प्रमुख लाभ निम्नलिखित हैं।

1. प्रारम्भिक एवं विश्वसनीय सूचनाऍ –अनुसूची में स्वयं अनुसंधानकर्ता साक्षात्कार एवं अवलोकन के आधार पर वैध तथा विश्वसनीय सूचनाओं को संकलित करता है।

2. व्यक्तिगत संपर्क –शोधकर्ता या क्षेत्रीय कार्यकर्ता व्यक्तिगत रूप से उपस्थित रहकर सूचनादाता से सूचना ज्ञात करता है। अतः कई समस्याओं का स्वतः समाधान हो जाता है।व्यक्तिगत संपर्क के द्वारा स्पष्ट एवं वास्तविक उत्तर आसानी से प्राप्त होता है।

3. सभी सूचनादाताओं के लिए प्रयुक्त –इसका प्रयोग साक्षर एवं निरक्षर, बालक, वृद्ध, युवा, अंधे आदि सभी प्रकार के लोगों से सूचना जानने में हो सकता है।
अतः यह सभी वर्गों के लोगों से सूचना प्राप्त करने में प्रयुक्त होती है।

4. प्राप्त सूचनाओं का सत्यापन संभव –इस विधि से शोध करने वाले शोधकर्ता एवं क्षेत्रीय कार्यकर्ता विषय की सामान्यता को बनाये रखने के लिए एक ही प्रकार के प्रष्न पूछते हैं। किन्तु कुछ अतिरिक्त प्रष्न करके वे उत्तरों की वास्तविकता को परख भी सकते हैं। यह अतिरिक्त सूचनाएं शोध के लिए उपयोगी होती हैं।

5. अध्ययन क्षेत्र का परिसीमन –अनुसूचियों के प्रयोग के द्वारा साक्षात्कारकर्ता विषय क्षेत्र से भटक जाने या विषय से अलग प्रष्न करने से बच जाता है। अनुसूची जहां एक ओर साक्षात्कारकर्ता की मदद करती है वहीं दूसरी तरफ अनर्गल वार्तालाप पर भी अंकुष लगाती है।

6. सूचनाओं को तत्काल लेखनीबद्ध करना सम्भव –अनुसूची में सूचनाओं को तत्काल लेखनीबद्ध करने से स्मरणषक्ति की विकृति से भी सुरक्षा रहती है एवं सूचनाओं के भूलने की आषंका भी समाप्त हो जाती है।

7. कम समय में अधिक विष्वसनीय तथ्यों का संकलन सम्भव –अनुसूची के द्वारा अध्ययनकर्ता सूचनादाता से सूचनाएं एकत्रित करने के साथ ही घटनाओं का स्वयं अवलोकन कर अध्ययन करता है जिससे कम समय में अधिक तथ्यों का संकलन विष्वसनीय ढंग से होता है। साथ ही अवलोकन के द्वारा वैज्ञानिक ज्ञान का एकत्रण होता है।

8 निदर्शन संबंधी दोषों का निवारण –प्रष्नावली में अध्ययन के लिए समग्र में से केवल षिक्षित लोगों को ही चुना जाता है अतएव समग्र का पूर्ण प्रतिनिधित्व नहीं हो पाता। किन्तु अनुसूची में सभी प्रकार के लोगों का अध्ययन सम्भव है । अतः निदर्शन में समुचित प्रतिनिधित्व न होने का दोष नहीं आ पाता ।

6.5 अनुसूची की सीमाएं/दोष –

अनेक गुण होने के उपरान्त भी अनुसूची विधि की निम्नलिखित सीमाएं हैं।

- **महंगा उपकरण**– विस्तृत क्षेत्र के सूचनादाताओं से अनुसूचियों द्वारा सूचनाएं एकत्र करने में काफी क्षेत्रीय कार्यकर्ताओं की आवष्यकता पड़ती है जिससे उनके वेतन, प्रशिक्षण, यात्रा व्यय आदि पर अधिक खर्च आता है। अतः इस विधि का प्रयोग वहीं सम्भव है जहां पर्याप्त मात्रा में आर्थिक संसाधन उपलब्ध होते हैं।

- **सीमित क्षेत्र का अध्ययन**– प्राथमिक तथ्य संकलन के लिए इसका प्रयोग विस्तृत क्षेत्र में नहीं किया जा सकता है क्योंकि व्यक्तिगत संपर्क में काफी समय लगता है। अतः यह विधि सीमित क्षेत्र के सीमित सूचनादाताओं के अध्ययन में ही उपयोगी है।

- **अभिनति की समस्या**– साक्षात्कारकर्ता के सूचनादाता से परस्पर संवाद के कारण अभिनति के समावेष होने का भय बना रहता है। कभी–कभी साक्षात्कारकर्ता अनजाने में सूचनादाता को उत्तर भी सुझा देता है जिससे वास्तविक सूचनाएं प्राप्त नहीं हो पाती। साक्षात्कारकर्ता द्वारा उत्तरों को सुनने, समझने और लिखने की थोड़ी भी गलती सूचनाओं में अभिनति उत्पन्न कर सकती है।

- **अनुसूची के निर्माण की समस्या**– यदि अनुसूची के प्रष्नों का चयन सही नहीं हो पाता है तो एक ही प्रष्न के सूचनादाता अलग–अलग अर्थ लगाते हैं जिससे सूचना प्रभावी नहीं हो पाती है। उत्तरदाताओं की शैक्षणिक, बौद्धिक एवं सांस्कृतिक पृष्ठभूमि सामान्य नहीं होती, इस कारण भी एक सी सूचनाएं प्राप्त नहीं की जा सकती हैं। अतः सार्वभौमिक प्रष्नों की समस्या उत्पन्न हो जाती है।

- **संपर्क की समस्या**– आज व्यस्तता के कारण सूचनादाताओं से संपर्क करना कठिन है। यह आवष्यक नहीं कि पहली बार में ही सूचनादाता संपर्क के लिए समय दे दें। अतः ऐसी दशा में कभी–कभी सूचनादाता से संपर्क स्थापित करने में काफी समय लग जाता है।

- **अनुसंधानकर्ताओं की लापरवाही** अस्थयी तौर पर नियुक्त होने के कारण कई बार अनुसंधानकर्ता एवं परिगणक अध्ययन कार्य में रूचि नहीं लेते और कई बार फर्जी तौर पर अनुसूचियों की खानापूर्ति कर देते हैं ।

- **संगठनात्मक समस्याऐं** अनुसूची द्वारा अनुसंधान का कार्य जब बड़े पैमाने पर करना हो तो कई कार्यकर्ताओं की आवष्यकता होती है। इन कार्यकर्ताओं को प्रशिक्षित करने , उनका मार्ग दर्शन करने उनके द्वारा बनी हुई अनुसूची की जॉच करने , आदि के लिए एक बडे संगठन की आवष्यकता होती है जिसका संचालन करने में अनेक प्रशासन संबंधी समस्याएं आती हैं ।

- **सूचनादाताओं का पक्षपातपूर्ण व्यवहार** अनुसूची में अनुसंधानकर्ता सूचना देने के लिए सूचनादाता को प्रेरित करता है , ऐसी स्थिति में कई बार अध्ययनकर्ता की भाषा तथा शैली के आधार पर ही सूचनादाता के व्यवहार में पक्षपात आने की संभावना रहती है ।

6.6 सारांश

अनुसूची शोधकर्ताओं के अनुसंधान का प्रमुख साधन है। इसके द्वारा शोधकर्ता को वास्तविक तथ्यों की प्राप्ति होती है। क्योंकि इसमें साक्षात्कार, अवलोकन और प्रश्नावली तीनों ही माध्यम के द्वारा क्षेत्र से सूचना एकत्र की जाती हैं। अतः यह प्रभावी शोध के लिए महत्वपूर्ण होती हैं। इसके अन्तर्गत प्रश्नों का चयन इस प्रकार किया जाता है जो सार्वभौमिक होते हैं ताकि सूचनादाता एक ही प्रकार की जानकारी उपलब्ध करा सकें। इसका प्रयोग सीमित क्षेत्र तथा व्यक्तियों तक ही सम्भव है। अतः अनुसूची के सहारे अध्ययन करने वाले प्रष्नकर्ता में अवलोकन शक्ति, आत्मविष्वास, साक्षात्कार आदि अनेक गुणों का होना आवष्यक है।

6.7 शब्दावली

अनुसूची– एक फार्म, तालिका, केटलॉग अथवा कार्ड जिसका निर्माण एवं प्रयोग शोध तथ्यों के संकलन हेतु किया जाता है।

प्रलेखीय अनुसूची– लिखित स्त्रोतों से प्राप्त मूक तथ्यों के संकलन हेतु जिस तालिका या सूची का प्रयोग किया जाता है।

संस्थात्मक अनुसूची– संस्थाओं के आतंरिक एवं बाह्य कार्यकलापों अथवा समस्याओं के अध्ययन में प्रयोग की जाने वाली तालिका।

अवलोकन अनुसूची– जिस अनुसूची का प्रयोग अवलोकन के द्वारा प्राप्त तथ्यों के संकलन के लिये किया जाता है।

6.8 अभ्यास प्रश्न– विस्तृत

प्रश्न 1. अनुसूची क्या है ? अनुसूची की विशिष्टता एवं प्रकारों का वर्णन कीजिए ?

प्रश्न 2. अनुसूची के लाभ एवं सीमाओं का वर्णन कीजिए ?

प्रश्न 3. अनुसूची के प्रकार बतायें ?

संदर्भ ग्रंथ सूची

गुडे एण्ड हाट्टः मैथड्स इन सोषियल रिसर्च

पी.वी.यंगः साइन्टिफिक सोषियल सर्वे एण्ड रिसर्च

के.डी.बैलीः मैथड्स ऑफ सोषियल रिसर्च

एच.के.रावतः सामाजिक अन्वेक्षण की सर्वेक्षण पद्धतियॉ

इकाई –7

प्रश्नावली

Questionnarie

इकाई की रूपरेखा

7.0 उददेश्य

7.1 प्रस्तावना

7.2 प्रश्नावली के प्रमुख प्रकार

7.3 प्रश्नावली की विशेषताएं

7.4 प्रश्नावली की रचना

7.5 प्रश्नावली का प्रयोग

7.6 प्रश्नावली की विश्वसनीयता

7.7 प्रश्नावली के गुण

7.8 प्रश्नावली की सीमाएं

7.9 सारांश

7.10 शब्दावली

7.11 अभ्यास प्रश्न

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

7.0 उददेश्य

सामाजिक अनुसंधान में प्राथमिक तथ्य अत्यन्त महत्वपूर्ण होते है क्योंकि शोध की विष्वसनीयता इन्हीं पर आधारित होती है। अतः सर्वेक्षण की प्रक्रिया जब संरचित होती है। तो प्राकल्पनाओं के परीक्षण हेतु संरचित उपागम का प्रयोग होता है। इस प्रक्रिया में आधार सामग्री स्वयं संचालित प्रश्नावली से एकत्र की जाती है।इस अध्याय द्वारा हम प्रश्नावली की विशिष्टता, निर्माण विधि में सावधानियां, प्रश्नावली का प्रयोग प्रश्नावली के गुण, सीमाएॅ आदि जानेंगे।

7.1 प्रस्तावना

प्रश्नावली अध्ययन विषय से सम्बन्धित प्रष्नों का एक संरचित समूह है जिसमें सूचनायें संकलित करने के लिए वैकल्पिक प्रष्नों में कोष्ठक तथा लिखित उत्तरों के लिए खाली स्थान उपलब्ध रहता है। इस माध्यम के द्वारा विस्तृत क्षेत्र से सूचनाएं प्राप्त की जा सकती है। इसके लिए उत्तरदाता का शिक्षित होना आवष्यक होता है। साथ ही प्रष्नो का चयन ,

शब्दावली ,प्रश्नों का प्रकार , प्रश्नों की विषयवस्तु और प्रष्नों का क्रम आदि सभी प्रश्नावली की रचना में महत्वपूर्ण होते है।

सामाजिक अनुसंधान में प्राथमिक तथ्यों के संकलन हेतु प्रष्नावली विधि का प्रयोग होता है। शिक्षित सूचना दाता एवं विशाल, विस्तृत क्षेत्र के सूचना दाता से तथ्य संकलन।

प्रश्नावली विषय अथवा समस्या से सम्बन्धित अनेक प्रश्नों की सूची होती है जिसे अध्ययन कर्ता सूचनादाताओं के पास डाक द्वारा भेजता है। जिसे सूचनादाता स्वयं भरकर लौटाता है।

- **सिन पाओ येंग के अनुसार** – ''अपने सरलतम रूप में प्रश्नावली प्रश्नों की एक ऐसी अनुसूची है। जिसे की निदर्शन के रूप में चुने हुए व्यक्तियों के पास डाक द्वारा भेजा जाता है''।
- **बोगार्डस के अनुसार** – ''प्रश्नावली विभिन्न व्यक्तियों को उत्तर देने के लिए प्रेषित की गई प्रश्नों की एक सूची है''।
- **गुडे एवं हाट के अनुसार** –'' सामान्यतः प्रश्नावली शब्द से तात्पर्य प्रश्नों के उत्तर प्राप्त करने के एक उपकरण से होता है। जिसमें एक प्रपत्र का प्रयोग किया जाता है। जिसे उत्तरदाता स्वयं ही भरता है''।

7.2 प्रश्नावली के प्रकार

1. तथ्य सम्बन्धी प्रश्नावली :– इस प्रश्नावली का प्रयोग किसी समूह की सामाजिक आर्थिक दषाओं से सम्बन्धित तथ्यों को संग्रह करने के लिए किया जाता है। जब हम किसी व्यक्ति की आयु , धर्म, जाति, शिक्षा, विवाह,व्यवसाय,पारिवारिक रचना आदि के बारे में सूचनाऍ एकत्र करना चाहते हैं तो इसकी रचना की जाती है ।

उदाहरण **(क)** शिक्षा की स्थिति – साक्षर/निरक्षर

(ख) व्यवसाय की स्थिति – प्राइवेट/सरकारी

2. मत एवं मनोवृत्ति सम्बन्धी प्रश्नावली – जब किसी विषय पर सूचनादाता की रूचि ,राय,मत,विचाारधारा, विश्वास एवं दृष्टिकोण जानना चाहते हैं तब इस प्रकार की प्रष्नावली का प्रयोग होता है। बाजार**,** सर्वेक्षण, जनमत संग्रह,विज्ञापन तथा टेलीविजन एवं रेडियो कार्यक्रम के बारे में लोगों के विचार जानने के लिए इस प्रकार की प्रश्नावली का निर्माण होता है ।

उदाहरण **(क)** आप कौन सा अखबार पसन्द करते है।

(ख) क्या आप सती प्रथा के पक्ष में है।

3. संरचित प्रश्नावली – इस प्रकार की प्रश्नावली का निर्माण अनुसन्धान प्रारम्भ करने से पूर्व विषय पर लोगों की राय,सामाजिक स्वास्थय जन कल्याण की योजनाऐं लोगों के

रहन सहन की दशा, आय व्यय आदि के बारे में सूचना एकत्र करने के लिए भी संरचित प्रश्नावली का प्रयोग किया जाता है। तथा अनुसन्धान कर्ता को उसमें किसी प्रकार के परिवर्तन की छूट नहीं होती है।

4. **असंरचित प्रश्नावली** –असंरचित प्रश्नावली में पहले से प्रश्नों का निर्माण नही किया जाता वरन् केवल उन विषयों एवं प्रसंगों का उल्लेख किया जाता है। जिनके बारे में सूचनाएं संकलित करनी होती है। यह पथ प्रदर्षिका की तरह कार्य करती है। असंरचित प्रश्नावली में उत्तरदाता खुलकर अपने विचारों को अभिव्यक्त करता है।

5. **बन्द, सीमित या प्रतिबन्धित प्रश्नावली** –इस प्रकार की प्रश्नावली में प्रश्नों के सामने कुछ निष्चित वैकल्पिक उत्तर लिखे होते है। और उत्तरदाता को उनमें से ही उत्तर छाँटकर लिखने होते है। इस प्रकार की प्रष्नावली में उत्तर देने में सूचनादाता को सुविधा रहती है।

उदाहरण

(क) आप राजनीति में जाति के हस्तक्षेप को मानते है? (उचित, उचित नहीं, क्षेत्र विषेष में जनसंख्या के आधार पर उचित)

(ख) जातिगत आरक्षण उचित है – (हाँ /नहीं)

6. **खुली / असीमित, या अप्रतिबन्धित प्रश्नावली** –इस प्रकार की प्रश्नावली में सूचनादाता को अपने विचारों को खुलकर प्रकट करने की स्वतन्त्रता होती है। अप्रतिबंधित प्रष्नावलियों का प्रयोग व्यक्गित विचारों, भावनाओं, सुझावों एवं विषय से संबंधित प्रारम्भिक सूचनाओं को संकलित करने के लिए भी किया जाता है ।

उदाहरण

(क) महिलाओं का सषक्तिकरण कैसे हो सकता है ?––––––

(ख) पंचायती राज में महिलाओं की भागेदारी कैसे बढ़ेगी ?––––––

7. **चित्रमय प्रश्नावली** –इस प्रकार की प्रष्नावली में प्रष्नों के सम्भावित उत्तर चित्र द्वारा प्रकट किये जाते है। और सूचनादाता अपने उत्तर का चयन उन चित्रों में से ही करके उस पर निषान लगा देता है।

उदाहरण यह जानने के लिए कि आप गॉव और नगर में से कहॉ रहना पसंद करेंगे? इसके उत्तर को जानने के लिए गॉव एवं नगर के चित्र बना दिये जाते हैं।

8. **मिश्रित प्रश्नावली** –इस प्रकार की प्रश्नावली उपर वर्णित सभी प्रकार की प्रश्नावलियों की विशेषताएं लिए होती है।

इसमें बन्द व खुली प्रष्नावली का मिश्रण होता है। ऐसी प्रष्नावलियॉ कम और अधिक शिक्षित दोनो के लिए ही उपयोगी होती है । इनके द्वारा स्पष्ट तथा सटीक उत्तर के साथ ही उत्तरदाता के स्वतंत्र विचार जानना भी संभव होता है ।

7.3 प्रश्नावली की विशेषताएं:

1 प्रश्नावली अध्ययन किए जाने वाले विषय से संबंधित प्रश्नों की एक सूची होती है ।

2 प्रश्नावली को डाक द्वारा सूचनादाताओं के पास भेजा जाता है । या स्थानीय स्तर पर वितरित भी किया जा सकता है ।

3 यह प्राथमिक सूचना संकलित करने की एक अप्रत्यक्ष विधि है ।

4 प्रश्न सरल, स्पष्ट तथा छोटे होने चाहिए एवं प्रश्न निश्चित अर्थ वाले होने चाहिए।

5 प्रश्नों की संख्या आवश्यकता से अधिक न हो।

6 यदि संभव हो तो प्रष्न का उत्तर हां नहीं में होना चाहिए।

7 प्रश्नों का चुनाव ऐसा हो कि इच्छित सूचना स्पष्ट रूप से प्राप्त की जा सके।

8 दुरुह, अशिष्ट एवं विषय से हटकर प्रष्न नहीं पूछे जाने चाहिए।

9 ऐसे प्रश्नों की रचना की जानी चाहिए जिनमें अभिमति की संभावना न हो।

10 प्रश्नावली को सूचनादाता भरकर डाकद्वारा ही लौटाता है कभी कभी स्थानीय लोगों से इसका संग्रह व्यक्तिगत स्तर पर भी कराया जा सकता है ।

7.3.1 प्रश्नावली बनाने के चरण:

प्रश्नावलियां विशिष्ट एवं व्यवस्थित तरीके से बनाई जाती हैं अतः यह प्रक्रिया अनेक अर्न्तसंबद्ध चरणों से गुजरती है जिनमें प्रमुख है।

1 **तैयारी**: इसमें अनुसंधानकर्ता प्रश्नावली में शामिल विषय तथा उससे जुड़े अन्य शोधों, प्रश्नों पर विचार करता है।

2 **प्रथम प्रारुप निर्माण**: इसके अंतर्गत विभिन्न प्रकार जैसे प्रत्यक्ष/परोक्ष, मुक्त/बंद, सीमित/असीमित, प्राथमिक/द्वितीयक/तृतीयक प्रष्नों सहित अनेक प्रष्न बनाता है।

3 **स्व मूल्यांकन**: अनुसंधानकर्ता प्रश्नों की प्रासंगिकता, एकरुपता, भाषा में स्पष्टता आदि पर भी विचार करता है।

4 **वाहय मूल्यांकन**: प्रथम प्रारुप एक या दो सहयोगियों/ विषेषज्ञों को जांच एवं सुझाव के लिए दिया जाता है।

5 **पुनरावलोकन**: सुझाव मिलने के बाद कुछ प्रष्न तो हटा दिये जाते हैं, कुछ बदले जाते हैं और कुछ नये प्रश्न जोड़े जाते हैं।

6 **पूर्व परीक्षण या पायलट अध्ययन**: समूची प्रश्नावली की उपयुक्तता की जांच के लिए पूर्व परीक्षण या पायलट अध्ययन किया जाता है।

7 **पुनरावलोकन**: पूर्व परीक्षण से प्राप्त अनुभव के आधार पर कुछ परिवर्तन किये जा सकते हैं।

8 द्वितीय पूर्व परीक्षणः पुनरावलोकित प्रश्नावली का दुबारा परीक्षण होता है और आवश्यकतानुसार उसमें सुधार किया जाता है।

9 अन्तिम प्रारुप तैयार करनाः संपादन, वर्तनी जांच, उत्तरों के लिए जगह, पूर्व कोडिंग के बाद अंतिम प्रारुप तैयार होता है।

7.4 प्रश्नावली की रचनाः

प्रश्नावली का निर्माण षिक्षित उत्तरदाता से सूचना प्राप्त करने में किया जाता है अतः इसके निर्माण में अधिक सतर्कता की आवष्यकता होती है। प्रष्नों का चुनाव ऐसे किया जाता है कि वह स्पष्ट एवं सरल हों, प्रष्नावली की रचना मुख्यतः तीन आधारभूत पक्षों के द्वारा की जाती है।

1 अध्ययन की समस्या

2 प्रश्नों की उपयुक्तता, प्रकृति एवं शब्दावली

3 प्रश्नावली का बाहय आकृति अथवा भौतिक प्रश्न

7.4.1 अध्ययन की समस्याः

किसी विषय पर शोध करने से पूर्व समस्या से संबंधित सभी सूचनाएं प्रारंभ में ही एकत्रित की जानी चाहिए। अनुसंधानकर्ता के पूर्व अनुभवों का उपयोग करने से ऐसे उपयुक्त प्रष्नों का चयन होता है जिनसे सूचनादाता को उत्तर देने में आसानी रहती है।

7.4.2 प्रश्नों की उपयुक्तता

प्रश्नावली में प्रश्न को सम्मिलित करने से पूर्व यह देखा जाता है कि वह विषय के बारे में सूचना संकलित करने में कितना सहायक है प्रश्नों को क्रमबद्ध करनाः प्रश्नों का क्रम कई बातों पर निर्भर करता है परन्तु कुछ महत्वपूर्ण बिन्दु निम्न हैं।

1 प्रश्न विाय से संबंद्ध हो - प्रशनों का समूह अध्ययन विषय से संबंद्ध होना चाहिए तभी वह शोध में सहायक होगा। उदाहरणः परिवार नियोजन के साधनों से आप कितने संतुष्ट हैं। (पूर्ण संतुष्ट/संतुष्ट /असंतुष्ट/पूर्णतया अंसतुष्ट)

2 अत्यन्त सामान्य प्रश्न न हों - जैसे आपने अखबार पढ़ना कब से शुरू किया के स्थापन पर उचित प्रष्न होगा जब आप दसवी कक्षा में थे तब क्या आपको अखबार पढ़ने में कोई रूचि थी।

3 आसानी से उत्तर योग्य प्रश्न पहले होंः प्रारम्भ में कठिन प्रश्न से उत्तरदाता थकान का अनुभव करता है ऐसे में यह सम्भव है कि वह गम्भीरता से अन्य प्रष्नों का उत्तर न दे। अतः आयु, आय, व्यवसाय, जाति, शिक्षा, वैवाहिक स्थिति, निवास, पृष्ठभूमि आदि से संबंधित प्रश्नों के उत्तर आसानी से दिये जा सकते हैं।

4 **संवेदनशील प्रश्न मध्य में होने चाहिए:** ऐसे प्रश्न जो राजनैतिक भ्रष्टाचार के प्रति दृष्टिकोण, सरकार की शिक्षा नीति, व्यावसायिक शिक्षा के सुधार के लिए प्रोत्साहन, आरक्षण नीति का पुनरावलोकन आदि से संबंधित हों मध्य में रखे जाने चाहिए ताकि उत्तरदाता इनपर अधिक ध्यान देने का इच्छुक हो तथा ठीक से उत्तर देने में थकान महसूस न करे।

7.4.3 प्रश्नावली का बाहय अथवा भौतिक पक्षः

प्रश्नावली की सफलता प्रश्न चयन के साथ ही उसकी भौतिक बनावट पर भी निर्भर करती है। अतः सूचनादाता का ध्यान आर्कषित करने के लिए प्रश्नावली की भौतिक बनावट जैसे उसका कागज, आकार, छपाई, रंग, लम्बाई आदि आकर्षक होना चाहिए।

1 **आकारः** सामान्यतः प्रश्नावली बनाने के लिए कागज का आकार 8"x 12" अथवा 9"x 11" का होना चाहिए। वर्तमान में छोटे आकार की प्रष्नावली जो कि पोस्टकार्ड साइज में होती है का प्रचलन भी बढ़ा है। कम पृष्ठों की प्रष्नावली होने पर उसका डाक व्यय कम लगता है तथा उसके भरकर लौट आने की संभावना भी अधिक रहती है।

2 **कागजः** प्रश्नावली के लिए प्रयुक्त कागज कड़ा, चिकना, मजबूत एवं टिकाऊ होना चाहिए। विभिन्न प्रकार के विषयों से संबंधित प्रश्नावलियों में भिन्न–भिन्न रंगों के कागज का प्रयोग करने से उनकी छंटाई आसान हो जाती है।

3 **छपाईः** प्रष्नावलियों को छपाया जा सकता है। छपाई स्पष्ट व शुद्ध होने चाहिए। ताकि उन्हें आसानी से पढ़ा जा सके। आकर्षक छपाई सूचनादाता पर मनोवैज्ञानिक प्रभाव डालती है।

4 **प्रश्नावली की लम्बाईः** प्रष्नावली अधिक लम्बी होने पर उत्तरदाता भरने में ऊब और नीरसता महसूस करता है। अतः प्रष्नावली को भरने में आधे घंटे से अधिक समय न लगे इसलिए उसकी लम्बाई कम रखनी चाहिए।

5 **प्रसंगों की व्यवस्थाः** एक विषय से संबंधित सभी संबंधित सभी प्रष्नों को एक साथ क्रम में लिखा जाना चाहिए और यदि प्रष्नों की संख्या अधिक है तो उन्हें व्यवस्थित समूहों में बांट देना चाहिए।

6 **प्रश्नों के बीच पर्याप्त स्थानः** प्रष्नावली में प्रष्नों के बीच पर्याप्त जगह छोड़ी जानी चाहिए ताकि पढ़ने में सुविधा हो तथा मुक्त प्रष्नों के उत्तर लिखे जा सकें।

प्रष्नावली में शीर्षक, उपषीर्षक, कॉलम तथा सारणियां आदि सही क्रम में छपे होने चाहिए ताकि उनके संपादन में अधिक समय, श्रम व धन नहीं लगाना पड़े।

7.5 प्रश्नावली का प्रयोगः

प्रश्नावली के प्रयोग की समस्त प्रक्रिया को चार भागों में विभाजित किया जा सकता हैं

1 पूर्व परीक्षण

2 सहगामी पत्र

3 डाक द्वारा प्रेषण

4 अनुगामी पत्र

7.5.1 पूर्व परीक्षणः

प्रष्नावली को शोध के लिए उत्तरदाता के पास भेजने से पूर्व इसकी जांच एक छोटे निदर्षन को मानकर पूर्व परीक्षण करने से किसी भी प्रकार के संदेह की स्थिति नहीं रहती। पूर्व परीक्षण में निम्न बातों का ध्यान रखा जाना चाहिए।

1 परीक्षण प्रणाली तथा वास्तविक प्रणाली में अधिक अंतर नहीं होना चाहिए।

2 इसके लिए निदर्षन उसी क्षेत्र से लिया जाना चाहिए जिसका कि अध्ययन करना है।

3 यह कार्य कम संख्या में प्रष्नावली छपवाकर किया जाना चाहिए।

4 लघुकार निदर्षन द्वारा समूह से प्राप्त उत्तरों एवं कठिनाइयों के आधार पर इसमें सुधार किया जाना चाहिए।

5 इस पूर्व परीक्षण द्वारा उत्तरदाता की योग्यता व उत्सुकता का ज्ञान हो जाता है तथा विष्वसनीय एवं प्रामाणिक सूचना प्राप्त करने में आसानी होती है।

7.5.2 सहगामी–पत्रः

प्रत्येक प्रष्नावली के साथ एक छपा हुआ सहगामी–पत्र संलग्न करना चाहिए। इस पत्र के द्वारा अध्ययन का उददेष्य तथा सूचनादाता के सहयोग पर प्रकाष डाला जाता है एवं शीघ्र भरकर लौटा देने का भी अनुरोध किया जाता है। इस पत्र में अध्ययनकर्ता का नाम, उसका विभाग, संबंधित व्यक्तियों का उल्लेख, अध्ययन के उददेष्य आदि का विवरण रहता है एवं प्राप्त सूचनाएं गुप्त रखी जाएंगी इसका भी आष्वासन रहता है।

सहगामी–पत्र के मुख्य बिन्दुः

1 अनुसंधानकर्ता एवं अनुसंधान प्रायोजक की पहचान

2 अध्ययन के सामाजिक महत्व पर प्रकाष

3 अध्ययन का मुख्य उद्देष्य बताना

4 अज्ञानता तथा गोपनीयता के प्रति आष्वस्त करना

5 प्रष्नावली भरने के लिए अनुमानित आवष्यक समय बताना

6 पत्र के अंत में उत्तरदाता के सहयोग के प्रति आभार प्रकट किया जाता है।

7 पत्र छोटा, आकर्षक तथा प्रभावषाली होना चाहिए।

8 शीघ्र प्रत्युत्तर पाने के उद्देष्य के साथ में जवाबी लिफाफा भी भेजना चाहिए।

डाक द्वारा प्रेषणः

- एक क्षेत्र की प्रष्नावलियां डाक द्वारा एक साथ भेजी जानी चाहिए। ताकि उस क्षेत्र के सूचनादाताओं के उत्तर साथ ही प्राप्त हो सकें।

- सूचनादाता के पते पूरे, सही, पिन कोड सहित लिखने चाहिए ताकि प्रष्नावली समय पर पहुंचे।
- प्रष्नावलियां ऐसे समय पहुंचे जब उत्तरदाता साप्ताहिक अवकाष आदि के कारण घर पर ही हो। ताकि वे उन्हें जल्दी भरकर भेज सकें।
- अपना पता लिखा व टिकट लगा लिफाफा अवष्य साथ में संलग्न रहना चाहिए।

अनुगामी–पत्रः

अनुगामी पत्र का प्रयोग उत्तरदाता को उत्तर देने के लिए प्रेरित करने के उद्देष्य से किया जाता है। प्रायः ऐसा देखने में आया है कि सामाजिक सर्वेक्षणों में सूचनादाता प्रष्नावलियों को भरकर नहीं लौटाते हैं। अनुगामी पत्र भेजने की आवृत्ति इस प्रकार बताई गई है।

1 **प्रथम अनुगामी–पत्र** सोलह दिन पष्चात।

2 **द्वितीय अनुगामी–पत्र** प्रथम अनुगामी–पत्र के एक सप्ताह बाद ।

3 **तृतीय अनुगामी–पत्र** द्वितीय पत्र के दो सप्ताह बाद ।

इस पर भी सूचना न मिले तो सूचनादाता का नाम सूची से हटा देना चाहिए।

7.6 प्रश्नावली की विश्वसनीयता

उत्तरदाताओं ने प्रष्नावली भरकर जो सूचना दी है वह कितनी विष्वसनीय है वह तभी पता लगेगा जब अधिकतर प्रष्नों के अर्थो में अंतर नहीं होगा। अविष्वसनीयता की समस्या उत्पन्न होने के निम्न कारण है–

1. **गलत एवं असंगत प्रश्न**–जब प्रष्नावली में गलत एवं असंगत प्रश्न सम्मिलित होते है तो उत्तरदाता उनके उत्तर अपने–अपने दृष्टिकोण से देते है ऐसी स्थिती में दी गई सूचनाए विष्वसनीय नहीं होती।

2. **पक्षपातपूर्ण निदर्शन**– यदि निदर्शन के द्वारा सूचनादाताओं के चयन में शोधकर्ता प्रभावित हुआ है तो निष्चित रूप से प्राप्त सूचना प्रतिनिधित्वपूर्ण नहीं हो सकती।

3. **नियंत्रित व पक्षपातपूर्ण उत्तर प्रश्नावली विधि द्वारा प्राप्त**– उत्तरों में बहुधा पक्षपात की भावना होती है क्योंकि लोग गोपनीय एवं व्यक्तिगत सूचनाए सही नहीं देना चाहते।

7.6 प्रश्नावली के गुण/ लाभ

षोध के लिए आाधर सामन्ती संग्रह में प्रष्नावली महत्वपूर्ण है क्योंकि इसके द्वारा प्राथमिक तथ्य ज्ञात किये जाते हैं। प्रष्नावली के लाभ निम्न हैं।

कम खर्चीली: प्रष्नावली अन्य प्राथमिक तथ्य संग्रह करने वाला विधियों से कम खर्चीली होती है। क्योंकि इन्हें डाक द्वारा या फिर एक या दो अन्वेषकों के द्वारा क्षेत्र में वितरित किया जाता है। अतः अधिक कर्मचारियों की आवष्यकता नहीं पड़ती। केवल छपाई और डाक खर्च ही होता है।

विश्वल क्षेत्र एवं अधिक सूचनादाता से तथ्य संकलनः इस प्रविधि द्वारा जहां एक ओर विषाल क्षेत्र में दूर–दूर फैले सूचनादाता से सूचना प्राप्त की जा सकती है वहीं समय परिश्रम तथा धन की बचत भी होती है।

समय की बचतः उत्तरदाता भौगोलिक दष्टि से फैले हुए तथा संख्या में अधिक हो सकते हैं। इसलिए प्रष्नावली वापस मंगाने में समय लग सकता है। चूंकि सभी प्रष्नावलियां एक साथ भेजी जाती हैं और अधिकतर उत्तर दस–पन्द्रह दिन में ही वापस आ जाते हैं। इस प्रकार समय की बचत रहती है और प्रष्नावलियां शीघ्र नतीजे देती हैं।

साक्षात्कारकर्ता का पूर्वाग्रह नहीं होताः चूंकि साक्षात्कारकर्ता साक्षात्कारदाता के स्थान पर स्वयं उपस्थित नहीं होता इसलिए वह उत्तरों को प्रभावित नहीं कर सकता। ना तो उत्तर बताकर और न अपनी राय देकर ना ही प्रश्न गलत पढ़कर।

स्वतंत्र, निष्पक्ष एवं गुप्त सूचनाएं प्राप्तः चूंकि प्रश्न का उत्तर लिखते समय षोधकर्ता उपस्थित नहीं होता अतः सूचनादाता स्वतंत्र एवं निष्पक्ष रूप से विविध विषयों पर जानकारी दे सकता है। उसे संकोच, हिचकिचाहट आदि भी नहीं होता। जिससे वह निर्भीक सूचना देता है।

सुविधाजनकः जहां एक ओर षोधकर्ता को सूचना के लिए अनावष्यक भागदौड़ नहीं करनी पड़ती वहीं दूसरी ओर उत्तरदाता भी अपनी सुविधानुसार खाली समय में प्रष्नावली भरता है तथा एक ही बार में सभी प्रष्नों के उत्तर देने को बाध्य भी नहीं होता वरन पहले आसान प्रष्न तथा बाद में कठिन प्रष्नों के उत्तर दे सकता है।

पुनः प्रश्नावली भेजना सम्भवः यदि किसी कारण प्राप्त उत्तरों में कमी रहती है तो पुनः प्रष्नावली भेजकर उत्तर ज्ञात करना सम्भव होता है। अतः प्रभावी षोध के लिए उपयोगी विधि है।

मानकीकृत षब्दावलीः प्रष्नों का निर्माण एक ही व्यक्ति के द्वारा किया जाता है एवं छपाई के बाद सभी सूचनादाताओं को एक से ही प्रष्नों का उत्तर देना होता है। अतः उत्तरदाता के सामने एक से ही षब्द होते हैं जिससे प्रष्न समझने में कठिनाई नहीं होती तथा उत्तरों की तुलना में सुविधा रहती है।

विविधता नहीं होतीः प्रश्नावलियां स्थायी, निरंतर और एक सी होती हैं तथा उनमें कोई विविधता नहीं होती।

7.7 प्रश्नावली की सीमाएं व दोषः

चयनित प्रतिदर्श पक्षपातपूर्ण सम्भवः उत्तर चयन में पक्षपात हो सकता है क्योंकि उत्तरदाता की विषय में कोई रूचि न होने के कारण वह सभी प्रष्नों का उत्तर नहीं भी दे सकता है। चूंकि कुछ विचारों को स्पष्ट करने के लिए वहां अनुसंधानकर्ता उपस्थित नहीं होता अतः

उत्तरदाता प्रष्नों को खाली छोड़ सकता है। डाक का पता सही न होने के कारण भी कुछ योग्य उत्तरदाता छूट सकते हैं। इसलिए चयनित प्रतिदर्ष को कई बार पक्षपातपूर्ण कहा जाता है।

केवल शिक्षित लोगों के लिए उपयोगी: डाक प्रेषित प्रष्नावली केवल षिक्षित लोगों में काम आ सकती है अतः उत्तरदाताओं की संख्या सीमित करती है। कभी–कभी विभिन्न उत्तरदाता प्रष्नों को अलग–अलग तरीके से समझते हैं। ऐसी गलतफहमी ठीक नहीं की जा सकती है।

प्रश्नावली कम संख्या में भरकर वापस: सभी उत्तरदाताओं का रुझान विषय में है या वे समय पर उपलब्ध हैं, शिक्षित हैं, समय पर लौटाएं तथा पुनः याद दिलाने पर वापस करें ही ऐसा सम्भव नहीं है। अतः प्रश्नावली उत्तरदाता के पास से 30 से 40 प्रतिशत ही वापस आती है जिससे परेषान होकर शोधकर्ता उनको लिखना छोड़ देता है। ऐसी स्थिति में वास्तविकता का पता नहीं लग सकता।

अपूर्ण, आशिंक या अनउत्तरित प्रश्नावलियां: षोध के दौरान उत्तरदाताओं से बहुत सारी अपूर्ण, आंषिकपूर्ण या अनुत्तरित प्रष्नावलियां षोधकर्ता को वापस मिलती हैं। दुबारा प्रष्नावली भेजने पर भी उत्तर ज्ञात नहीं हो पाता। ऐसी स्थिति में ऐसी प्रष्नावलियां षोध के लिए लाभप्रद नहीं होती।

गहनता से जांच में अनुपयुक्त: चूंकि प्रष्नावलियों का आकार छोटा रखना होता है इसलिए उत्तरदाता से पूर्ण जानकारी प्राप्त नहीं की जा सकती। अतः अतिविषिष्ट षोध के लिए गहनता से जांच नहीं की जा सकती।

उत्तरदाता की पृष्ठभूमि संबंधी जानकारी की पुष्टि संभव नहीं: मध्यम वर्गीय व्यक्ति अपने को धनी कह सकता है या एक मध्यम जाति का व्यक्ति स्वयं को उच्च जाति का बता सकता है। प्रश्नावली भरने से पूर्व उत्तरदाता अन्य लोगों से सलाह ले सकता है इसलिए उत्तरों को उसकी अपनी राय नहीं माना जा सकता ।

7.8 सारांश

प्रश्नावली षोधकर्ताओं के अनुसंधान का प्रमुख साधन है। इसके द्वारा षोधकर्ता को विषाल जनसंख्या बड़े क्षेत्र में बिखरे हुए सूचनादाताओं से वास्तविक तथ्यों की प्राप्ति होती है। इसमें सूचनाए प्राप्त करने के लिये कार्यकर्ताओं को नियुक्त करने, उनके आने जाने का खर्च देने, समय नष्ट करने, आदि की कोई आवष्यकता नहीं होती है। अतः प्रभावी षोध के लिए महत्वपूर्ण होती हैं। इसके अन्तर्गत प्रष्नों का चयन इस प्रकार किया जाता है जो सार्वभौमिक होते हैं ताकि सूचनादाता एक ही प्रकार की जानकारी उपलब्ध करा सकें।

7.9 शब्दावली

प्रश्नावली– एक फार्म, तालिका, केटलॉग अथवा कार्ड जिसका निर्माण एवं प्रयोग षोध तथ्यों के संकलन हेतु किया जाता है।

समंक/तथ्य किसी घटना से संबंधित ऐसी व्यवस्थित जानकारी जिसके आधार पर कोई निष्कर्ष निकाला जा सके अथवा सिद्धान्त की जांच की जा सके।

निदर्शन एक विस्तृत क्षेत्र से चुनी गई कुछ प्रतिनिधि इकाईयों का समूह।

7.10 अभ्यास प्रश्न

प्र श्न 1. प्रश्नावली क्या है ? प्रश्नावली की प्रकारों का वर्णन कीजिए ?

प्र श्न 2.श्प्रश्नावली के लाभ एवं सीमाओं का वर्णन कीजिए ?

प्र श्न 3. प्राथमिक तथ्य संकलन की एक प्रविधि के बारे में लिखें ?

संदर्भ ग्रंथ सूची

गुडे एण्ड हाट्ट : मैथड्स इन सोशियल रिसर्च

जी.ए.लुण्डबर्ग : सोशियल रिसर्च

राम आहूजा : सामाजिक सर्वेक्षण एवं अनुसंधान

इकाई 8

वैयक्तिक अध्ययन
(CASE STUDY)

इकाई की रूपरेखा

8.0 अध्ययन के उद्देश्य
8.1 प्रस्तावना
8.2 वैयक्तिक अध्ययन एक पद्धति के रूप में
8.3 वैयक्तिक अध्ययन की आधाभूत मान्यताएँ
8.4 वैयक्तिक अध्ययन के अन्तर्गत प्रयुक्त चरण/कार्यविधि
8.5 वैयक्तिक अध्ययन के अन्तर्गत सूचनाओं (आँकड़ों) के श्रोत
8.6 वैयक्तिक अध्ययन का महत्व
8.7 वैयक्तिक अध्ययन की सीमाएँ
8.8 निष्कर्ष
8.9 अभ्यास प्रष्न
8.10 संदर्भ ग्रंथ

8.0 उद्देश्य :

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के उपरान्त आपके लिए निम्नलिखित को बताना सम्भव होगा

- वैयक्तिक अध्ययन पद्धति से आशय
- वैयक्तिक अध्ययन पद्धति की आधारभूत मान्यताएँ,
- वैयक्तिक अध्ययन पद्धति के विविध चरण तथा सूचनाओं के स्रोत,
- वैयक्तिक अध्ययन पद्धति का महत्व और सीमाएँ।

8.1 प्रस्तावना

वैयक्तिक अध्ययन पद्धति सामाजिक शोध में तथ्य संकलन की एक महत्वपूर्ण विधि है। इसका प्रयोग विविध सामाजिक विज्ञानों में कई दशकों से होता आया है। अनेकों विद्वानों ने अपने अध्ययनों में इस पद्धति का प्रयोग किया है। यह पद्धति किसी भी सामाजिक इकाई का उसकी सम्पूर्णता एवं गहनता में अध्ययन करती है। इसके द्वारा किया गया अध्ययन इतना गहन होता है कि इसे 'सामाजिक सूक्ष्मदर्शक यन्त्र' तक की संज्ञा दी गई है। जिस प्रकार सूक्ष्मदर्शक यन्त्र से ऐसे कीटाणुओं को भी देखा जा सकता है जिन्हें हम अपनी नंगी आंखों से नहीं देख पाते हैं। वैसे ही इस पद्धति के द्वारा हम उन सामाजिक तथ्यों को भी उद्घाटित कर लेते हैं जो किसी अन्य विधि द्वारा सम्भव नहीं हो सकता है।

प्रस्तुत इकाई में हम आपको इस पद्धति के प्रारम्भिक विकास, परिभाषाओं, मान्यताओं, कार्यविधियों/चरणों, सूचनाओं के स्रोत इत्यादि से अवगत करवाते हुए इसके महत्व और सीमाओं को भी बतलायेगें। इकाई के अध्ययन के उपरान्त आपके लिए भी यह सम्भव होगा कि भविष्य में सामाजिक शोधों में इसका प्रयोग कर सकें।

8.2 वैयक्तिक अध्ययन एक पद्धति के रूप में

वैयक्तिक अध्ययन सामाजिक शोध की एक महत्वपूर्ण पद्धति/विधि है। जिसका विकास विशेषतः अमेरिका में हुआ। इस पद्धति का गहन एवं विस्तारपूर्वक प्रयोग मनोविज्ञान, शिक्षाशास्त्र, अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र तथा राजनीतिशास्त्र जैसी विधाओं में किया गया। शनैः शनैः किसी सामाजिक समस्या के विभिन्न पहलुओं के उद्विकास एवं वृद्धि को रेखांकित करने की एक अत्यधिक सुविधाजनक पद्धति के रूप में इसे मान्यता प्रदान की गयी। यह पद्धति एक अर्द्धविकसित अथवा विकासशील राष्ट्र के अन्तर्गत विशेष रूप से उपयोगी समझी जाती रही है, जहाँ विभिन्न प्रकार की सामाजिक संस्थाएँ पारस्परिक अन्तःक्रिया करती हैं।

पी.वी. यंग (1977 : 247) का कहना है कि, ''किसी एक सामाजिक इकाई चाहे वह इकाई एक व्यक्ति, एक समूह, एक संस्था, एक जिला अथवा एक समुदाय ही हो, का विस्तृत अध्ययन वैयक्तिक अध्ययन कहलाता है।'' सरलतम शब्दों में हम कह सकते हैं कि इसमें किसी भी सामाजिक इकाई को सम्पूर्णता की दृष्टि से देखा जाता है। ऐसा ही विचार गुडे और हाट (1952 : 331) ने भी व्यक्त किया है। बीसेन्ज तथा बीसेन्ज ने अपनी पुस्तक 'माडर्न सोसाईटी (1982)' में लिखा है कि, ''वैयक्तिक अध्ययन गुणात्मक विश्लेषण का एक विशेष स्वरूप है जिसके अन्तर्गत किसी व्यक्ति, परिस्थिति अथवा संस्था का अत्यधिक सावधानीपूर्वक और पूर्ण अवलोकन किया जाता है।''

सिन पाओ येंग ने अपनी पुस्तक, 'फैक्ट फाईडिंग विद रूरल पीपुल (1971)' में लिखा है कि, ''वैयक्तिक अध्ययन पद्धति को किसी एक छोटे, सम्पूर्ण तथा गहन अध्ययन के रूप में परिभाषित किया जा सकता है, जिसके अन्तर्गत अनुसंधानकर्ता किसी व्यक्ति के सम्बन्ध में पर्याप्त सूचनाओं का व्यवस्थित संकलन करने के लिए अपनी समस्त क्षमताओं और विधियों का उपयोग करता है, जिससे यह ज्ञात हो सके कि एक स्त्री अथवा पुरुष समाज की एक इकाई के रूप में किस प्रकार कार्य करता है।''

उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट होता है कि, वैयक्तिक अध्ययन से अभिप्राय सामाजिक शोध में प्रयुक्त एक विधि (पद्धति) से है, जो एक व्यक्ति, परिवार, संस्था अथवा समुदाय के रूप में एक सामाजिक इकाई से सम्बन्धित गुणात्मक सामग्री के संग्रह को सम्भव बनाती है।

इस विधि की प्रकृति को समुचित रूप से समझने के लिए यह आवश्यक है कि इस प्रत्यय से सम्बन्धित प्रमुख विशेषताओं को स्पष्ट किया जाये।

1. यह सापेक्षतया अधिक गुणात्मक है।

2. यह विधि एक विशिष्ट सामाजिक इकाई का सम्पूर्ण अध्ययन है।

3. इस विधि द्वारा किया जाने वाला अध्ययन अत्यधिक सूक्ष्म एवं गहन होता है।

4. इस विधि में अतीत एवं वर्तमान दोनों का समन्वय होता है। इस विधि में अध्ययनकर्ता किसी इकाई से सम्बन्धित अतीत के तथ्यों को जानने के साथ ही उनका वर्तमान स्थिति से सह–सम्बन्ध ज्ञात करने का प्रयत्न करता है।

5. इस विधि के द्वारा अध्ययन की इकाई के विभिन्न तत्वों के एकीकरण एवं समग्रता की स्थिति को स्वीकार करते हुए विभिन्न सूचनाओं को एकत्रित करने का प्रयास किया जाता है।

6. इस विधि का प्रमुख उद्देश्य किसी चयनित इकाई की विभिन्न परिस्थितियों के बीच कार्य–कारण के सम्बन्धों को ज्ञात करना है। इस विधि के माध्यम से चयनित इकाई के व्यवहार को प्रेरणा अथवा प्रोत्साहन देने वाले कारकों के विषय में जानकारी प्राप्त की जाती है तथा यह जानने का भी प्रयत्न किया जाता है कि, वर्तमान परिस्थितियाँ अतीत की परिस्थितियों से किस प्रकार प्रभावित अथवा अप्रभावित हैं।

संक्षेप में, वैयक्तिक अध्ययन विधि की उपर्युक्त विशेषताओं के सन्दर्भ में यह कहा जा सकता है कि, इस विधि का प्रयोग करते हुए यह ज्ञात होता है कि, प्रमुख रूप से किसी चयनित इकाई के आन्तरिक संरचना सम्बन्धित पहलू क्या है तथा इस आन्तरिक संरचना के अतीत एवं वाह्य वातावरण के बीच क्या सम्बन्ध हैं इसी आधार पर वैयक्तिक अध्ययन विधि को बर्गेस (1949:25-26) ने 'सामाजिक सूक्ष्म–दर्शक यंत्र' (सोशल माइक्रोस्कोप) नाम से सम्बोधित किया है।

वैयक्तिक अध्ययन विधि की विशेषताओं को ज्ञात कर लेने के पश्चात यह भी आवश्यक प्रतीत हो जाता है कि, सामाजिक विज्ञानों के अन्तर्गत इस विधि के उद्विकास पर प्रकाश डाला जाये। हॉवर्ड ओडम तथा कैथरीन जोचर (1929:229) ने वैयक्तिक अध्ययन के उद्विकास पर अपने विचार इस प्रकार व्यक्त किए हैं, ''वास्तव में सामाजिक विज्ञानों के अन्तर्गत वैयक्तिक विधि के सबसे पहले प्रयोग इतिहासकारों के व्यक्तियों एवं राष्ट्रों के विवरण थे, जिनका अनुगमन बाद में अधिक छोटे समूहों, गुटों एवं व्यक्तियों के विस्तृत अध्ययनों द्वारा किया गया।'' सर्वप्रथम फ्रेडरिक लीप्ले (1806-1882) ने सामाजिक विज्ञान में वैयक्तिक अध्ययन विधि का प्रयोग पारिवारिक बजट के अपने अध्ययनों के अन्तर्गत किया। तत्पश्चात् हरबर्ट स्पेन्सर (1820-1903) ने नृशास्त्रीय अध्ययनों में वैयक्तिक अध्ययन का प्रयोग किया (पी.वी. यंग 1977:247)। बाद में बाल अपराधियों के अध्ययन में मनोचिकित्सक विलियम हीली ने इस पद्धति को अपनाया। पी०वी० यंग (1977: 247-250) ने वैयक्तिक अध्ययन पद्धति के उद्विकास पर विस्तृत प्रकाश डाला है। थामस और

नैनिकी की पुस्तक 'दी पोलिश पीजेन्ट इन यूरोप एण्ड अमेरिका' के प्रकाशन होने के बाद ही इस अध्ययन विधि को एक व्यवस्थित समाजशास्त्रीय क्षेत्र शोध के वास्तविक प्रयोग एवं स्वीकृति मिल पायी। इस पुस्तक में वैयक्तिक दस्तावेजों– डायरियाँ, पत्रों, आत्मकथाओं का प्रचुर मात्रा में प्रयोग किया गया था। इस विषय पर बेन्जामिन पाल की पुस्तक 'वेल्थ, कल्चर एण्ड कम्युनिटी' महत्वपूर्ण है, जिसने विश्व के विभिन्न भागों में सामुदायिक स्तर पर किए गये वैयक्तिक अध्ययनों को सम्मिलित कर विश्व समुदाय के समक्ष इस विधि को प्रकाशित किया।

साधारण रूप से 'वैयक्तिक अध्ययन* (Case Study) एवं 'वैयक्तिक कार्य* (Case Work) के प्रत्यय सामाजिक शोध के अन्तर्गत प्रयोग में आते रहें हैं। प्रचलन के तौर पर यह कहा जा सकता है कि जहाँ 'वैयक्तिक अध्ययन' किसी एक विशेष इकाई के गहन अन्वेषण के रूप में स्थापित है, वहीं 'वैयक्तिक कार्य' विकासात्मक एवं समायोजनात्मक प्रक्रियाएँ जो निदान का अनुगमन करती हैं, के सन्दर्भ में प्रयुक्त होता रहा है। यहाँ यह ध्यान देने योग्य है कि, ये दोनों विधियाँ एक सामाजिक अथवा वैयक्तिक समस्या के प्रति समान अभिगम/उपागम का स्वरूप हैं, तथा अन्तर्सम्बन्धित एवं अनिवार्यतः दोनों एक–दूसरे के सम्पूरक हैं।

वैयक्तिक अध्ययन प्रायः एक पद्धति (विधि), कभी तकनीक अन्य अवसरों पर अभिगम तथा समय–समय पर किसी चयनित इकाई के परिदृश्य में आँकड़ों को संगठित करने के ढंग के रूप में परिभाषित होता रहा है। यह भी समझा जाता रहा है कि वैयक्तिक अध्ययन पद्धति का तात्पर्य अध्ययन के एक ऐसे तरीके से है, जिसके द्वारा किसी व्यक्ति के क्रियाकलापों, मनोवृत्तियों और जीवन–इतिहास का गहन अध्ययन किया जाता है। परन्तु यह भी मत व्यक्त किया जाता रहा है कि, इस विधि के द्वारा केवल एक व्यक्ति का ही गहन अध्ययन नही किया जाता है, बल्कि किसी भी एक सामाजिक इकाई जैसे व्यक्ति, परिवार, समूह, संस्था अथवा समुदाय को केन्द्र मानते हुए प्रयोग किया जा सकता है। यहाँ यह कहना उचित होगा कि, ''समग्र रूप में वैयक्तिक अध्ययन सामाजिक शोध के अन्तर्गत प्रयोग में लाया जाने वाला एक ऐसा ढंग है जो अनुसंधानकर्ता को तीव्र एवं सूक्ष्म अन्तदृष्टि प्रदान करने, इकाईयों का अधिक गहराई में पैठकर अध्ययन करने, समस्याओं का मनो–सामाजिक अध्ययन करने, निदान करने एवं समाधान के उपाय प्रस्तुत करने, अन्य ढंगों तथा पर्यवेक्षण अत्यादि की सहायता लेते हुए निष्कर्षों को अधिक से अधिक यथार्थ एवं पूर्ण बनाने तथा नवीन परिकल्पनाओं को प्रतिपादित करने के लिए उपयुक्त आधार प्रदान करने में सहायक सिद्ध होता है।'' (सुरेन्द्र सिंह, 1975 : 401)

उपरोक्त परिपेक्ष्य में, वैयक्तिक अध्ययन का प्रयोग विशेषतया मनोचिकित्सा, समाज कार्य तथा सामाजिक शोध में किया जाता है। आधुनिक समाज की जटिल समस्याओं की गहनता के सन्दर्भ में, वैयक्तिक अध्ययन पद्धति का प्रयोग ''मनोचिकित्सा के अन्तर्गत मानसिक

बीमारियों का उपचार करने हेतु मनो–सामाजिक अध्ययन करने एवं निदान प्रस्तुत करने के लिए तथा सामाजिक अनुसंधान के अन्तर्गत समस्या समाधान प्रस्तुत करने हेतु आवश्यक सूचना का संग्रह करने के लिए किया जाता है।'' (सुरेन्द्र सिंह, 1975 : 402)

वैयक्तिक अध्ययन के प्रत्यय को प्रमुख रूप से दो दृष्टिकोणों से समझा जा सकता है : पहला, पद्धति (विधि) के रूप में और दूसरा, उपागम के रूप में। पद्धति के रूप में, वैयक्तिक अध्ययन सामाजिक शोध के अन्तर्गत गुणात्मक सामग्री के संग्रह में सहायता प्रदान करता है और जो इसी सन्दर्भ में गणनात्मक एकत्रीकरण को सम्भव बनाने वाली विधियों जैसे प्रश्नावली तथा साक्षात्कार से भिन्न है। उपागम के रूप में, वैयक्तिक अध्ययन एक अधिक विस्तृत क्षेत्र का प्रतिनिधित्व करने वाले एक सूक्ष्म एवं सीमित क्षेत्र का अध्ययन करने से सम्बन्धित होता है। एक उपागम के रूप में स्वीकार करने पर किसी भी जटिल परिस्थिति तथा उससे समिश्रित कारकों का अध्ययन करना तथा उसे निदानात्मक स्वरूप प्रदान करने में वैयक्तिक अध्ययन को प्रयोग में लाना सम्भव हो जाता है।

प्रायः वैयक्तिक अध्ययन एवं सांख्यिकीय उपागमों के स्वरूपों के बीच अन्तर किया जाता रहा है, तथा दोनों को विरोधी की संज्ञा भी प्रदान की जाती रही है, क्योंकि वैयक्तिक अध्ययन को प्रमुखतया शोध की गैर–सांख्यिकीय प्रणाली के रूप में स्वीकार किया जाता है। एक सांख्यिकीविद विशेषतया गुणात्मक/परिमाणात्मक सूक्ष्मता उपागम से अभिप्रेरित रहता है। वह समाज के समस्तर दृश्य लेते हुए आँकड़ों के एक विस्तृत क्षेत्र को प्रकट करता है। वह एक दी हुई परिस्थिति के अन्तर्गत विभिन्न कारकों के घटित होने तथा अन्तर्सम्बन्धित सामान्यीकरणों के आकार को दर्शाता है। इसके विपरीत, वैयक्तिक अध्ययन सामाजिक प्रक्रियाओं का निर्धारण करता है तथा विभिन्न कारकों की जटिलता को स्पष्ट करते हुए निदानात्मक अभिव्यक्ति हेतु कार्यक्रमों एवं हस्तक्षेप–युक्त कार्यप्रणाली को प्रदर्शित करता है। सामाजिक प्रक्रियाओं के निर्धारण में एकरूपता प्रदान करने हेतु वैयक्तिक अध्ययनों की एक कड़ी विशिष्ट एवं सामान्य भिन्नताओं की तुलना करने तथा उनमें विभेद स्थापित करने के उद्देश्य से समानताओं एवं विभिन्नताओं की खोज करती है।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि, सांख्यिकीय उपागम केवल कुछ सीमित कारकों के साथ तुलना करता है, जो किसी भी सामाजिक समस्या पर सूक्ष्म दृष्टि प्रदान करने में सुविधाजनक प्रतीत नही होते हैं। किन्तु यह भी सत्य है कि एक सांख्यिकीविद् साहचर्य की मात्रा, बारम्बारता तथा सीमा को समझते हुए सामाजिक परिस्थिति को अधिक गहराई के साथ समझने का प्रयास करता है। इस रूप में सांख्यिकीय उपागम वैयक्तिक अध्ययन के लिए शोधकर्ता को उत्तरदाताओं के चुनाव में मार्गदर्शन प्रदान कर सकता है, तथा विशिष्ट एवं अधिक पूर्ण अध्ययन की आवश्यकता रखने वाले कारकों को सामने लाने में सहायक हो सकता है। दूसरी तरफ, वैयक्तिक अध्ययन सांख्यिकीय विश्लेषण के लिए आधारभूत सामग्री प्रदान कर सकते हैं।

वैयक्तिक अध्ययन एवं सांख्यिकीय उपागम की पारस्परिक निर्भरता को पी०वी० यंग (1977) ने इस प्रकार समझाने की चेष्टा की है–

''. . . . एक विद्यार्थी जो वैयक्तिक अध्ययन पद्वति का प्रयोग करता है, सापेक्षतया छोटी संख्या में उत्तरदाताओं का प्रयोग करने में समर्थ होता है। किन्तु जहाँ तक वैयक्तिक अध्ययन पद्धति से उत्पन्न होने वाले प्रतिबन्धों का सम्बन्ध है, एक व्यक्ति से सम्बन्धित लक्षणों अथवा कारकों की सम्पूर्ण संख्या असीमित होती है। यह वैसे ही है जैसे कि एक सांख्यिकीविद एक समस्तर दृश्य ले रहा हो, जो आँकड़ों के एक विस्तृत क्षेत्र को काटता हो, जबकि वैयक्तिक अध्ययन पद्वति का प्रयोग करने वाला विद्यार्थी कम संख्या में वैयक्तिक उत्तरदाताओं का सीधा दर्शन उन अनेक विस्तारों पर गौर करते हुए करता है जो उसके ध्यान में आते हैं। विस्तार के प्रति मनोवृत्ति की यह भिन्नता कुछ सीमा तक दोनों अभिगमों में विभेद स्थापित करती है, क्योंकि सांख्यिकीविद सामान्य आधारों की प्रकृति से सम्बन्धित होता है, जबकि वैयक्तिक अध्ययन पद्धति का प्रयोग करने वाला विद्यार्थी उस सामग्री को बड़ी मात्रा में सम्मिलित करने के लिए उत्सुक होता है, जो कम से कम उस समय विशिष्ट प्रतीत होती है। इसके अतिरिक्त वैयक्तिक अध्ययन पद्धति द्वारा अध्ययन के अन्तर्गत व्यक्तियों में बड़ी संख्या में प्रतीत होने वाले लक्षणों एवं कारकों को एक साथ जोड़ना तथा अन्तिम रूप से कार्य–कारण सम्बन्धों की स्थापना करना सम्भव है, जबकि सह–सम्बन्ध का सांख्यिकीय ढंग एक समय पर तीन अथवा सम्भवतः चार कारकों से अधिक के साथ कार्य नहीं कर सकता है।''

8.3 वैयक्तिक अध्ययन की आधारभूत मान्यताएँ

वैयक्तिक अध्ययन विधि, जिसका प्रमुख प्रयोजन एक अथवा कुछ इकाइयों का सर्वांगीण अध्ययन के आधार पर सम्पूर्ण समूह अथवा क्षेत्र की विशेषताओं के विषय में अवगत होना होता है, वाह्य रूप से कुछ त्रुटिपूर्ण प्रतीत हो सकता है, परन्तु यह विधि कुछ ऐसी मान्यताओं पर आधारित है जिनको समझकर इस प्रकार की आशंकाओं का निराकरण किया जा सकता है। इस दृष्टि से वैयक्तिक अध्ययन की आधारभूत मान्यताओं पर दृष्टिपात कर लेना आवश्यक प्रतीत होता है, जो निम्नलिखित है :–

(i) वैयक्तिक अध्ययन की सर्वप्रमुख मान्यता यह है कि सभी व्यक्तियों के व्यवहारों में उनकी विभिन्न परिस्थितियों के अनुसार भिन्नता होने के बाद भी मानव स्वभाव में कुछ मौलिक एकता विद्यमान रहती है, जिसके माध्यम से सभी व्यक्तियों के व्यवहारों को समझा जा सकता है। इस विषय पर आल्पोर्ट (1942) के विचार महत्वपूर्ण हैं, जिसने यह प्रतिपादित किया कि मानव प्रकृति से सम्बन्धित कुछ विशेषताएँ ऐसी होती हैं जिन्हें सभी व्यक्तियों तथा एक समूह के प्रत्येक सदस्य पर लागू किया जा सकता है। इस आधार पर वैयक्तिक अध्ययन विधि के माध्यम से किसी इकाई अथवा एक विशेष समूह की विशेषताओं को समझना एक वैज्ञानिक विधि कहा जा सकता है।

(ii) वैयक्तिक अध्ययन विधि इस मान्यता पर भी आधारित रहती है कि, प्रत्येक मानव व्यवहार कुछ विशेष परिस्थितियों से प्रभावित होता है। अतः यदि एक विशेष परिस्थिति के अन्तर्गत किसी व्यक्ति अथवा समूह के सदस्य के व्यवहार को समझ लिया जाये तो उसी परिस्थिति में अन्य व्यक्ति एवं समूह भी उसी प्रकार का व्यवहार करते हुए पाये जायेंगे। इस सन्दर्भ में यह भी सत्य है कि परिस्थितियों में पुनरावृत्ति होती रहती है। इस अर्थ में, विभिन्न स्थानों एवं विभिन्न समय पर उत्पन्न होने वाले मानव व्यवहारों का अनुमान लगाया जा सकता है।

(iii) वैयक्तिक अध्ययन की यह भी मान्यता है कि मानवीय क्रियाओं एवं व्यवहारों पर 'समय तत्व' का भाव अनिवार्य रूप से परिलक्षित होता है। इस सन्दर्भ में यह समझना आवश्यक है कि जो घटना आज वर्तमान में घटित हो रही है, उसका बीजारोपण आज काफी समय पूर्व किसी न किसी कारक के प्रभाव से हो चुका होता है। अतः वैयक्तिक अध्ययन विधि के माध्यम से किसी विशेष घटना को प्रभावित करने वाले कारकों को एक विशेष अवधि अथवा समय के सन्दर्भ में समझा जा सकता है। उदाहरण के तौर पर यह कहा जा सकता है कि किसी समााजिक समस्या, क्रान्ति अथवा युद्ध की स्थिति केवल तात्कालिक दशाओं से उत्पन्न नहीं होती बल्कि इनका बीजारोपण काफी पहले हो चुका होता है।

(iv) वैयक्तिक अध्ययन की एक महत्वपूर्ण मान्यता है कि, किसी सामाजिक इकाई का सम्यक् अध्ययन उसे सर्वांगीण रूप से देखकर ही प्राप्त किया जा सकता है, न कि उसके किसी एक अथवा कुछ अन्यत्र पहलुओं के आधार पर। यहाँ यह समझना आवश्यक प्रतीत होगा कि बहुत सी इकाईयों के एक अथवा दो पक्षों का अध्ययन करने से अधिक अच्छा है कि एक या दो इकाइयों के सभी पहलूओं का समग्र रूप में अध्ययन कर निष्कर्ष प्राप्त कर लिया जाये।

(v) वैयक्तिक अध्ययन की उपयुक्तता इस मान्यता पर आधारित है कि मानवीय व्यवहार एवं सामाजिक क्रियायें इतनी जटिल होती हैं कि उन्हें केवल अवलोकन अथवा साक्षात्कार के माध्यम से समुचित रूप से समझा नही जा सकता, अपितु किसी सामाजिक इकाई के व्यवहारों, मनोवृत्तियों, प्रेरणाओं एवं प्रक्रियाओं पर सम्यक् दृष्टि प्राप्त करने हेतु उनका वैयक्तिक एवं समग्र अध्ययन करना आवश्यक होता है। इसी सन्दर्भ में जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है कि वैयक्तिक अध्ययन को एक 'सामाजिक सूक्ष्मदर्शक यंत्र' की संज्ञा भी प्रदान की गई है।

8.4 वैयक्तिक अध्ययन के अन्तर्गत प्रयुक्त चरण/कार्य–विधि

वैयक्तिक अध्ययन की विषय वस्तु सामाजिक इकाइयों की आन्तरिक संरचना तथा उसके वाह्य वातावरण से सम्बन्धित रहती है, जो स्वभावतया इतनी जटिल एवं अव्यवस्थित होती

है कि उनका सम्यक् अध्ययन करने के लिए एक व्यवस्थित कार्य–प्रणाली को उपयोग में लाना आवश्यक हो जाता है। वास्तव में वैयक्तिक अध्ययन के अन्तर्गत सामाजिक इकाइयों का सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक पक्षों का इस प्रकार अध्ययन करना होता है जिससे कि उनकी आन्तरिक संरचना एवं वाह्य परिवेश की मौलिक विशेषताओं को समझा जा सके। इस पृष्ठभूमि में, वैयक्तिक अध्ययन के अन्तर्गत प्रयोग में लाए जाने वाले चरणों एवं सोपानों को समझ लेना आवश्यक प्रतीत होता है जिससे कि इस विधि का व्यवस्थित रूप से उपयोग किया जा सके–

वैयक्तिक अध्ययन पद्धति के प्रमुख चरण अथवा उसकी कार्य–विधि के मुख्य पक्ष निम्नलिखित हैं।

(i) समस्या के पक्षों का निर्धारण

सर्वप्रथम वैयक्तिक अध्ययन के लिए अध्ययन की इकाई अथवा समस्या की प्रकृति का समुचित स्पष्टीकरण करना, इकाइयों का निर्धारण करना तथा अध्ययन क्षेत्र से पूर्णतया अवगत होना आवश्यक होता है। वास्तव में, वैयक्तिक अध्ययन की सफलता भी इसी प्रारम्भिक सोपान पर अत्यधिक आधारित होती है। अतः इस परिदृश्य में, अनुसंधानकर्ता को सामाजिक इकाई अथवा समस्या के विभिन्न पक्षों से सम्बन्धित निम्नलिखित तथ्यों पर ध्यान देना विशेष रूप से महत्वपूर्ण होता है।

(क) समस्या का चुनाव : वैयक्तिक अध्ययन हेतु सर्वप्रथम अध्ययन से सम्बन्धित समस्या अथवा विषय का चयन करना अति आवश्यक होता है। वास्तव में, इसी चयनित समस्या के आधार पर ही किसी भी अनुसंधान को व्यवस्थित रूप से सम्पन्न किया जा सकता है। उदाहरण के तौर पर, यह समस्या बाल–अपराध, मद्यपान, अनुशासन हीनता, पारिवारिक विघटन, सामाजिक तनाव, इत्यादि किसी विषय से सम्बन्धित हो सकती है।

(ख) इकाइयों का निर्धारण : समस्या का चुनाव कर लेने के पश्चात् उससे सम्बन्धित इकाईयों का निर्धारण करना आवश्यक हो जाता है। उदाहरण के लिए यदि अध्ययन मादक द्रव्यों के उपयोग से सम्बन्धित है, तो इस तथ्य का निर्धारण करना आवश्यक होता है कि मादक द्रव्य व्यसन के अध्ययन हेतु उससे सम्बन्धित कौन सी इकाई का चयन किया जाना है। इसके अन्तर्गत ये इकाइयाँ कोई भी व्यक्ति, समूह अथवा विशेष संस्थाएँ, इत्यादि हो सकती हैं।

(ग) इकाइयों की संख्या का निर्धारण : इसी क्रम में वैयक्तिक अध्ययन के लिए यह निर्धारित करना आवश्यक प्रतीत होता है कि, अध्ययन की जाने वाली इकाइयों की संख्या क्या होगी। इस संख्या का निर्धारण अनुसंधानकर्ता के पास उपलब्ध साधनों और समय पर आधारित होता है। यहाँ यह ध्यान देने योग्य है कि, यह संख्या इतनी कम नहीं होनी चाहिए कि अध्ययन से सम्बन्धित सभी प्रकार के तथ्यों का संकलन न किया जा सके और न ही इतनी अधिक होनी चाहिए कि उनका गहन अध्ययन करना सम्भव न हो सके।

(ii) अध्ययन के क्षेत्र का निर्धारण

वैयक्तिक अध्ययन के लिए समस्या के विभिन्न पक्षों का निर्धारण (जो उपरोक्त 'क', 'ख' तथा 'ग' के माध्यम से वर्णित किया गया है, के पश्चात् अनुसंधानकर्ता द्वारा उस स्थान अथवा क्षेत्र का निर्धारण करना भी आवश्यक होता है, जहाँ विभिन्न इकाइयों का अध्ययन किया जाना है। उदाहरण के तौर पर, मादक द्रव्य व्यसन सम्बन्धित समस्या के अन्तर्गत इस समस्या से पीड़ित व्यक्ति, समूह किन संस्थाओं, सुधार–गृहों, चिकित्सालयों में रह रहें हैं, उनमें से किस स्थान पर वैयक्तिक अध्ययन करना है, इसका निर्धारण करना आवश्यक होता है।

(iii) विश्लेषण क्षेत्र का निर्धारण

वैयक्तिक अध्ययन के अन्तर्गत समस्या के विशिष्ट क्षेत्र के निर्धारण के पश्चात अध्ययन की इकाई के विश्लेषण–क्षेत्र को पूर्णतया स्पष्ट कर लेना आवश्यक होता है। विश्लेषण क्षेत्र से अभिप्राय है अध्ययन की जाने वाली इकाई से सम्बन्धित वे कौन से पक्ष महत्वपूर्ण हैं तथा कौन से पक्ष उपयोगी नही हैं। इस प्रकार विश्लेषण क्षेत्रों की उपयोगिता एवं अनुपयोगिता दोनों का निर्धारण करना वैयक्तिक अध्ययन को व्यवस्थित करने से सम्बन्धित हैं।

(iv) समय या अवधि के अन्तर्गत घटनाओं के अनुक्रम का वर्णन

अध्ययन की इकाई के विश्लेषण क्षेत्रों के निर्धारण के पश्चात् अध्ययन से सम्बन्धित समस्या अथवा इकाई को एक विशेष समय या अवधि के सन्दर्भ में समझने का प्रयास करना आवश्यक होता है, अर्थात् इस तथ्य को समझना कि सामाजिक इकाई की कुछ विशेष घटनायें किस अवधि में घटित हुई तथा उन घटनाओं से सम्बन्धित विभिन्न समय/अवधि में कौन–कौन सी विशेषताएँ सम्बद्ध रही हैं, तथा भविष्य में इकाई से सम्बन्धित कौन–सी घटनाओं के घटित होने की सम्भावना की जा सकती है, इत्यादि।

(v) निर्धारक अथवा प्रेरक तत्व

वैयक्तिक अध्ययन की यह प्रमुख मान्यता रही है कि, कोई भी घटना शून्य में नही घटती, अर्थात् प्रत्येक घटना अथवा समस्या को उत्पन्न करने वाले कुछ–न–कुछ निर्धारक या प्रेरक तत्व विद्यमान रहते हैं। अतः घटनाओं के क्रम को स्पष्ट कर लेने के पश्चात अध्ययन के लिए समस्या अथवा इकाई के अन्तर्गत घटनाओं के निर्धारक तत्वों को ज्ञात कर लेना आवश्यक होता है। उदाहरणार्थ, मादक–द्रव्य व्यसन को प्रेरणा देने वाले अनेक कारक हो सकते हैं, जैसे पारिवारिक स्थिति, पड़ोस, मित्र की संगति, इत्यादि। वैयक्तिक अध्ययन के लिए ऐसे सभी प्रेरक तत्वों का ज्ञान वास्तविक अध्ययन को व्यवस्थित विधि से सम्पन्न करने हेतु आवश्यक होता है।

(vi) विश्लेषण एवं निष्कर्ष

वैयक्तिक अध्ययन पद्धति के अन्तिम एवं सबसे महत्वपूर्ण चरण सभी संकलित तथ्यों का वर्गीकरण एवं उनका विश्लेषण कर निष्कर्ष प्राप्त करना होता है। इस विश्लेषण एवं निष्कर्ष

का प्रमुख अभिप्राय है, एक विशेष अवधि अथवा वास्तविकता के अन्तर्गत होने वाली चयनित इकाई/इकाइयों के व्यवहार के स्वभाव से पूर्णतया अवगत होना तथा उन दशाओं अथवा कारकों से परिचय प्राप्त करना जो चयनित समस्या या मानव व्यवहार के लिए उत्तरदायी होते हैं।

सारांश में, यह कहा जा सकता है कि, वैयक्तिक अध्ययन के अन्तर्गत वैज्ञानिक ढंग को अपनाकर कार्य करते हुए अनुसंधानकर्ता चयनात्मक प्रत्यक्ष ज्ञान के माध्यम से अध्ययन प्रारम्भ करता है। वह एक सम्पूर्ण विश्लेषक की भूमिका में वैज्ञानिक वस्तुओं, तथ्यों एवं घटनाओं को एक विशिष्ट दृष्टिकोण तथा एक विशिष्ट प्रकार की अभिरुचि की दृष्टि से समझता है तथा उनका संग्रह, संकलन, अभिलेखन एवं निर्वचन करता है। वह यहाँ पर यद्यपि एक जटिल सामाजिक परिस्थिति/ वास्तविकता में पाये जाने वाले तत्वों की आत्मनिर्भरता को ध्यान में रखते हुए, किन्तु फिर भी इन सभी तत्वों का विवरण एक साथ प्रस्तुत न कर एक–एक करके उनका विश्लेषण एवं विवेचन करता है। वह वैयक्तिक अध्ययन प्रक्रिया से सम्बन्धित आवश्यक गुणों जैसे अध्ययन विषय का समुचित ज्ञान, सूक्ष्म अवलोकन की क्षमता, विश्लेषण की क्षमता, तार्किक व्याख्या की कुशलता तथा प्रतिवेदन में वस्तुनिष्ठता इत्यादि के माध्यम से वैयक्तिक अध्ययन के विभिन्न चरणों/सोपानों को पार करता है।

8.5 वैयक्तिक अध्ययन में सूचनाओं के स्रोत

वैयक्तिक अध्ययन में अनुसंधानकर्ताओं द्वारा विविध प्रकार के स्रोतों एवं प्रविधियों का उपयोग किया गया है। इस दृष्टिकोण से, इसे बहमुखी प्रकृति वाली विधि की संज्ञा प्रदान की जा सकती है। नेल्स एण्डरसन (1923) ने 'होबों' लोगों के जीवन पद्धति की आन्तरिक संरचना का अध्ययन हेतु सर्वप्रथम उनके समूह में गाये जाने वाले लोक गीतों, गाथाओं तथा उनकी कविताओं का उपयोग किया। तत्पश्चात् विभिन्न संस्थाओं द्वारा 'होबो लोगों' के जीवन के बारे में ज्ञान प्राप्त करने हेतु प्रकाशित सांख्यकीय तथ्य एकत्र किये गये। इसी क्रम में, उनकी वंशावलियाँ, फोटो तथा निकटवर्ती व्यक्तियों से भी विविध प्रकार की सूचनाओं का संग्रह किया गया। इन्हीं स्रोतों के माध्यम से एण्डरसन 'होबों लोगों' के जीवन की आन्तरिक विशेषताओं तथा उनके सामाजिक संगठन के बारे में व्यावहारिक नियमों के स्थापना में सफल हो पाया।

यदि हम वैयक्तिक अध्ययन के अन्तर्गत प्रयोग में लाये जाने वाले स्रोतों की प्रकृति का ज्ञान प्राप्त करना चाहते हैं, तो उन्हें दो भागों में विभाजित कर उनका अध्ययन किया जा सकता है : वैयक्तिक अध्ययन के प्राथमिक स्रोत एवं वैयक्तिक अध्ययन के द्वैतियक स्रोत।

(i) प्राथमिक स्रोत : वैयक्तिक अध्ययन में अनुसंधानकर्ता चयनित इकाई से सम्बन्धित विविध तथ्यों का संग्रह प्राथमिक सूचनाओं के माध्यम से करता है। इस दृष्टिकोण से वह व्यक्तिगत स्तर पर अवलोकन एवं साक्षात्कार प्रणालियों द्वारा प्रत्यक्ष रूप से आवश्यक

सूचनाओं को एकत्र करता है। तत्पश्चात अन्य प्रकार के तथ्य प्राप्त करने तथा संकलित सूचनाओं का सत्यापन करने के उद्देश्य से उसके द्वारा अध्ययन की इकाई से सम्बन्धित व्यक्ति के मित्रों, पड़ोसियों, पारिवारिक सदस्यों तथा अन्य सम्बन्धियों से सम्पर्क स्थापित किया जाता है। प्राथमिक स्रोतों के माध्यम से न केवल विविध प्रकार की आवश्यक सूचनाओं को संग्रह किया जाता है बल्कि उनकी विश्वसनीयता भी स्थापित की जाती है। प्राथमिक स्रोतों द्वारा प्राप्य तथ्य अनोपचारिक तथा आन्तरिक प्रकृति दोनों प्रकार के हो सकते हैं।

(ii) द्वैतियक स्रोत : प्राथमिक स्रोतों के अतिरिक्त वैयक्तिक अध्ययन के अन्तर्गत सूचनाओं के संकलन के लिए द्वैतियक स्रोत भी महत्वपूर्ण होते हैं। सामान्य तौर पर ये द्वितीयक स्रोत अनेक प्रकार के वैयक्तिक प्रलेखों जैसे डायरी, वैयक्तिक पत्र एवं लेख इत्यादि के रूप में होते हैं जो व्यक्तियों, समूहों, समुदायों से सम्बन्धित महत्वपूर्ण सूचनायें प्रदान करते हैं। ये वैयक्तिक प्रलेख इच्छित अथवा अनिच्छित रूप से रचनाकार की मानसिक विशेषताओं तथा वाह्य परिवेश से सम्बन्धित विविध प्रकार के तथ्य प्रस्तुत करते हैं, जो वैयक्तिक अध्ययन के विभिन्न सोपानों के दौरान उपयोगी सूचनायें प्रदान करते हैं। इस विधि के अन्तर्गत जिन द्वितीयक स्रोतों का उपयोग किया जा सकता है, उनमें डायरियाँ, पत्र, जीवन इतिहास, लेख, वंशावली प्रलेख, जीवन गाथा तथा विभिन्न संगठनों द्वारा सुरक्षित रिकार्ड इत्यादि हैं।

कुछ प्रमुख द्वैतियक स्रोत का विवरण निम्नवत् है–

दैनन्दिनियाँ (डायरियाँ) : दैनन्दिनियाँ (डायरियाँ) अत्यन्त महत्वपूर्ण द्वैतियक स्रोत हैं जो अन्य स्रोत से प्राप्त वैयक्तिक आंकड़ों को अधिक पूर्ण बनाती हैं। दैनन्दिनियाँ व्यक्ति द्वारा स्वयं लिखी जाती हैं तथा इसमें व्यक्ति अत्यधिक स्वाभाविक रूप से अपने जीवन की महत्वपूर्ण घटनाओं एवं संस्मरणों को लेखबद्ध करता रहता है। ये व्यक्ति के नये सम्पर्कों तथा उसके द्वारा आवश्यक समझे गये अनुभवों पर प्रकाश डालती हैं, तथा उसके व्यक्तिगत अनुभवों को स्पष्ट करने वाली टीकाएँ प्रदान करती हैं। इनकी प्रकृति गोपनीय होती है अतः इसमें व्यक्ति के जीवन सम्बन्धी अनेक महत्वपूर्ण सूचनाओं और रहस्यों का उल्लेख होता है। चूँकि यह प्रतिदिन लिखी जाती है, अतः इसमें व्यक्ति के जीवन से सम्बन्धित छोटी सी छोटी बातों का समावेश होता रहता है। इसके माध्यम से व्यक्ति की भावनाओं, मनोवृत्तियों, गोपनीय क्रियाओं, सफलताओं तथा असफलताओं को बहुत स्वाभाविक रूप से समझा जा सकता है। दैनन्दिनियाँ द्वितीयक स्रोत में महत्वपूर्ण इसलिए भी हैं, क्योंकि इसके माध्यम से उन अनेक तथ्यों से अवगत हुआ जा सकता है जिन्हें साक्षात्कार अथवा अवलोकन के द्वारा नहीं समझा जा सकता।

वैयक्तिक पत्र : वैयक्तिक पत्रों के अन्तर्गत अन्तरंग सामग्री उपलब्ध होती है। ये व्यक्तिगत मनोवृत्तियों, संदेशों, संवेगात्मक प्रतिक्रियाओं तथा निजी अभिरूचियों को स्पष्ट करते हैं, जिन्हें अन्य दस्तावेज स्पष्ट करने में असमर्थ होते हैं। थामस और नैनकी ने अपने शोध

अध्ययनों में विस्तृत स्तर पर पत्रों का प्रयोग किया। उनकी आधारभूत मान्यता यह थी कि व्यक्ति का विश्व के प्रति अभिमुखीकरण जानने के लिए भावनात्मक कारकों का अध्ययन करना आवश्यक है। उनके अनुसार इस मानवीय दस्तावेज के माध्यम से ही उन वास्तविक मानवीय अनुभवों एवं मनोवृत्तियों जो पूर्ण जीवित एवं वास्तविक सामाजिक वास्तविकता का निर्माण करते हैं, तक पहुँचा जा सकता है।

जीवन–इतिहास : किसी व्यक्ति के जीवन–इतिहास से वैयक्तिक अध्ययन में विस्तृत एवं स्पष्ट जानकारी प्राप्त होती है। वैयक्तिक जीवन इतिहास को सामान्यतया 'अन्य पुरुष' (Third Person) में लिखा जाता है। इसमें लेखक स्वयं अपने जीवन की भावनाओं एवं अनुभवों के बारे में अपनी ही भाषा में लिखता है। थामस और नैनकी ने जीवन इतिहास दस्तावेजों का व्यापक प्रयोग किया है। इनका उद्देश्य सम्पूर्ण जीवन चक्र अथवा उसकी किसी एक विशिष्ट प्रक्रिया का अध्ययन करना होता है। यह जीवन चक्र किसी एक व्यक्ति, परिवार, संस्था, संगठन, सामाजिक समूह अथवा समुदाय के रूप में किसी एक वैयक्तिक इकाई से सम्बन्धित हो सकता है।

अन्य वैयक्तिक दस्तावेज : उपरोक्त द्वितीयक सामग्रियों जैसे दैनन्दिनियाँ, वैयक्तिक पत्र, जीवन–इतिहास के अतिरिक्त अन्य वैयक्तिक दस्तावेज, जैसे आत्मकथायें, स्वीकारोक्तियां भी वैयक्तिक अध्ययन में सहायक हो सकते हैं। आल्पोर्ट (1942 : 12) ने इन्हें आत्म–प्रकटन करने वाले अभिलेख कहा है, ''जो इरादे के बिना अथवा इरादे के साथ लेखक के मानसिक जीवन
की संरचना, गतिकी तथा क्रिया से सम्बन्धित सूचना प्रदान करते हैं।'' वैयक्तिक दस्तावेज जीवन की उन परिस्थितियों में अनुभव की निरन्तरता का प्रतिनिधित्व करते हैं जो उसके व्यक्तित्व, सामाजिक व्यवहार तथा जीवन दर्शन पर प्रकाश डालते हैं और जो सामाजिक वास्तविकता से सम्बन्ध बनाते हुए सम्पूर्ण जीवन परिस्थिति तथा वैयक्तिक संगठन के सम्बन्ध में अन्तर्दृष्टि प्रदान करते हैं।

8.6 वैयक्तिक अध्ययन का महत्व

सामाजिक घटनाओं तथा समस्याओं के अत्यधिक सूक्ष्म एवं गहन अध्ययन में वैयक्तिक अध्ययन पद्धति अत्यधिक व्यावहारिक एवं उपयोगी सिद्ध हुई है। वर्तमान में यह तथ्य प्रमुख रूप से स्वीकार किया जाने लगा है कि, अधिकांश सामाजिक समस्याओं की प्रकृति व्यक्तिगत होती है तथा वैयक्तिक अध्ययन के आधार पर ही उनके समाधान के व्यावहारिक आधारों को ढूढ़ा जा सकता है। मानसिक चिकित्सा का तो सम्पूर्ण विकास वैयक्तिक अध्ययन और उसके सफल प्रयोग से ही सम्बन्धित रहा है। वास्तव में, वैयक्तिक अध्ययन–विधि सैद्धान्तिक एवं व्यवहारिक दोनों दृष्टियों से उपयोगी समझी गई है। इसी परिप्रेक्ष्य में इस विधि के गुणों एवं उपयोगिता को निम्नांकित रूप से समझा जा सकता है :

(i) वैयक्तिक अध्ययन के द्वारा किसी भी सामाजिक इकाई अथवा इकाईयों का अत्यधिक सूक्ष्म एवं गहन अध्ययन किया जा सकता है।

(ii) वैयक्तिक अध्ययन के द्वारा विभिन्न इकाईयों को सूक्ष्म एवं गहन अध्ययन की सहायता से अनेक उपयोगी तथा व्यवस्थित परिकल्पनाओं का निर्माण किया जा सकता है, जो इस अध्ययन के साथ–साथ नये अध्ययनों के लिए आधार के रूप में काम कर सकती है।

(iii) वैयक्तिक अध्ययन के अन्तर्गत अनेक महत्वपूर्ण तथ्यों की जानकारी प्राप्त होने के बाद उस अध्ययन अथवा अन्य सम्बन्धित अध्ययन के परिप्रेक्ष्य में प्रयोग लाये जाने वाले प्रपत्रों जैसे, प्रश्नावली अथवा साक्षात्कार–अनूसूची में सुधार करने का समुचित अवसर प्राप्त हो जाता है।

(iv) वैयक्तिक अध्ययन के द्वारा ही यह सम्भव हो सकता है कि अध्ययन से सम्बन्धित क्षेत्र, विभिन्न विशेषताओं का प्रतिनिधित्व करने वाली इकाइयों तथा एक ही श्रेणी की इकाइयों में से किस प्रकार सर्वोत्तम निदर्शन प्राप्त किया जा सकता है।

(v) सामाजिक सर्वेक्षण तथा अनुसंधान में केवल विषय से सम्बन्धित इकाइयों का अध्ययन करना ही पर्याप्त नहीं होता बल्कि प्रायः जो इकाईयाँ सर्वप्रथम ऊपर से अध्ययन की विरोधी अथवा निरर्थक प्रतीत होती हैं, उनके द्वारा भी कुछ महत्वपूर्ण तथ्यों का ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। ऐसी विरोधी अथवा निरर्थक इकाइयों का ज्ञान वैयक्तिक अध्ययन के अतिरिक्त अन्य विधि से प्राप्त नहीं किया जा सकता।

(vi) वैयक्तिक अध्ययन विधि के द्वारा चयनित सामाजिक इकाई से सम्बद्ध प्रलेखों का विस्तार से अध्ययन करते–करते अनुसंधानकर्ता के ज्ञान में ही वृद्धि नहीं होती बल्कि अध्ययन के प्रति उसकी रूचि में भी वृद्धि हो जाती है, जिससे उसे अध्ययन के विभिन्न पक्षों का विश्लेषण करने की स्वयं ही एक अन्र्तदृष्टि प्राप्त हो जाती है। विषय के प्रति अनुसंधानकर्ता में रूचि एवं ज्ञान बहुत बड़ी सीमा तक अध्ययन की सफलता का परिचायक होता है।

(vii) चूँकि सामाजिक तथ्य प्रकृति से गुणात्मक होते हैं, वैयक्तिक अध्ययन सामाजिक इकाई/इकाइयों से सम्बन्धी व्यक्तियों की रूचियों, मनोवृत्तियों, सामाजिक मूल्यों तथा विशेष परिस्थितियों में उनकी प्रतिक्रियाओं से भली–भाँति सम्बन्धित होने के बाद वैज्ञानिक हो जाता है। इस दृष्टि से, मनोवृत्तियों से सम्बन्धी गुणात्मक विशेषताओं का अध्ययन करने में वैयक्तिक अध्ययन विधि ही सबसे उपयोगी है।

(viii) वैयक्तिक अध्ययन एक ऐसी विधि है जिसके द्वारा चयनित इकाई के अतीत, वर्तमान तथा भविष्य को समझकर एवं उनका समन्वय करके निष्कर्ष प्राप्त करना सम्भव होता है।

(ix) वैयक्तिक अध्ययन विधि के माध्यम से प्रारम्भिक स्तर पर समस्या से सम्बद्ध इकाईयों की जानकारी प्राप्त कर लेने के पश्चात् किसी भी बड़े अध्ययन को प्रारम्भ करने के लिए

उसके समग्र का निर्धारण, निदर्शन की प्राप्ति तथा उपकरणों के निर्माण में सहायता मिलती है।

सारांश में, वैयक्तिक अध्ययन से प्राप्त निष्कर्ष उस समय अत्यधिक उपयोगी हो सकते हैं जब हम विशिष्ट क्षेत्रों में कुछ विशिष्ट स्रोत एवं प्रविधियों के प्रयोग से अध्ययन कार्य से प्राप्त परिणामों (निष्कर्षों) में एकीकरण करने का प्रयास करें। यह एकीकरण विभिन्न विधा विषयों के स्तर भी किया जाना चाहिए। आज सामाजिक अनुसंधान के क्षेत्र में प्रयोग किये जाने वाले सभी अभिगम अन्तर्विषयी है, और हम विभिन्न क्षेत्रों में उपलब्ध ज्ञान का अधिक से अधिक उपयोग करते हुए सामाजिक अनुसंधान की सभी विधियों, जिसमें वैयक्तिक अध्ययन विधि भी सम्मिलित है, को संचालित करना चाहते हैं। ऐसा इसलिए है, क्योंकि हम आधुनिक नागरिक औद्योगिक समाज की जटिलता तथा उसके परिप्रेक्ष्य में किसी भी घटना के घटित होने के लिए उत्तरदायी कारकों की बहुलता को स्वीकार करते हैं। अतः अन्तर्विषयी केन्द्रित वैयक्तिक अध्ययन सामाजिक वास्तविकता को उसकी अधिक पूर्णता में तथा अधिक वस्तुनिष्ठ ढंग से देखने का अवसर प्रदान कर सकते हैं।

8.7 वैयक्तिक अध्ययन की सीमाएँ

इसमें कोई संदेह नहीं है कि वैयक्तिक अध्ययन अपने गुणात्मक प्रकृति के कारण बहुत महत्वपूर्ण विधि प्रमाणित हुई है। परन्तु साथ–साथ यह भी स्वीकार किया गया है कि इसकी कुछ अंतर्निर्हित सीमाएँ हैं, जो इसे दोष रहित स्थापित नहीं कर पाती। ब्लूमर (1939) ने तो यहाँ तक कह दिया कि वैयक्तिक अध्ययन–विधि स्वतन्त्र रूप से अपर्याप्त और अवैज्ञानिक होने के साथ ही सिद्धान्तों के निर्माण में अव्यवहारिक सिद्ध हुआ है। ब्लूमर का यह कथन वैयक्तिक अध्ययन को केवल एक पूरक विधि के रूप में ही उपयोगी मानता है।

वैयक्तिक अध्ययन विधि के अन्तर्गत तैयार किये गये अभिलेखों द्वारा प्रत्यक्षीकरण, स्मृति, निर्णय, असामान्य घटनाओं इत्यादि पर आवश्यकता से अधिक बल दिये जाने की विशेष प्रवृत्ति के कारण अचेतन रूप से पूर्वाग्रह की त्रुटियाँ हो जाती हैं। आंकड़ों की प्रकृति भावानात्मक होने के कारण इनकी वस्तुनिष्ठ रूप से जाँच नहीं की जा सकती है। निदर्शन का प्रयोग न किये जाने के कारण प्रतिनिधित्वपूर्णता की कमी होती है तथा किये जाने वाले सामान्यीकरण विश्वसनीय नहीं होते क्योंकि ये कुछ विशेष प्रकार के व्यक्तियों से प्राप्त की गई सूचना पर आधारित होते हैं। इस विधि के अन्तर्गत कोई ऐसी तकनीक नहीं होती जिसके द्वारा वैयक्तिक दस्तावेजों की प्रमाणिकता की जाँच हो सके। अध्ययन के लिए जिन इकाइयों का चुनाव किया जाता है उनका प्रतिचयन किसी वैज्ञानिक प्रणाली द्वारा न करके सुविधापूर्वक रूप से कर लिया जाता है।

रीड बेन (1929:156.161) ने सामाजिक अनुसंधानों में वैयक्तिक अध्ययनों द्वारा सार्थक वैज्ञानिक सामग्री उपलब्ध कराने में सन्देह व्यक्त करते हुए कहा कि, अवैयक्तिकता, सार्वभौमिकता, गैरनैतिकता, गैर–व्यावहारिक तथा घटनाओं की पुनरावृत्ति की दृष्टि से

जीवन अभिलेख महत्वपूर्ण नहीं होते।' रीड बेन ने इसकी निम्नांकित सीमाओं/कमियों का उल्लेख किया है :–

1. जितना अधिक तारतम्य स्थापित होगा उतना ही ज्यादा सम्पूर्ण प्रक्रिया वस्तुगत होगी।

2. विषय स्व–न्याय प्रतिपादक हो जाता है न कि तथ्यात्मक।

3. उत्तरदाता की साहित्यिक चाह उसे बहका सकती है।

4. उत्तरदाता वास्तविकता की तुलना में आत्म–औचित्य पर अधिक बल दे सकता है।

5. अनुसंधानकर्ता स्वयं यह देखना चाहता है कि उसके उद्देश्यों की पूर्ति हो रही है अथवा नहीं।

6. जीवन दस्तावेज प्रदान करने वाले अधिकतर उत्तरदाता समस्याग्रस्त होते हैं।

7. अनुसंधानकर्ता प्रायः उत्तरदाता की सहायता करता है।

8. बहुसंख्यक चरों के समग्र में वैयक्तिक परिस्थितियाँ प्रायः अतुलनीय होती हैं।

9. जीवन दस्तावेजों के लिए वैज्ञानिक शब्दावली का विकास किया जाना होता है।

उपरोक्त सीमाओं के होते हुए भी, वैयक्तिक अध्ययन की कमियों पर अनुसंधानकर्ताओं को विशेष रूप से प्रशिक्षित कर विजय प्राप्त की जा सकती है। इस विशेष प्रशिक्षण का यह प्रमुख उत्तरदायित्व होना चाहिए कि, सुप्रशिक्षित व्यक्ति किसी–न–किसी स्रोत का प्रयोग करते हुए आंकड़ों को एकत्रित करें, उनकी जाँच करें, उन्हें प्रतिदर्शित एवं विश्लेषित करें। सुप्रशिक्षित व्यक्तियों से यह अपेक्षा की जा सकती है कि वे इस विशेष प्रशिक्षण के माध्यम से वैयक्तिक अध्ययन के अन्तर्गत अन्वेषण एवं अभिलेखन के क्रमबद्ध ढंगों को विकसित करते हुए उनका अधिक से अधिक उपयोग करने में सक्षम होंगे।

8.8 निष्कर्ष

सामाजिक अनुसंधान के उपकरण के रूप में वैयक्तिक अध्ययन विधि के सापेक्ष मूल्यों एवं सीमाओं पर विद्वानों द्वारा विविध प्रकार के विचार–विमर्श किये गये हैं। कुछ विद्वान इस विचार से सहमत नहीं है कि वैयक्तिक आंकड़ों और विशेष रूप से जीवन इतिहासों का परिमाणात्मक विश्लेषण नहीं किया जा सकता। यह सही है कि सांख्यिकीय कार्यरीतियों के बिना वैयक्तिक अध्ययन विधि ऊपर से अव्यावहारिक एवं अवैज्ञानिक प्रतीत होती है। परन्तु एक दिये गये समूह के प्रतिनिधि सदस्यों के रूप में चुने गए व्यक्तियों से सम्बन्धित आंकड़े समूह के अन्य व्यक्तियों पर लागू किये जा सकते हैं, बशर्ते वह व्यक्ति अपने जीवन के मूर्त अनुभवों को प्रदान करने में समर्थ हो। इस विधि में व्यावहारिकता प्रदान करने की दृष्टि से सांख्यिकीय परीक्षणों की अनुपस्थिति में अनुसंधानकर्ता अपने सुप्रशिक्षित अनुभव, अन्तर्दृष्टि एवं निर्णय पर निर्भर कर सकता है। किम्बाल यंग के शब्दों में, "अन्तिम रूप से इन आंकड़ों से प्रयोगकर्ता अपने परिणामों की तुलना अन्य प्रतिदर्शों के परिणामों से कर सकता

है और गतिशील सम्बन्धों को प्रदर्शित करने के लिए गुणात्मक शब्दों में चुने गए कारकों एवं परिस्थितियों के बीच सहपरिवर्तन अथवा सहसम्बन्ध को सूचित कर सकता है।''

8.9 अभ्यास प्रष्न

1. वैयक्तिक अध्ययन की व्याखया कीजिए

2. वैयक्तिक अध्ययन के अन्तर्गत प्रयुक्त चरण/कार्य–विधि का संक्षिप्त वर्णन कीजिए

8.10 संदर्भ ग्रंथ सूची :

- सुरेन्द्र सिंह, सामाजिक अनुसंधान, उत्तर प्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी, लखनऊ, 1975, प्रथम संस्करण।
- यंग, पी.वी., साईण्टिफिक सोशल सर्वेस एण्ड रिसर्च, इण्डियन रिप्रिन्ट्स, फोर्थ प्रिंटिंग, प्रेन्टिस हॉल ऑफ इण्डिया प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली, 1977
- गुडे एवं हाट, मैथड्स इन सोशल रिसर्च, मैकग्रा हिल बुक कं. न्यूयार्क, 1952.
- यिन आर.के., केस स्टडी रिसर्च : डिजाइन एण्ड मेथड, सेज पब्लिकेशन्स, न्यूवरी पार्क सी.ए., 1991

इकाई-9

निदर्शन : प्रकृति एवं पद्धतियाँ–निदर्शन का अर्थ, श्रेष्ठ निदर्शन के अनिवार्य लक्षण, निदर्शन की उपयोगिता एवं सीमाएँ

Sampling- Meaning & Nature

इकाई की रूपरेखा

9.0 **उद्देश्य**

9.1 **प्रस्तावना**

9.2 **जनगणना एवं निदर्शन**

9.3 **निदर्शन का अर्थ**

9.4 **श्रेष्ठ निदर्शन के अनिवार्य लक्षण**

9.5 **निदर्शन का चयन**

9.6 **निदर्शन की उपयोगिता**

9.7 **निदर्शन की सीमाएँ**

9.8 **निदर्शन की समस्याएँ**

9.9 **निदर्शन के आकार एवं विश्वसनीयता का निर्धारण**

9.10 **शब्दावली**

9.11 **अभ्यास प्रश्न**

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

9.0 उद्देश्य

सामाजिक अनुसन्धान (अन्वेषण अथवा शोध) के सोपानों में निदर्शन का महत्त्वपूर्ण स्थान है। निदर्शन को प्रतिदर्श, प्रतिचयन या नमूना भी कहते हैं। यह किसी समग्र का वह लघु रूप होता है जो उसका प्रतिनिधित्व करता है। केवल 'कुछ' को देखकर 'समग्र' के बारे में अनुमान लगा लेने की प्रविधि निदर्शन कहलाती है। इस इकाई का उद्देश्य अनुसन्धान के इस महत्त्वपूर्ण चरण से सम्बन्धित सम्पूर्ण जानकारी उपलब्ध कराना है। इसमें मुख्य रूप से जनगणना एवं निदर्शन में अन्तर, निदर्शन का अर्थ, एक श्रेष्ठ निदर्शन के अनिवार्य तत्त्व, निदर्शन का चयन, इसकी उपयोगिता एवं सीमाओं,

निदर्शन की समस्याओं तथा निदर्शन के आकार एवं विश्वसनीयता के निर्धारण का स्पष्टीकरण किया गया है।

9.1 प्रस्तावना

समाजशास्त्रीय अनुसन्धान की विषय–वस्तु व्यक्ति, परिवार, समूह, संस्थाएँ एवं संगठन इत्यादि होते हैं। अनुसन्धान समस्या का निर्माण कर लेने के पश्चात् अनुसन्धानकर्ता समस्या से सम्बन्धित उपकल्पनाओं का निर्माण करता है तथा फिर सामग्री (आँकड़े) एकत्रित करने की उपयुक्त प्रविधि (तकनीक) का निर्माण करके सामग्री संकलित करने का कार्य प्रारम्भ करता है। सामग्री संकलित करने से पहले उसे यह निर्णय लेना पड़ता है कि अध्ययन की इकाई क्या होगी? वह कितनी इकाइयों अथवा सूचनादाताओं का अध्ययन हेतु चयन करेगा? इस सन्दर्भ में उसके सामने दो विकल्प हो सकते हैं—प्रथम, समग्र (Universe) की सम्पूर्ण इकाइयों का अध्ययन करना तथा द्वितीय, समग्र का प्रतिनिधित्व करने वाले एक भाग का अध्ययन करना। प्रथम विकल्प द्वारा किया जाने वाला अध्ययन संगणना या जनगणना (Census) अध्ययन कहलाता है, जबकि द्वितीय विकल्प द्वारा किया जाने वाला अध्ययन निदर्शन (Sampling) कहलाता है। समग्र अथवा सम्पूर्ण इकाइयों में से प्रतिनिधि इकाइयों के चयन की प्रक्रिया को निदर्शन पद्धति या तकनीक (Sampling technique) कहते हैं।

9.2 जनगणना एवं निदर्शन

जनगणना का अभिप्राय समग्र या सम्पूर्णता की सभी इकाइयों का अध्ययन करना है। इस समग्रता की इकाई एक समूह, समुदाय (गाँव अथवा नगर), तहसील, जिला, राज्य अथवा सम्पूर्ण राष्ट्र हो सकता है। प्रत्येक देश में अपने नागरिकों के बारे में विभिन्न प्रकार की सूचनाएँ प्राप्त करने का प्रयास किया जाता है ताकि देश के विकास के लिए भावी योजनाएँ बनाई जा सकें तथा पिछले वर्षों में विविध क्षेत्रों में हुए परिवर्तनों का पता लगाया जा सके। 'जनगणना' शब्द का अभिप्राय ही 'जनता की गणना करना' है। 'जनगणना' अंग्रेजी के 'Census' शब्द का हिन्दी रूपान्तर है। इस शब्द का उत्पत्ति लैटिन भाषा के शब्द 'Censere' से मानी जाती है जिसका अर्थ 'अनुमान लगाना' (To assess) है। 'गणना' शब्द का अर्थ केवल 'गिनती करना' (अर्थात् संख्या का पता लगना) ही नहीं है अपितु जनसंख्या का लिंग, आयु, व्यवसाय, जाति, धर्म, वैवाहिक स्तर इत्यादि अनेक विशेषताओं के आधार पर विवरण प्राप्त करना है। वैसे तो जनसंख्या का अध्ययन करने के लिए एक पृथक् सामाजिक विज्ञान भी है जिसे जनसंख्या विज्ञान या जनांकिकी (Demography) के नाम से जाना जाता है; फिर भी समाजशास्त्र में भी जनसंख्या की विशेषताओं में काफी रुचि स्पष्ट देखी जा सकती है। समाजशास्त्र में जनसंख्या सम्बन्धी अध्ययनों की एक विशिष्ट शाखा है

जिसे सामाजिक जनांकिकी (Social Demography) के नाम से जाना जाता है। जनगणना करना एक अत्यन्त खर्चीला और परिश्रम का कार्य होता है। विभिन्न देश इस जटिल कार्य को इसलिए करवाते हैं ताकि इससे प्राप्त आँकड़ों का प्रयोग परिवार नियोजन, पिछड़े वर्गों की सामाजिक-आर्थिक दशा में सुधार, शिक्षा के प्रसार, जन्म-मृत्यु दर के अनुमान तथा जनसंख्या के विभिन्न आयु वर्गों से सम्बन्धित सामाजिक समस्याओं के समाधान हेतु किया जा सके तथा इस दिशा में महत्त्वपूर्ण कदम उठाए जा सकें।

भारत में जनगणना प्रत्येक दस वर्ष के पश्चात् सरकार द्वारा करवाई जाती है। भारत का जनगणना सर्वेक्षण विश्व में इस प्रकार का सबसे बड़ा सर्वेक्षण माना जाता है (हमसे अधिक जनसंख्या वाले देश चीन में नियमित रूप से जनगणना नहीं होती)। इसमें लाखों अन्वेषक तथा अत्यधिक संख्या में संगठनों के समावेश के अतिरिक्त भारत सरकार द्वारा बड़ी धनराशि व्यय की जाती है। अनेक विकसित देश भी अब पूर्ण जनगणना न कराकर जनसंख्या सम्बन्धी आँकड़ों के लिए निदर्शन सर्वेक्षण पर आश्रित हैं। निदर्शन सर्वेक्षण भी काफी सीमा पर सही पाए जाते हैं। भारत में सर्वप्रथम जनगणना 1872 ई० में करवाई गई थी। तब से प्रत्येक दस वर्ष बाद अर्थात् 1881, 1891, 1901, 1911, 1921, 1931, 1941, 1951, 1961, 1971, 1981, 1991 तथा 2001 ई० में जनगणनाएँ आयोजित की गई हैं। भारत में पिछली जनगणना 2001 ई० में हुई थी। 2011 ई० की जनगणना अभी से प्रारम्भ हो गई है। भारत जैसे विशाल देश में जनगणना की इकाई एक व्यक्ति न होकर परिवार को माना गया है। इसका प्रमुख कारण यह है कि भारतीय समाज की मूल इकाई व्यक्ति न होकर परिवार है तथा साथ ही परिवार के बाहर व्यक्ति के बारे में सही जानकारी प्राप्त नहीं की जा सकती।

जनगणना से देश की जनसंख्या के सभी महत्त्वपूर्ण पहलुओं के बारे में सरकार, समाज वैज्ञानिकों, नीति निर्धारकों व समाज सुधारकों को विस्तृत जानकारी प्राप्त होती है। यह एक प्रकार से उस देश की जानकारी हेतु एक दर्पण के समान है। जनगणना का तीन क्षेत्रों में विशेष महत्त्व है—सामाजिक क्षेत्र, आर्थिक क्षेत्र तथा राजनीतिक क्षेत्र। सामाजिक क्षेत्र में जनगणना से समाज के विभिन्न पक्षों (जैसे कुल जनसंख्या, लिंग अनुपात, आयु वितरण, वैवाहिक स्तर, ग्रामीण-नगरीय अनुपात, जन्म-दर, मृत्यु-दर, जनसंख्या में वृद्धि की दर, धार्मिक वितरण, शैक्षिक स्थिति, विभिन्न भाषायी समूहों इत्यादि) के बारे में विस्तृत जानकारी प्राप्त होती है। इससे एक ओर तो विभिन्न समूहों की सामाजिक समस्याओं (जैसे निम्न जातियों का शिक्षा की दृष्टि से पिछड़ापन) के बारे में पता चलता है, जबकि दूसरी ओर सरकार द्वारा उठाए गए कदमों एवं विभिन्न नीतियों के परिणामस्वरूप हुए सुधार का मूल्यांकन भी हो जाता है। 1991 तथा 2001 ई0 में हुई जनगणना से यह तथ्य हमारे सामने आया है कि भारत में स्त्री-पुरुष अनुपात कम होता जा रहा है। 1991 ई० में यह प्रति हजार

पुरुष पर केवल 927 स्त्रियाँ तथा 2001 ई0 में 933 था, जबकि 1901 ई० की जनगणना में यह संख्या 972 थी। निश्चित रूप से यह एक चिन्ता का विषय है तथा इस प्रकार की महत्त्वपूर्ण जानकारी भावी नीतियाँ बनाने में सहायक होती है।

आर्थिक क्षेत्र में जनगणना का अपना अलग महत्त्व है क्योंकि जनगणना से प्राप्त आँकड़ों का प्रयोग देश की आर्थिक प्रगति, खाद्य और नागरिक आपूर्ति, ऊर्जा, उद्योग, वाणिज्य, परिवहन, संचार, श्रम, आयोजन इत्यादि के लिए किया जाता है। जनगणना से ही हमें राष्ट्रीय आय, प्रति व्यक्ति आय, बेरोजगारी, शिक्षित बेरोजगारी, कृषि व औद्योगिक उत्पादन इत्यादि का पता चलता है। इन्हीं मूल आँकड़ों को सामने रखकर विकास कार्यक्रम बनाए जाते हैं। बिना आर्थिक नियोजन के विभिन्न वर्गों का सामाजिक-आर्थिक विकास सम्भव नहीं है।

राजनीतिक क्षेत्र में भी जनगणना द्वारा प्राप्त आँकड़ों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इनसे सरकार विभिन्न अल्पसंख्यकों की समस्याओं, अनुसूचित जातियों व जनजातियों के सामाजिक-आर्थिक विकास एवं विधायी संस्थाओं में उनके उचित प्रतिनिधित्व के बारे में निर्णय लेती है। निर्वाचन क्षेत्रों का निर्धारण तथा विधायी संस्थाओं में कुल स्थानों की संख्या का निर्धारण भी जनगणना द्वारा उपलब्ध जनसंख्यात्मक आँकड़ों के अनुरूप ही किया जाता है। प्रशासनिक दृष्टि से भी इसका अपना अलग महत्त्व है क्योंकि विभिन्न विकास योजनाओं का कार्यान्वयन तथा उपलब्ध सुविधाओं का वितरण उसी परिस्थिति में ठीक प्रकार से हो सकता है जबकि विभिन्न राज्यों, जिलों, तहसीलों, नगरों व गाँवों के बारे में मूल जनसंख्या सम्बन्धी आँकड़े हमारे पास हों।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि जनगणना का किसी भी देश के विकास में महत्त्वपूर्ण स्थान होता है। इससे सरकारी नीतियों की सफलता व असफलता का भी पता चलता है तथा साथ ही नियोजित सामाजिक परिवर्तन हेतु मार्गदर्शन प्राप्त होता है। इसीलिए विभिन्न देश जनगणना पर इतना अधिक धन व्यय करते हैं तथा यह सुनिश्चित करने का भी प्रयास करते हैं कि उपलब्ध सूचनाएँ, सामग्री तथा आँकड़े अधिक-से-अधिक विश्वसनीय हों।

सामान्यत: यदि सम्पूर्ण समग्र का अध्ययन करना सम्भव भी है, तो भी निदर्शन अध्ययनों को ही प्राथमिकता दी जाती है क्योंकि जब निदर्शन अध्ययन ही पर्याप्त हैं तो फिर समग्र का अध्ययन करने में समय एवं धन का दुरुपयोग क्यों किया जाए। निदर्शन सर्वेक्षण द्वारा प्राप्त परिणामों को समग्र (सम्पूर्ण जनसंख्या) पर लागू किया जा सकता है। परन्तु निदर्शन पर आधारित सर्वेक्षणों में एक बात का होना अनिवार्य है और वह है कि निदर्शन का चयन इस प्रकार से किया जाना चाहिए कि वह समग्र का प्रतिनिधित्व कर सके। यदि निदर्शन समग्र का प्रतिनिधि है तो समग्र का अध्ययन करना व्यर्थ में समय एवं धन का दुरुपयोग करना ही है। अत: सीमित समय, प्रयास तथा धन के

निवेश द्वारा निदर्शन सर्वेक्षण बड़ी जनसंख्याओं के अध्ययन को सम्भव बनाता है। यही कारण है कि सामाजिक विज्ञानों तथा अन्य क्षेत्रों में यह अत्यधिक लोकप्रिय पद्धति है।

जनगणना अध्ययन की अपेक्षा निदर्शन सर्वेक्षणों या अध्ययनों को प्राथमिकता देने के प्रमुख कारण निम्नलिखित हैं—

1. अनुसन्धान क्षेत्र की विशालता के कारण समग्र का अध्ययन करना सम्भव नहीं हो पाता। इसलिए निदर्शन के द्वारा समग्र का अध्ययन किया जाता है।

2.यदि समग्र का अध्ययन करने का निर्णय ले लिया जाए तो इस कार्य के लिए अनेक अनुसन्धानकर्ताओं की आवश्यकता पड़ेगी। अच्छे अनुसन्धानकर्ताओं की कमी के कारण भी निदर्शन को प्राथमिकता दी जाती है।

3.निदर्शन अध्ययनों में समय की बचत होती है।

4.निदर्शन अध्ययनों में धन की बचत होती है।

5.निदर्शन अध्ययन अधिक गहन हो सकते हैं।

वास्तव में, समाजशास्त्रीय अनुसन्धानकर्ता सम्पूर्ण समाज, समुदाय या समग्र का अध्ययन नहीं कर सकता। अत: समग्र के कुछ भागों तथा इकाइयों का चुनाव करना अनिवार्य हो जाता है तथा वैज्ञानिक अनुसन्धान में इस कार्य को सम्भव बनाने वाला चरण निदर्शन कहलाता है। निदर्शन प्रविधियों के प्रयोग द्वारा अनुसन्धानकर्ता समग्र की कुछ इकाइयों अथवा ऐसे अंशों का चुनाव करके, जोकि समग्र का प्रतिनिधित्व करते हैं, अपना समय एवं धन ही नहीं बचा लेता अपितु कम प्रयास में ही सम्पूर्ण अध्ययन भी हो जाता है।

9.3 निदर्शन का अर्थ

निदर्शन समग्र का एक छोटा भाग या अंश है जोकि समग्र का प्रतिनिधित्व करता है तथा जिसमें समग्र की मौलिक विशेषताएँ पाई जाती हैं। दैनिक जीवन में हम निदर्शन का प्रयोग करते हैं, जबकि हम चावल, गेहूँ या कोई अन्य वस्तु खरीदने बाजार जाते हैं तो पहले इनका नमूना देखते हैं। उस नमूने से ही हम पूरी बोरी के चावल, गेहूँ या अन्य वस्तु के स्वरूप (Quality) का अनुमान लगा लेते हैं। यह नमूना ही प्रतिदर्श या निदर्शन कहलाता है। अत: निदर्शन वह तकनीक है जिसके द्वारा केवल समग्र के एक अंश का निरीक्षण करके सम्पूर्ण समग्र के बारे में जाना जा सकता है। फेयरचाइल्ड (Fairchild) ने समाजशास्त्र के विश्वकोश में निदर्शन को इन शब्दों में परिभाषित किया है, ''निदर्शन (सांख्यिकीय) वह प्रक्रिया अथवा पद्धति है जिसके द्वारा एक विशिष्ट समग्र में से निश्चित संख्या में व्यक्तियों, विषयों अथवा निरीक्षणों को निकाला जाता है।'' उनके अनुसार एक निश्चित संख्या में व्यक्तियों, विषयों अथवा निरीक्षणों को एक समग्र विशेष में से निकालने की

प्रक्रिया अथवा पद्धति अथवा अध्ययन हेतु एक समग्र समूह में से उसके एक भाग का चयन करना निदर्शन तकनीक (Sampling technique) कहलाती है।

गुड एवं हैट (Goode and Hatt) के अनुसार, ''एक निदर्शन, जैसा कि इसके नाम से स्पष्ट है, किसी विस्तृत समूह का एक अपेक्षाकृत लघु प्रतिनिधि है।'' यंग (Young) के शब्दों में, ''एक सांख्यिकीय निदर्शन उस सम्पूर्ण समूह या योग का अति लघु चित्र है जिसमें से कि निदर्शन लिया गया है।'' यांग (Yang) के अनुसार, ''एक सांख्यिकीय निदर्शन सम्पूर्ण समूह का प्रतिनिधिक भाग है। यह समूह 'जनसंख्या', 'समग्र' अथवा 'पूर्ति-स्रोत' के नाम से जाना जाता है।''

अत: स्पष्ट है कि निदर्शन किसी विशाल समूह, समग्र या योग का एक अंश है जोकि समग्र का प्रतिनिधि है अर्थात् अंश की भी वही विशेषताएँ हैं जोकि सम्पूर्ण समूह या समग्र की हैं। अध्ययन हेतु सम्पूर्ण इकाइयों में से कुछ प्रतिनिधि इकाइयों के चयन करने की तकनीक को निदर्शन तकनीक कहा जाता है। इस सन्दर्भ में बोगार्डस (Bogardus) ने लिखा है कि, ''निदर्शन तकनीक एक पूर्व-निर्धारित योजना के अनुसार इकाइयों के एक समूह में से एक निश्चित प्रतिशत का चयन करना है।'' निदर्शन तकनीक केवल वैज्ञानिक अनुसन्धान में ही नहीं, अपितु दैनिक जीवन में भी बहुधा प्रयोग में लाई जाती है। टिप्पेट (Tippett) ने लिखा है कि, ''वृहत् समूह में से एक छोटा भाग लेने की प्रथा सामान्यत: भली प्रकार समझी एवं विस्तृत रूप में प्रयोग की जाती है। गृहस्वामिनी दुकान पर पनीर खरीदने से पहले उसका एक टुकड़ा एक नमूने के रूप में लेती है तथा एक रुई धुनने वाला व्यक्ति केवल रुई के एक टुकड़े को देखकर ही उस रुई की पूरी गाँठ को खरीद लेता है।'' इसी भाँति, स्नेडेकोर एवं कोचरन (Snedecor and Cochran) ने लिखा है कि, ''केवल कुछ पौंड कोयले की जाँच के आधार पर पूरी गाड़ी कोयला या तो स्वीकृत कर लिया जाता है या अस्वीकृत कर दिया जाता है। केवल एक बूँद रक्त की जाँच करके डॉक्टर किसी बीमार व्यक्ति के रक्त के बारे में अनुमान लगा लेता है। निदर्शन ऐसे साधन हैं जिनसे केवल कुछ इकाइयों का निरीक्षण करके विशाल इकाइयों का अनुमान लगाया जा सकता है।''

9.4 श्रेष्ठ निदर्शन के अनिवार्य लक्षण

सामग्री, आँकड़ों या तथ्यों का संकलन एवं निष्कर्ष काफी सीमा तक निदर्शन पर आधारित होता है। अत: एक श्रेष्ठ या अच्छा निदर्शन का होना अनुसन्धान के लिए अनिवार्य है। पी० वी० यंग (P. V.Young) का कहना है कि सावधानी से चयनित अपेक्षाकृत छोटा निदर्शन त्रुटिपूर्ण बड़े निदर्शनों से अधिक विश्वसनीय है। एक श्रेष्ठ निदर्शन की निम्नलिखित प्रमुख विशेषताएँ हैं—

1.समग्र का प्रतिनिधित्व–एक श्रेष्ठ निदर्शन उसे कहा जाता है जोकि समग्र का सही प्रतिनिधित्व करता है। यदि अध्ययन क्षेत्र में पाई जाने वाली भिन्नताओं एवं समानताओं को सामने रखकर

उपयुक्त तकनीक द्वारा निदर्शन किया जाता है तो वह अधिक प्रतिनिधित्व वाला हो सकता है। लुण्डबर्ग (Lundberg) के मतानुसार निदर्शन का प्रतिनिधित्वपूर्ण होना या न होना दो बातों पर निर्भर करता है—प्रथम, अध्ययन सामग्री में पाई जाने वाली समरूपता तथा द्वितीय, निदर्शन के चयन हेतु अपनाई गई पद्धति। यदि अध्ययन सामग्री में समरूपता का अभाव पाया जाता है तो सभी वर्गों या समूहों को ध्यान में रखकर निदर्शन करना अनिवार्य है। ऐसी परिस्थिति में निदर्शन की तकनीक भी उपयुक्त होनी चाहिए।

2.पर्याप्त आकार–निदर्शन का आकार कितना होना चाहिए यद्यपि इसके बारे में कोई विशेष नियम नहीं है, फिर भी समस्या एवं समग्र की प्रकृति के आधार पर इसका अनुपात निश्चित किया जाना चाहिए। यह न ही तो अत्यधिक कम होना चाहिए और न ही अत्यधिक ज्यादा। उदाहरणार्थ, यदि किसी कॉलेज के 5,000 छात्रों में से केवल 5 छात्रों का चयन कर लिया जाए तो यह आशा नहीं की जा सकती कि चयनित 5 छात्र सभी 5,000 छात्रों का प्रतिनिधित्व करने वाले ही होंगे। इसलिए आकार कम-से-कम इतना होना चाहिए कि वह सभी छात्रों का प्रतिनिधित्व करने वाला हो। यह आकार 5 से 10 प्रतिशत तक हो सकता है। पी० वी० यंग (P. V. Young) ने इस सन्दर्भ में कहा है कि, ''निदर्शन का आकार उसके प्रतिनिधित्वता की आवश्यक गारण्टी नहीं है। सापेक्षिक रूप में उपयुक्त तरीके से चुना गया छोटा निदर्शन अनुपयुक्त तरीके से चुने गए बड़े निदर्शन की अपेक्षा अधिक विश्वसनीय हो सकता है।''

3.निष्पक्षता–एक श्रेष्ठ निदर्शन का पक्षपातरहित होना अनिवार्य है ताकि यह सम्पूर्ण समग्र का सही प्रकार से प्रतिनिधित्व कर सके। अनुसन्धानकर्ता को निदर्शन करते समय अपनी सुविधा, रुचि या स्वेच्छा पर ध्यान नहीं देना चाहिए अपितु निष्पक्ष रूप से इकाइयों का चयन करना चाहिए। अनुसन्धानकर्ता का किसी भी प्रकार का पूर्वग्रह निदर्शन की निष्पक्षता को प्रभावित कर सकता है। निष्पक्ष निदर्शन के चयन के लिए सम्भावित निदर्शन पद्धतियाँ अधिक उपयोगी होती हैं।

4.तर्क पर आधारित–निष्पक्ष एवं विश्वसनीय होने के साथ-साथ निदर्शन का तर्क पर आधारित होना अनिवार्य है। वास्तव में, तर्कहीन दृष्टि से किया गया निदर्शन न ही तो निष्पक्ष हो सकता है और न ही प्रतिनिधित्वपूर्ण। यदि अनुसन्धानकर्ता को अध्ययनरत जनसंख्या की विशेषताओं के बारे में जानकारी है तो उसे निदर्शन हेतु अपने इस ज्ञान का प्रयोग करना चाहिए। ऐसा न होने की स्थिति में वह उन लोगों की राय ले सकता है जिन्हें सम्बन्धित जनसंख्या की जानकारी है। निदर्शन की अनेक पद्धतियाँ (तकनीक) हैं तथा अनुसन्धान समस्या की प्रकृति के आधार पर सबसे उपयुक्त पद्धति का चुनाव करना अत्यन्त अनिवार्य है।

5.साधनों के अनुरूप–एक श्रेष्ठ निदर्शन का साधनों के अनुरूप होना भी अनिवार्य है। निदर्शन का चयन साधनों का ध्यान रखकर किया जाना चाहिए ताकि यह प्रतिनिधि होने के साथ-साथ सरलता

से किया भी जा सके। यदि साधन सीमित हैं और निदर्शन बहुत बड़ा कर लिया जाता है तो निर्धारित समयावधि में अध्ययन ही सम्भव नहीं है। इसीलिए यह कहा जाता है कि एक उच्च स्तरीय निदर्शन सदैव व्यावहारिक अनुभवों एवं साधनों के अनुरूप होना चाहिए।

6.उद्देश्य के अनुकूल–एक श्रेष्ठ निदर्शन का अनुसन्धान के उद्देश्यों के अनुरूप होना भी अनिवार्य है। निदर्शन उसी जनसमूह से किया जाना चाहिए जिसका कि हम अध्ययन कर रहे हैं। उदाहरणार्थ, यदि हम इण्टरमीडिएट के छात्रों में टेलीविजन पर दिखाए जाने वाले धारावाहिकों के प्रभाव का अध्ययन करना चाहते हैं, तो हमें केवल उन्हीं छात्रों का चयन करना होगा जिनके पास टेलीविजन हैं तथा जो नियमित रूप से धारावाहिक देखते हैं। यदि हम इस बात का ध्यान नहीं रखेंगे तो निदर्शन में ऐसे छात्र भी चयनित हो जाएँगे जिनके पास न तो टेलीविजन है और न ही वे धारावाहिक देखते हैं अथवा टेलीविजन तो है परन्तु धारावाहिक देखना उन्हें पसन्द नहीं है।

9.5 निदर्शन का चयन

निदर्शन की कार्यप्रणाली यद्यपि एक सरल प्रक्रिया लगती है परन्तु व्यवहार में यह एक कठिन कार्य है। अनुसन्धान की समस्या का निरूपण तथा उपकल्पनाओं का निर्माण कर लेने के पश्चात् तथा उपकल्पनाओं से सम्बन्धित महत्त्वपूर्ण चरों को चुन लेने के पश्चात् अनुसन्धानकर्ता के सामने निदर्शन की समस्या आती है। इसके लिए पहले यह निश्चित कर लेना अनिवार्य है कि उसे किस जनसमूह या समग्र का अध्ययन करना है तथा समग्र के बारे में थोड़ी-बहुत प्रारम्भिक जानकारी होना अनिवार्य है। समग्र के निर्धारण के पश्चात् उसे यह निणय लेना पड़ता है कि अध्ययन कि इकाई क्या होगी। इकाई गाँव, नगर, सम्पूर्ण समूह, परिवार या अन्य कोई समिति अथवा व्यक्ति हो सकती है। इकाइयों का चुनाव स्पष्ट, निश्चित एवं विषय के अनुरूप किया जाना चाहिए। इकाइयाँ तय कर लेने के पश्चात् स्रोत सूची का होना अनिवार्य है जैसे कि मतदाता सूची, टेलीफोन डायरेक्ट्री, अध्यापक सूचियाँ या किसी अन्य प्रकार की सूची जिसमें से इकाइयों का चयन किया जा सके। इसके पश्चात् अनुसन्धानकर्ता को निदर्शन के आकार (अर्थात् यह समग्र का कितना अंश होना चाहिए) और निदर्शन तकनीक (अर्थात् किस पद्धति द्वारा इकाइयों का चयन किया जाना है) के बारे में निर्णय लेना पड़ता है। एक प्रतिनिधित्व निदर्शन के लिए आकार का पर्याप्त होना और चयन की उपयुक्त पद्धति का अपनाया जाना अनिवार्य है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि निदर्शन के चयन हेतु कुछ निर्धारित चरण हैं जिनमें से प्रमुख निम्न प्रकार हैं—

1.समग्र को निर्धारित करना–निदर्शन के चयन का प्रथम चरण उन सभी इकाइयों को निर्धारित करना है जो समग्र का निर्माण करती हैं। यदि अध्ययन किसी विशिष्ट समुदाय तक सीमित है तो समग्र का निर्धारण सरल है अर्थात् उस समुदाय में रहने वाले सभी समग्र का निर्माण करते हैं।

उदाहरणार्थ, किसी गाँव, विद्यालय, महाविद्यालय, मोहल्ले के अध्ययन में समग्र का निर्धारण सरलता से किया जा सकता है। इसके विपरीत, यदि समग्र अनिश्चित है तो इसकी समस्त इकाइयों का निर्धारण करना कठिन होता है। उदाहरणार्थ, यदि हमें किसी नगर में नियमित रूप से सिनेमा देखने वालों अथवा मादक द्रव्य व्यसन करने वालों का अध्ययन करना है तो सम्पूर्ण इकाइयों का निर्धारण करना कठिन होता है। कोई भी यह वास्तविक अनुमान नहीं लगा सकता है कि कितने लोग हैं जो नियमित रूप से सिनेमा देखते हैं अथवा द्रव्य व्यसन के आदी हैं। प्रथम प्रकार के समग्र को वास्तविक समग्र तथा द्वितीय प्रकार के समग्र को काल्पनिक समग्र भी कहा जाता है। काल्पनिक समग्र में निदर्शन का चयन काल्पनिक रूप में ही पर्याप्त संख्या में होना अनिवार्य है।

2. निदर्शन की इकाई को निर्धारित करना–समग्र को निर्धारित करने के पश्चात् दूसरा चरण निदर्शन की इकाई का निर्धारण करना है। इस चरण में हमें यह निश्चित करना होता है कि वे कौन-सी इकाइयाँ ऐसी हो सकती हैं जिनको समग्र का प्रतिनिधि कहा जा सकता है। निदर्शन की इकाई व्यक्ति होगा या कोई परिवार, मोहल्ला, क्रीडा-समूह, स्कूल, व्यावसायिक समूह, चर्च अथवा क्लब इत्यादि, इसका निर्धारण इस चरण में किया जाता है। इस चरण में यह बात ध्यान रखने योग्य है कि अध्ययन की इकाई समस्या की प्रकृति के अनुकूल होनी चाहिए। उदाहरणार्थ, यदि संयुक्त परिवार का अध्ययन किया जा रहा है तो अध्ययन की इकाई संयुक्त परिवार ही होंगे। यदि किसी विद्यालय के छात्राओं का अध्ययन किया जा रहा है तो अध्ययन की इकाई वही छात्राएँ होंगी जो किसी निर्धारित स्तर के विद्यालय में पढ़ रही हैं। इकाई के निर्धारण में किसी प्रकार का भ्रम नहीं होना चाहिए तथा साथ ही ऐसी इकाई का चयन किया जाना चाहिए जिसके साथ सुविधाजनक रूप में सम्पर्क स्थापित किया जा सके।

3.इकाइयों के बारे में जानकारी प्राप्त करना–निदर्शन के चयन का तीसरा चरण इकाइयों के बारे में सम्पूर्ण जानकारी प्राप्त करना है। यदि सम्पूर्ण इकाइयों की कोई सूची उपलब्ध है तो इस चरण में उसे प्राप्त करने का प्रयास किया जाता है। इकाइयों की सूची को बहुधा 'साधन-सूची' या 'स्रोत-सूची' भी कहा जाता है। उदाहरणार्थ, यदि हमारे अध्ययन की इकाई मतदाता है तो मतदाता सूची स्रोत-सूची हो सकती है। यदि अध्ययन की इकाई टेलीफोन उपभोक्ता है तो स्रोत-सूची टेलीफोन डाइरेक्टरी हो सकती है। इसी भाँति, यदि अध्ययन की इकाई किसी विद्यालय के छात्र हैं तो उन छात्रों की कक्षा-दार सूची स्रोत-सूची हो सकती है। यह तथ्य अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है कि जिस भी स्रोत-सूची का उपयोग किया जाए उसमें सम्पूर्ण इकाइयों का विवरण होना चाहिए। सूची इतनी पुरानी भी नहीं होनी चाहिए कि उसमें से जिन इकाइयों का चयन किया जाए वे उपलब्ध ही न हों। यदि इस प्रकार की विश्वसनीय सूची उपलब्ध हो पाती है तो इकाइयों के बारे में जानकारी प्राप्त

करना तथा उपयुक्त निदर्शन करना अपेक्षाकृत सरल होता है। किसी विश्वसनीय सूची के अभाव में इकाइयों की जानकारी होना कठिन कार्य बन जाता है।

4.निदर्शन के आकार को निर्धारित करना–इकाइयों के बारे में जानकारी प्राप्त कर लेने के पश्चात् निदर्शन के चयन का चौथा चरण निदर्शन के आकार का निर्धारण करना है। निदर्शन का आकार निर्धारित करने का कोई सांख्यिकीय मापदण्ड नहीं है। फिर भी, इसका आकार न तो अत्यधिक बड़ा होना चाहिए और न ही अत्यधिक कम होना चाहिए। निदर्शन का कितना आकार विश्वसनीय एवं प्रामाणिक हो सकता है, इसी आधार पर निदर्शन किया जाना चाहिए। निदर्शन का आकार समग्र की प्रकृति, अनुसन्धान की प्रकृति, इकाइयों की प्रकृति, अध्ययन पद्धति एवं तकनीक, निदर्शन पद्धति, उपलब्ध साधन इत्यादि को सामने रखकर निर्धारित किया जाना आवश्यक है।

5.निदर्शन की उपयुक्त पद्धति का चयन करना–निदर्शन हेतु अनेक पद्धतियों का प्रयोग किया जाता है। इस चरण तक पहुँचते-पहुँचते समग्र की प्रकृति, निदर्शन की इकाइयों की प्रकृति, इकाइयों की सूची की उपलब्धता तथा निदर्शन का आकार स्पष्ट हो जाता है। इसी को सामने रखकर यह निर्णय लिया जाता है कि कौन-सी ऐसी उपयुक्त निदर्शन पद्धति होगी जो सही अर्थ में इकाइयों का प्रतिनिधित्वपूर्ण चयन करने में सहायक है। उसी पद्धति को इकाइयों के चयन हेतु अपनाया जाता है।

6.निदर्शन का चयन करना–यह निदर्शन के चयन का अन्तिम चरण है। उपयुक्त निदर्शन पद्धति द्वारा निर्धारित संख्या में इकाइयों का चयन किया जाता है। यही चयनित इकाइयाँ निदर्शन कहलाती हैं तथा इन्हीं को अध्ययन की इकाइयाँ कहा जाता है। उपयुक्त निदर्शन पद्धति द्वारा विश्वसनीय, प्रामाणित तथा प्रतिनिधित्वपूर्ण निदर्शन का चयन करना ही सम्पूर्ण निदर्शन प्रक्रिया का वास्तविक उद्देश्य है।

6.6 निदर्शन की उपयोगिता

सामाजिक अनुसन्धान में निदर्शन एक महत्त्वपूर्ण चरण है। इसकी निरन्तर बढ़ती हुई लोकप्रियता इसकी उपयोगिता की द्योतक है। आधुनिक विशाल एवं जटिल समुदायों में जनगणना पद्धति द्वारा अध्ययन करना असुविधाजनक होता है। इसीलिए निदर्शन का प्रयोग अधिक होने लगा है। इसकी उपयोगिता को अग्र प्रकार से स्पष्ट किया जा सकता है—

1.समय की बचत–निदर्शन के प्रयोग द्वारा अनुसन्धानकर्ता के समय की बचत होती है क्योंकि इसमें सीमित इकाइयों का अध्ययन किया जाता है। जो अनुसन्धान व्यक्तिगत प्रकृति के होते हैं उन्हें एक निश्चित अध्ययन में पूरा करना आवश्यक होता है। यह तभी सम्भव है जबकि निदर्शन द्वारा इकाइयों की संख्या सीमित रखी जाए।

2.धन की बचत–निदर्शन में धन की बचत होती है। जनगणना केवल सरकार ही करा सकती है क्योंकि उसके पास अपार साधन होते हैं। व्यक्तिगत आधार पर आयोजित अनुसन्धानों में यदि सभी

इकाइयों का अध्ययन करना पड़े तो उसके लिए न केवल समय अधिक लगेगा, अपितु धन भी अधिक खर्च करना पड़ेगा। कम-से-कम खर्च करके अधिक-से-अधिक विश्वसनीय सामग्री को संकलित करना केवल निदर्शन द्वारा ही सम्भव है।

3.कम श्रम एवं शक्ति–निदर्शन में समय व धन कम लगने के कारण जनगणना पद्धति की अपेक्षा श्रम एवं शक्ति भी कम लगती है। इकाइयाँ कम होने के कारण सामग्री या आँकड़ों का संकलन केवल एक अनुसन्धानकर्ता अथवा बहुत कम प्रशिक्षित अनुसन्धानकर्ता कर सकते हैं।

4.विस्तृत एवं गहन अध्ययन की सम्भावना–निदर्शन के द्वारा विस्तृत एवं गहन अध्ययन सम्भव हो जाता है। सीमित इकाइयों के अध्ययन के कारण अनुसन्धानकर्ता विस्तृत क्षेत्र में अध्ययन कर सकता है और साथ ही सूचनाओं के संकलन में गहनता ला सकता है। यदि सूचनादाता बहुत बड़े क्षेत्र में बिखरे हुए हैं तथा हमें उन सभी से सूचना संकलित करनी है तो यह काफी असुविधाजनक हो सकती है। निदर्शन हमें इस असुविधा से बचाकर विस्तृत अध्ययन की सुविधा प्रदान करता है।

5.निष्कर्षों की परिशुद्धता–यदि निदर्शन समग्र का प्रतिनिधित्व करता है तो इससे न केवल विश्वसनीय आँकड़े एकत्रित किए जा सकते हैं, अपितु यथार्थ निष्कर्ष भी निकाले जा सकते हैं। यदि निदर्शन का चयन ठीक प्रकार से किया गया है तो इसके आधार पर निकाले जाने वाले निष्कर्ष जनगणना पद्धति की सहायता से किए गए अध्ययनों के निष्कर्षों से भी अधिक यथार्थ हो सकते हैं। अमेरिका एवं पश्चिमी समाजों में चुनाव से पूर्व होने वाले निदर्शन सर्वेक्षण के परिणाम चुनाव के परिणामों से काफी सीमा तक मिलते-जुलते होते हैं।

6.वैज्ञानिकता–सही आकार एवं उपयुक्त पद्धति द्वारा चयन किए गए निदर्शन में वैज्ञानिकता का समावेश होता है। इसीलिए निदर्शन के निष्कर्षों को सम्पूर्ण इकाइयों पर लागू किया जा सकता है।

7.प्रशासनिक सुविधा–निदर्शन में प्रशासनिक कठिनाइयाँ भी कम उठानी पड़ती हैं। इसका प्रमुख कारण यह है कि एक तो इकाइयों की संख्या सीमित होती है जिसके लिए कम संख्या में कार्यकर्ताओं को नियुक्त करना पड़ता है तो दूसरा कम लोगों से सूचना एकत्रित करने में कम परेशानी होती है। अपनी सुविधानुसार सभी सूचनादाताओं से सूचना एकत्रित करना कठिन होता है। इसलिए निदर्शन का छोटा आकार सूचनादाताओं की सुविधाओं को भी ध्यान में रखने में उपयोगी सिद्ध होता है।

निदर्शन की उपयोगिता को स्पष्ट करते हुए गुड एवं हैट (Goode and Hatt) ने लिखा है कि, ''इस प्रकार, निदर्शन का प्रयोग किसी वैज्ञानिक कार्यकर्ता के समय की बचत कर उसके कार्य को अधिक वैज्ञानिक स्वरूप प्रदान करता है। यह संकलित विशाल सामग्री के विश्लेषण हेतु किसी एक दृष्टिकोण के आधार पर अधिक घण्टे लगाने की अपेक्षा उस सामग्री के एक भाग को विभिन्न दृष्टिकोणों से देखने में सहायता प्रदान करता है अथवा अन्य शब्दों में कुछ मामलों का अधिक गहन

अध्ययन करने का अवसर प्रदान करता है।'' अत: स्पष्ट है कि यदि निदर्शन का चयन सावधानीपूर्वक किया गया है तो यह समग्र के बारे में ऐसे निष्कर्ष निकालने में सहायता प्रदान करता है जो बिल्कुल सत्य होते हैं। इसीलिए यह भी कहा जाता है कि निदर्शन त्रुटि के गणितीय सिद्धान्त पर आधारित होने के कारण निदर्शन में सूक्ष्मता तथा पूर्ण शुद्धता की धारणा प्रारम्भ से प्रमुख होती है।

9.7 निदर्शन की सीमाएँ

यद्यपि निदर्शन सामाजिक अनुसन्धान का एक महत्त्वपूर्ण चरण है तथा इसके बिना अनुसन्धान की कल्पना करना सम्भव नहीं है, फिर भी इसकी अपनी कुछ सीमाएँ हैं जिनके कारण इसका प्रयोग अत्यन्त सावधानीपूर्वक करना पड़ता है। निदर्शन की प्रमुख सीमाएँ निम्न प्रकार हैं—

1.पक्षपात एवं अभिनति की अधिक सम्भावना–निदर्शन के चयन में पक्षपात एवं अभिनति की सम्भावना अधिक होती है। न चाहते हुए भी किसी–न–किसी रूप में निदर्शन में पक्षपात एवं अभिनति का समावेश हो जाता है। इसका कारण अनुसन्धानकर्ता के अपने पूर्वाग्रह, मूल्य अथवा प्राथमिकताएँ होती हैं। इन्हें निदर्शन के समय अपने से अलग करना एक कठिन कार्य है।

2.विशेष ज्ञान की आवश्यकता– किसी भी जनसंख्या में से उसके प्रतिनिधित्वपूर्ण निदर्शन का चयन जितना सरल लगता है वह उतना ही कठिन होता है। वस्तुत: निदर्शन के लिए विशेष ज्ञान, सूझ–बूझ, अनुभव तथा अन्तर्दृष्टि की आवश्यकता होती है। यदि यह सभी गुण यदि अनुसन्धानकर्ता में नहीं है तो उससे प्रतिनिधित्वपूर्ण निदर्शन के चयन की आशा करना निरर्थक है। अनुसन्धानकर्ता के लिए ऐसे विशेषज्ञ ढूँढना भी कठिन कार्य है जो जनसंख्या से भली–भाँति परिचित हों।

3.प्रतिनिधित्वपूर्ण निदर्शन के चयन में कठिनाई–यदि निदर्शन समग्र का प्रतिनिधि नहीं है, तो निष्कर्ष भी कम शुद्ध होते हैं। साथ ही, जनसंख्या के लक्षणों का ज्ञान न होने की स्थिति में निदर्शन के चयन हेतु विशेषज्ञों की आवश्यकता होती है। जिन परिस्थितियों में जनसंख्या में अत्यधिक विषमता पाई जाती है उनमें प्रतिनिधित्वपूर्ण निदर्शन का चयन करना एक चुनौती होता है। इसके लिए जनसंख्या का ज्ञान होना आवश्यक है ताकि सभी वर्गों एवं समूहों को सम्पूर्ण प्रतिनिधित्व मिल सके। सामान्यत: इस ज्ञान के अभाव में निदर्शन प्रतिनिधित्वपूर्ण नहीं होता।

4.उच्चतम परिशुद्धता वाले अध्ययनों में अनुपयोगी–उच्चतम परिशुद्धता वाले अध्ययनों में निदर्शन उपयोगी नहीं है। इसका प्रमुख कारण निदर्शन के चयन में पक्षपात एवं अभिनति होना है। यह सही है कि अमेरिका, पश्चिमी यूरोप तथा कई बार भारत में भी चुनाव–पूर्व होने वाले निदर्शन सर्वेक्षण के निष्कर्ष चुनाव के पश्चात् घोषित परिणामों से मिलते–जुलते होते हैं, फिर भी बहुधा यह निष्कर्ष वास्तविक परिणामों से मेल नहीं खाते। इसीलिए जनता इससे भ्रमित हो सकती है। परिशुद्ध न होने के कारण ही भारत में चुनाव–पूर्व ऐसे निदर्शन सर्वेक्षण न करने की बार–बार माँग की जाती है।

5.निदर्शन पद्धति की असम्भवता–कुछ परिस्थितियों में निदर्शन को अपनाना प्राय: असम्भव होता है। यदि कोई कम इकाइयों का गहन अध्ययन करना चाहता है तो ऐसे अध्ययनों में निदर्शन सम्भव नहीं है। ऐसी स्थिति में उसे सभी इकाइयों को अपने अध्ययन में सम्मिलित करना पड़ता है। इसी भाँति, अत्यधिक विषमता वाली जनसंख्या के अध्ययन में निदर्शन द्वारा किया गया अध्ययन यथार्थ निष्कर्ष निकालने में सहायक नहीं होता है।

6.भ्रामक परिणामों की आशंका–निदर्शन के चयन में विशेष सावधानी की आवश्यकता होती है। यदि यह सावधानी न रखी जाए तो निदर्शन से प्राप्त निष्कर्ष भ्रमक भी हो सकते हैं। इसीलिए निदर्शन पर आधारित निष्कर्षों पर कभी भी एकाएक पूर्ण विश्वास नहीं किया जाता। कई बार तो निदर्शन द्वारा निकाले गए परिणाम वास्तविक स्थिति के बिल्कुल विपरीत होते हैं।

7.निदर्शन की इकाइयों की उपलब्धता सम्बन्धी समस्या–किसी भी अनुसन्धान में निदर्शन द्वारा जिन इकाइयों का चयन किया जाता है उन्हीं इकाइयों से सामग्री संकलित करनी पड़ती है। कई बार ऐसा होता है कि उन इकाइयों के साथ सम्पर्क करने में अनेक समस्याएँ सामने आती हैं। उदाहरणार्थ, निवास स्थान बदल लेने, परदा प्रथा के प्रचलन, सूचनादाता की अत्यधिक उच्च सामाजिक एवं राजनीतिक स्थिति, अनेक सूचनादाताओं का अनुसन्धान कार्य में असहयोग आदि से उन्हीं इकाइयों पर कायम रहना कठिन हो जाता है जिनका चयन निदर्शन द्वारा किया गया है। यदि इन इकाइयों के स्थान पर दूसरी इकाइयों का चयन किया जाता है तो निदर्शन पूरी तरह से प्रभावित हो सकता है।

निदर्शन की सीमाओं को सामने रखते हुए अनेक विद्वानों ने यह मत प्रस्तुत किया है कि निदर्शन औषधियों (दवाइयों) की भाँति होते हैं। यदि उनका चयन असावधानी से अथवा उनके प्रभावों के पर्याप्त ज्ञान के बिना किया जाता है, तो वे हानिकारक भी हो सकती हैं। निदर्शन की उपर्युक्त सीमाओं से यह भी स्पष्ट है कि यदि निदर्शन के चयन में सावधानी रखी जाए तो एक विश्वसनीय निदर्शन का चयन इसकी सीमाओं को कम कर सकता है। यदि अध्ययन-क्षेत्र अत्यधिक विस्तृत है, प्रशिक्षित अनुसन्धानकर्ताओं की कमी है, समय एवं धन का अभाव है तथा निदर्शन से ही हमारा काम चल सकता है तो निदर्शन को अध्ययन का आधार बनाना सर्वाधिक उचित है। उपर्युक्त सीमाएँ किसी भी रूप में निदर्शन के महत्त्व को अस्वीकार नहीं करती हैं।

9.8 निदर्शन की समस्याएँ

निदर्शन सामाजिक अनुसन्धान का एक प्रमुख चरण है। अनुसन्धान के निष्कर्ष काफी सीमा तक निदर्शन पर ही निर्भर करते हैं। यदि निदर्शन ही ठीक प्रकार से नहीं किया गया है तो निष्कर्ष भी सही नहीं होंगे। निदर्शन का चयन करते समय अनेक प्रकार की समस्याओं का सामना करना पड़ता है। इनमें से प्रमुख इस प्रकार हैं—प्रथम, कई बार समग्र पूरी तरह से स्पष्ट नहीं होता है। हमें यह

पता नहीं होता है कि इसमें किस सीमा तक सजातीयता अथवा विजातीयता पाई जाती है। इसके परिणामस्वरूप हम निदर्शन के आकार के बारे में सही निर्णय नहीं ले पाते हैं; द्वितीय, निदर्शन की कौन-सी विधि प्रयोग में लाई जाए, यह भी निदर्शन की एक प्रमुख समस्या है। दैव निदर्शन का प्रयोग केवल उन्हीं परिस्थितियों में किया जाता है जहाँ समग्र की इकाइयाँ स्पष्ट हैं तथा उन्हें किसी-न-किसी आधार पर क्रमानुसार सूचीबद्ध किया जा सकता है। ऐसा प्राय: सम्भव नहीं होता है; तृतीय, निदर्शन की एक अन्य समस्या इसके समग्र को प्रतिनिधित्व करने की है। यदि निदर्शन समग्र का प्रतिनिधित्व नहीं करता है तो निष्कर्ष भ्रामक हो सकते हैं। इसलिए इसका समग्र का प्रतिनिधित्व करना अनिवार्य है; चतुर्थ, निदर्शन की अन्तिम समस्या इसकी विश्वसनीयता से सम्बन्धित है। यदि यह विश्वसनीय नहीं है तो सामान्यीकरण निकालने में कठिनाई हो सकती है।

9.9 निदर्शन के आकार एवं विश्वसनीयता का निर्धारण

सामाजिक अनुसन्धान में निदर्शन के प्रयोग के पीछे इसका वैज्ञानिक आधार होना है। निदर्शन सांख्यिकी के दो प्रमुख नियमों पर आधारित है—सांख्यिकीय निरन्तरता या नियमितता (Regularity) का नियम तथा व्यापक संख्याओं की स्थिरता या जड़त्व (Inertia) का नियम। प्रथम नियम के अनुसार यदि एक विस्तृत जनसंख्या में से कुछ इकाइयों का संयोगिक या दैव (Random) आधार पर चयन किया जाए तो इस प्रकार से चयनित इकाइयाँ सम्पूर्ण जनसंख्या की विशेषताओं की प्रतिनिधि मानी जाती हैं। दूसरे नियम के अनुसार जनसंख्या का स्वरूप अल्प समय में परिवर्तित नहीं होता है। इसीलिए निदर्शन के आधार पर समग्र का विश्वसनीय अध्ययन करना पर्याप्त मात्रा में उपयुक्त ही नहीं है, अपितु वैज्ञानिक भी कहा जाता है। इसकी वैज्ञानिकता को बनाए रखने हेतु निदर्शन करते समय इसकी दो प्रमुख समस्याओं—आकार एवं विश्वसनीयता का निर्धारण—का समाधान किया जाना अत्यन्त आवश्यक है।

निदर्शन के आकार का निर्धारण अनेक कारकों पर निर्भर करता है, जिनमें से प्रमुख इस प्रकार हैं—

1.समग्र की सजातीयता अथवा विजातीयता,

2. वर्गों अथवा श्रेणियों की संख्या,

3.अध्ययन की प्रकृति,

4.परिशुद्धता की मात्रा,

5. प्रश्नावली अथवा अनुसूची का आकार तथा

6. निदर्शन की पद्धति।

उदाहरणार्थ, यदि समग्र में सजातीयता अधिक है तो छोटा-सा निदर्शन भी अधिक उपयुक्त हो सकता है। इसी प्रकार, यदि श्रेणियों की संख्या कम रखी जानी है तथा अध्ययन की प्रकृति गहराई से अन्वेषण करने की है तो निदर्शन का छोटा आकार भी पर्याप्त है। यदि बहुत ज्यादा परिशुद्धता नहीं रखी जानी है तथा प्रश्नावली या अनुसूची का आकार छोटा है तो निदर्शन भी छोटा हो सकता है। यदि दैव निदर्शन का प्रयोग करना है तो निदर्शन का आकार बड़ा होना अनिवार्य है क्योंकि इसी से सांख्यिकीय परिशुद्धता रखी जा सकती है।

एक अच्छे अनुसन्धान में निदर्शन की विश्वसनीयता का निर्धारण किया जाना भी अनिवार्य है। अत: यह आवश्यक है कि निदर्शन द्वारा प्राप्त परिणामों की विश्वसनीयता की जाँच के उपरान्त ही परिणामों को समग्र पर लागू किया जाना चाहिए अर्थात् सामान्यीकरण किया जाना चाहिए। निदर्शन की विश्वसनीयता की जाँच मध्यमान मानक त्रुटि (SEm) की मात्रा पर आधारित होती है जिसे निम्नलिखित सूत्र द्वारा ज्ञात किया जा सकता है—

जहाँ S = निदर्शन का S. D.

N = निदर्शन की संख्या।

जब निदर्शन की मानक त्रुटि का मान 1·96 तथा इससे अधिक रहता है तो निदर्शन की इकाइयों के विषय में यह मान्यता दृढ़ हो जाती है कि उनमें अत्यधिक भिन्नताएँ हैं और वे अपने समग्र का प्रतिनिधि नहीं हैं। ऐसा निदर्शन विश्वसनीय नहीं कहा जा सकता। जैसे-जैसे मानक त्रुटि की मात्रा 1·96 से अधिक बढ़ती जाती है उतने ही अधिक विश्वास के साथ निदर्शन के मध्यमान को अस्वीकृत कर दिया जाता है।

निदर्शन की विश्वसनीयता में उसी स्थिति में वृद्धि हो सकती है जबकि उसकी मध्यमान की मानक त्रुटि कम हो। यह त्रुटि निम्नलिखित दो स्थितियों में कम हो सकती है—

1.जब निदर्शन के मानक विचलन (S. D.) की मात्रा को संयोगिक निदर्शन (Random sampling) द्वारा कम किया जाए।

2.जब निदर्शन की संख्या (N) में उपयुक्त वृद्धि की जाए।

निदर्शन की विश्वसनीयता की जाँच निम्नलिखित तीन विधियों अथवा कसौटियों द्वारा की जा सकती है—

1.समानान्तर निदर्शन (Parallel sample) का चयन करके,

2.निदर्शन द्वारा प्राप्त निष्कर्षों की तुलना समग्र के बारे में ज्ञात सूचनाओं से करके तथा

3.मुख्य निदर्शन से एक उप-निदर्शन (Sub-sample) का चयन करके।

प्रथम विधि में समानान्तर निदर्शन तथा मूल निदर्शन द्वारा प्राप्त आँकड़ों की तुलना की जाती है। यदि वे समान हैं तो निदर्शन विश्वसनीय है। दूसरी विधि में निदर्शन से प्राप्त आँकड़ों की तुलना समग्र के बारे में उपलब्ध जानकारी से की जाती है। यदि दोनों मेल खाते हैं तो निदर्शन विश्वसनीय है। तीसरी विधि में निदर्शन में से एक उप-निदर्शन का चयन किया जाता है तथा उसका गहराई से अध्ययन किया जाता है। यदि दोनों के निष्कर्ष एक जैसे हैं तो निदर्शन विश्वसनीय है।

यदि निदर्शन द्वारा प्राप्त मध्यमान की मानक त्रुटि (SEm) तथा उपर्युक्त विधि या कसौटी के मध्यमान के मानक त्रुटि के मान $1 \cdot 96$ से कम रहते हैं तथा दोनों के मान एक-दूसरे के सन्निकट रहते हैं तो यह माना जा सकता है कि दोनों निदर्शन समग्र के प्रतिनिधि हैं। यदि दोनों के मध्यमानों में थोड़ा-बहुत अन्तर है तो वह संयोगजन्य कारणों अथवा निदर्शन की त्रुटियों से ही उत्पन्न हुआ है तथा यह अन्तर सार्थक नहीं है।

9.10 शब्दावली

जनगणना —जनगणना से अभिप्राय किसी देश की सम्पूर्ण जनसंख्या अथवा किसी अन्य समग्र के बारे में विविध प्रकार का विवरण प्राप्त करना है।

समग्र —समग्र का अर्थ सम्पूर्ण इकाइयों से है।

निदर्शन—निदर्शन समग्र का लघु चित्र है जो समग्र का प्रतिनिधित्व करता है।

तकनीक—तकनीक से अभिप्राय किसी भी सामाजिक अनुसन्धान में सामग्री संकलन करने की पद्धति से है।

जनांकिकी—जनांकिकी जनसंख्या से सम्बन्धित विज्ञान है।

निष्पक्षता –निष्पक्षता से अभिप्राय किसी भी यथार्थता को पूर्वाग्रह के बिना या पक्षपातरहित ढंग से देखना है। अपने किसी मूल्य द्वारा प्रभावित हुए बिना यथार्थता को उसी रूप में देखना जिस रूप में वह विद्यमान है, निष्पक्षता कहलाती है।

9.11 अभ्यास प्रश्न

1. जनगणना किसे कहते हैं? जनगणना एवं निदर्शन में क्या अन्तर है?

2. निदर्शन किसे कहते हैं? एक श्रेष्ठ निदर्शन के अनिवार्य लक्षण बताइए।

3.निदर्शन को परिभाषित कीजिए तथा इसके चयन की प्रक्रिया संक्षेप में बताइए।

4. निदर्शन से आप क्या समझते हैं? इसकी उपयोगिता स्पष्ट कीजिए।

5. निदर्शन की उपयोगिता एवं सीमाओं की विवेचना कीजिए।

6.निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

(अ) निदर्शन की समस्याएँ

(ब) निदर्शन के आकार एवं विश्वसनीयता का निर्धारण

(स) निदर्शन सर्वेक्षणों को प्राथमिकता देने के प्रमुख कारण।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- Bogardus, E. S., Introduction to Sociology, New York : Charles Scribner's Sons, 1922.
- Fairchild, H. P., Dictionary of Sociology, Totowa, N. J. : Littlefield, Adams and Co., 1977.
- Goode, W. J. and P. K. Hatt, Methods in Social Research, New York : McGraw-Hill Book Company, 1952.
- Lundberg, G. A., Social Research, New York : Longmans, Green and Co., 1951.
- Snedecor, George W. and William G. Cochran, Statistical Methods, Iowa : Blackwell Publishing Professional, 1989.
- Tippett, L. H. C., Random Sampling Numbers, London : CUP, 1927.
- Yang, Hsin Pao, Fact-finding with Rural People, Rome : Food and Agriculture Organization of the United Nations, 1955.
- Young, P. V., Scientific Social Surveys and Research, Bombay : Asia Publishing House, 1960.

इकाई-10

निदर्शन की पद्धतियाँ : दैव निदर्शन, उद्देश्यपूर्ण निदर्शन, स्तरीकृत निदर्शन, बहुस्तरीय निदर्शन, अभ्यंश निदर्शन एवं स्व-चयनित निदर्शन

Techniques of Sampling

इकाई की रूपरेखा

10.0 उद्देश्य
10.1 प्रस्तावना
10.2 निदर्शन की पद्धतियाँ
10.3 सम्भावित निदर्शन की पद्धति के रूप में दैव निदर्शन
10.4 असम्भावित निदर्शन
10.5 शब्दावली
10.6 अभ्यास प्रश्न
सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

10.0 उद्देश्य

सामाजिक अनुसन्धान में समग्र का अध्ययन न कर समग्र का प्रतिनिधित्व करने वाली कुछ इकाइयों का अध्ययन किया जाता है जिसे निदर्शन कहते हैं। निदर्शन समग्र का लघु चित्र होता है जिसमें समग्र की अधिकांश विशेषताएँ विद्यमान होती हैं। निदर्शन पर आधारित सर्वेक्षण को 'निदर्शन सर्वेक्षण' कहते हैं। किसी भी अनुसन्धान अथवा सर्वेक्षण में निदर्शन के चयन हेतु अनेक पद्धतियों का प्रयोग किया जाता है। इनमें से कुछ पद्धतियाँ ऐसी हैं जिनमें समग्र की सभी इकाइयों के चयन की एक समान सम्भावना होती है। कुछ पद्धतियाँ ऐसी भी हैं जिनमें ऐसी सम्भावना अपेक्षाकृत कम रहती है। इस इकाई का प्रमुख उद्देश्य निदर्शन की विभिन्न प्रकार की पद्धतियों का स्पष्टीकरण करना है।

10.1 प्रस्तावना

सामाजिक अनुसन्धान अथवा सर्वेक्षण में अध्ययन के समग्र के निर्धारण के पश्चात् निदर्शन का आकार तय किया जाता है। निदर्शन के आकार का निर्धारण समग्र की प्रकृति, अनुसन्धान समस्या की प्रकृति, इकाइयों की प्रकृति, निदर्शन पद्धति तथा उपलब्ध साधनों को दृष्टि में रखकर किया जाता है। आकार निर्धारण करने के बाद निदर्शन हेतु किसी उपयुक्त निदर्शन पद्धति का चयन

करना होता है। निदर्शन की पद्धति का चयन भी काफी सीमा तक समग्र की प्रकृति, निदर्शन की इकाइयों की प्रकृति, इकाइयों से सम्बन्धित स्रोत–सूची की उपलब्धता तथा निदर्शन के आकार पर निर्भर करता है। सामाजिक अनुसन्धान तथा सर्वेक्षण में अधिकतर यह प्रयास किया जाता है कि ऐसी निदर्शन पद्धति का चयन किया जाए जिससे उन्हीं इकाइयों का निदर्शन में समावेश हो जो समग्र का प्रतिनिधित्व करती हों। निदर्शन की ऐसी पद्धतियाँ जो सभी इकाइयों को चयनित होने का एक समान अवसर प्रदान करती हैं अधिक विश्वसनीय मानी जाती हैं। इन पद्धतियों को सम्भावित निदर्शन भी कहते हैं।

10.2 निदर्शन की पद्धतियाँ

निदर्शन पद्धति (तकनीक) का अर्थ उस प्रक्रिया से है जिसके द्वारा निदर्शन का चुनाव किया जाता है। निदर्शन पद्धतियों को प्रयोग किया जाता है दो प्रमुख श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है।

(i) सम्भावित निदर्शन तथा (ii) असम्भावित निदर्शन। प्रथम प्रकार के निदर्शन में इकाइयों का चयन समान सम्भावना के आधार पर किया जाता है। सामाजिक अनुसन्धान में मुख्य रूप से इसी प्रकार के निदर्शन को प्रयोग में लाया जाता है। दैव निदर्शन (Random sampling) इस प्रकार के निदर्शन का प्रमुख उदाहरण है। सम्भावित निदर्शन सांख्यिकीय निरन्तरता एवं सामान्य वितरण के सिद्धान्त पर आधारित होने के कारण अधिक वैज्ञानिक होता है। दूसरे प्रकार के निदर्शन अर्थात् असम्भावित निदर्शन में समान सम्भावना या संयोग को महत्त्व नहीं दिया जाता अपितु अनुसन्धानकर्ता अपनी सुविधानुसार इकाइयों का चयन करता है। उद्देश्यपूर्ण एवं सुविधापूर्ण निदर्शन इसके प्रमुख उदाहरण हैं। इस प्रकार की निदर्शन पद्धतियों में वैज्ञानिकता का अंश कम होता है।

10.3 सम्भावित निदर्शन की पद्धति के रूप में दैव निदर्शन

यह (सम्भावित) वह निदर्शन है जिसमें समान सम्भावना या संयोग को महत्त्व दिया जाता है। वस्तुत: प्रतिनिधित्वपूर्ण निदर्शन के चयन हेतु अनुसन्धानकर्ता को स्वयं के पक्षपात, पूर्वाग्रह तथा मिथ्या–झुकाव की सम्भावना को कम करने हेतु समग्र की सभी इकाइयों को चुने जाने का एक समान अवसर प्रदान करना पड़ता है। दैव निदर्शन (Random Sampling) सम्भावित निदर्शन का प्रमुख प्रकार है। दैव निदर्शन वह निदर्शन है जिसमें समग्र की प्रत्येक इकाई के चुने जाने की सम्भावना या संयोग (Chance) एक समान होता है। अतः यह निदर्शन पक्षपातरहित एवं समग्र का प्रतिनिधित्व करने वाला होता है। गुड एवं हैट (Goode and Hatt) के अनुसार, ''दैव निदर्शन में समग्र की इकाइयों को इस प्रकार से क्रमबद्ध किया जाता है कि चुनाव प्रक्रिया समग्र की प्रत्येक इकाई को चयन का समान अवसर प्रदान करती है।'' अतः दैव निदर्शन में

समग्र की प्रत्येक इकाई को चयनित होने हेतु समान अवसर प्राप्त होते हैं। इतना ही नहीं, इसमें किसी इकाई का चयन किसी दूसरी इकाई के चयन की सम्भावना को किसी भी रूप में कम नहीं करता है। इस प्रकार का चुनाव दैवयोग से हुआ माना जाता है।

दैव निदर्शन में समग्र की इकाइयों का चयन संयोगिक आधार पर किया जाता है। इसमें किसी भी एक इकाई के चुने जाने का अवसर उतना ही रहता है जितना कि अन्य किसी इकाई के चुने जाने का। इसमें प्रत्येक इकाई चुने जाने हेतु स्वतन्त्र होती है तथा उसे चुने जाने का समान अवसर उपलब्ध किया जाता है। अन्य शब्दों में दैव निदर्शन में किसी भी इकाई को किसी प्रकार की प्राथमिकता, प्रमुखता अथवा अधिमान्यता नहीं दी जाती है। दैव निदर्शन को कई बार 'समानुपातिक निदर्शन' (Proportionate sampling) भी कहा जाता है क्योंकि इसमें प्रत्येक वर्ग का प्रतिनिधित्व उसी अनुपात में होता है जिस अनुपात में वह वर्ग समग्र में विद्यमान है। उदाहरणार्थ, यदि किसी कॉलेज में पढ़ने वाले 5,000 छात्रों में से 70 प्रतिशत छात्र नगरीय पृष्ठभूमि तथा शेष 30 प्रतिशत छात्र ग्रामीण पृष्ठभूमि के हैं तो इकाइयों को समान अवसर देने के सिद्धान्त के अनुसार निदर्शन में चयनित छात्राओं का अनुपात भी लगभग इसी प्रकार का होना चाहिए। यदि थोड़ा-बहुत अन्तर भी है तो उसका अध्ययन के निष्कर्षों पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ता है।

कई बार दैव निदर्शन को 'आकस्मिक निदर्शन' (Incidental sampling) मान लेने की भूल भी की जाती है। दोनों में कोई समानता नहीं है क्योंकि आकस्मिक निदर्शन में हमें जो इकाई सरलता से उपलब्ध होती है उसी का हम चयन कर लेते हैं। यह सम्भव है कि संयोग से आकस्मिक निदर्शन दैव निदर्शन भी हो, परन्तु सदैव ऐसा नहीं होता है। आकस्मिक निदर्शन में पक्षपात की सम्भावा सदैव बनी रहती है। उदाहरणार्थ, यदि कोई छात्र पुस्तकालय में किसी पुस्तक का कोई पृष्ठ अनायास खोलता है तो उस पृष्ठ के खुलने की सम्भावना अधिक है जिसे अधिकतर छात्रों ने खोला एवं पढ़ा है।

दैव निदर्शन एक सरल पद्धति होने के साथ ही सम्भावित अशुद्धता का सरलता से पता लगाने में भी सहायता देती है। परन्तु दैव निदर्शन का प्रयोग तभी सम्भव है जबकि समग्र में से इकाइयों के चयन हेतु स्रोत-सूची उपलब्ध हो और इकाइयों में एकरूपता पाई जाती हो।

दैव निदर्शन पद्धति का प्रयोग अनेक रूपों में किया जाता है जिनमें से प्रमुख इस प्रकार हैं–

(अ)सरल दैव निदर्शन–इस प्रकार के निदर्शन का प्रयोग सजातीय समग्र में से इकाइयों के चयन हेतु किया जाता है। इसमें इकाइयों का चयन अनेक प्रकार से किया जाता है। सामान्यतः सरल दैव निदर्शन में इकाइयों के चयन हेतु निम्नांकित पद्धतियाँ प्रयोग में लाई जाती हैं–

(1)लाटरी पद्धति–यदि समग्र का आकार छोटा है तो सभी इकाइयों को एक से कागज की छोटी-छोटी पर्चियों पर लिखकर किसी ड्रम इत्यादि में डालकर हिलाया जाता है ताकि पर्चियाँ आपस में इस प्रकार मिल जाएँ कि पक्षपात की कोई सम्भावना न रहे। फिर स्वयं अनुसन्धानकर्ता आँख बन्द करके एक-एक पर्ची निकालता है। जितना निदर्शन चाहिए उतनी पर्चियाँ एक-एक करके निकाली जाती हैं।

(2)कार्ड या टिकट पद्धति–लाटरी पद्धति की भाँति सरल दैव निदर्शन में इकाइयों के चयन हेतु कार्ड या टिकट पद्धति भी प्रयोग में लाई जाती है। कार्ड या टिकट पद्धति में इकाइयों के नम्बर या नाम एक समान आकार, रंग तथा मोटाई वाले कार्डों या टिकटों पर लिखे रहते हैं। इन कार्डो को एक बन्द कैन्टेनर या ड्रम डाल दिया जाता है। जिसके ढकने में एक छेद कर दिया जाता है। ताकि आवष्कयता अनुसार उस छेद से एक बार में एक बार कार्ड निकाल सकें तत्पष्चात उस ड्रम को हिलाकर ड्रम को उलटा कर उसमें से एक कार्ड निकाला जाता है। पहला कार्ड या टिकट निकालने के बाद ड्रम को निश्चित बार हिलाया जाता है जिससे शेष बचे कार्ड या टिकट पुनः संयोगिक हो जाएँ। तत्पश्चात् दूसरा कार्ड या टिकट निकाला जाता है। तीसरा कार्ड या टिकट निकालने से पहले ड्रम को पुनः निश्चित बार हिलाया जाता है। यह प्रक्रिया तब तक चलती है जब तक निर्धारित संख्या में इकाइयों का चयन न हो जाए। इस पद्धति में कार्ड या टिकट निकालने का कार्य अनुसन्धानकर्ता द्वारा न कर किसी बच्चे या अन्य किसी द्वारा किया जाता है।

(3)ग्रिड पद्धति–इसे भौगोलिक क्षेत्र के किसी भाग को चुनने के लिए प्रयोग में लाया जाता है। इस पद्धति में सर्वप्रथम प्रस्तावित क्षेत्र का भौगोलिक मानचित्र तैयार किया जाता है। तत्पश्चात् मानचित्र के बराबर एक सेल्यूलाइड या किसी पारदर्शक प्लेट (ग्रिड प्लेट) ली जाती है और उसमें संयोगिक या यदृच्छ रूप से उतने ही वर्गाकर छेद कर दिए जाते हैं जितने क्षेत्र निदर्शन में सम्मिलित किए जाने हैं। इस ग्रिड प्लेट को मानचित्र पर रखा जाता है। जो क्षेत्र छेदों में दिखाई देते हैं उन्हें चिह्नित कर लिया जाता है तथा वे क्षेत्र निदर्शन में सम्मिलित किए जाते हैं। मान लीजिए किसी औद्योगिक क्षेत्र में हमने सभी श्रमिक बस्तियों में से केवल 10 बस्तियों का अध्ययन करना है। इसके लिए सर्वप्रथम श्रमिक बस्तियों का मानचित्र तैयार किया जाएगा तथा फिर ग्रिड प्लेट पर संयोगिक या यदृच्छ रूप से 10 छेद कर दिए जाते हैं। मानचित्र पर ग्रिड प्लेट रखने के पश्चात् जो क्षेत्र छेदों के नीचे दिखाई देते हैं उन्हें निदर्शन की इकाई माना जाता है।

(4)दैव संख्या सारणी पद्धति–जब समग्र का आकार बड़ा होता है और लाटरी अथवा कार्ड या टिकट पद्धति द्वारा निदर्शन का चयन कठिन होता है, तो इस प्रकार के बड़े समग्र में से अध्ययन इकाई के चयन हेतु प्रायः दैव संख्या सारणी का प्रयोग किया जाता है। इन संख्याओं

को वैज्ञानिक पद्धति द्वारा निर्धारित किया जाता है। सामान्यतः टिप्पेट (Tippet) अथवा फिशर एवं येट्स (Fisher and Yates) की दैव संख्या सारणी का प्रयोग किया जाता है। इस सारणी द्वारा निर्धारित संख्या में इकाइयों का चयन किया जाता है। इसमें भी प्रत्येक इकाई के चुने जाने की बराबर सम्भावना होती है। उदाहरणार्थ, टिप्पेट द्वारा 10,400 संख्याओं की संयोगिक या यदृच्छ चयन पद्धति (Random selection method) द्वारा एक सूची बनाई गई तथा उसका मानकीकरण किया गया। अनुसन्धानकर्ता टिप्पेट द्वारा बनाई गई इस सूची के किसी पृष्ठ से निर्धारित संख्या में इकाइयों का चयन कर सकता है। टिप्पेट द्वारा एक पृष्ठ पर दिए गए अंकों का नमूना निम्न प्रकार हैं–

2952	3392	7979	3170
4167	1545	7203	3100
2370	3408	3563	6913
0560	1112	6008	4433
2754	1405	7002	8816
6641	9792	5911	5624
9524	1392	5356	2993
7483	2762	1089	7691
5246	6107	8126	8796
9143	9025	6111	9446

इसी प्रकार, अन्य पृष्ठों पर संख्या दर्शाई गई होती हैं। इन संख्याओं का निर्धारण वैज्ञानिक ढंग से किया जाता है। मान लीजिए समग्र का आकार 500 है तथा इनमें से हमें केवल 50 सूचनादाताओं का निदर्शन लेना है, तो हम ऐसे नम्बरों वाली इकाइयों का चयन करेंगे जिनकी संख्या 500 या इससे कम है।

चुनी हुई इकाइयों की संख्या निम्न प्रकार निर्धारित होगी–

1. 295	6. 339	11. 139	
2. 416	7. 154	12. 276	
3. 237	8. 340	13. 356	
4. 056	9. 111	14. 108	इत्यादि।
5. 275	10. 140		

इकाइयों का निर्धारित संख्या में चयन करते समय यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है कि टिप्पेट की सूची के किसी भी पृष्ठ के किसी भी स्थान से लगातार संख्याओं का चयन करना आवश्यक है। साथ

ही, इस बात का ध्यान रखा जाना भी आवश्यक है कि बाईं तरफ के या दाईं तरफ के उतने ही अंकों का चयन करना आवश्यक है जिनके अंकों में हमें निदर्शन लेना है।

(5) नियमित अंकन दैव निदर्शन पद्धति–इस पद्धति का प्रयोग तब किया जाता है जब समग्र की सभी इकाइयाँ किसी विशेष ढंग, काल, स्थान आदि के अनुसार व्यवस्थित होती हैं। सर्वप्रथम सभी इकाइयों की क्रम संख्या डालते हुए एक सूची का निर्माण किया जाता है तथा तत्पश्चात् निदर्शन के आकार का निर्धारण किया जाता है। किसी एक संख्या से प्रारम्भ कर नियमित रूप से अगली संख्याएँ निर्धारित संख्या में चुनी जाती हैं। उदाहरणार्थ, यदि हमें किसी कक्षा के 200 छात्रों में से केवल 20 छात्रों का चयन करना है तो पहले उस कक्षा के 200 छात्रों की सूची विद्यालय से ली जाएगी अथवा स्वयं तैयार की जाएगी। इसके पश्चात् सूची में सम्मिलित हर 10वाँ छात्र (अर्थात् 10, 20, 30, 40, 50, 60, 70 इत्यादि) निदर्शन में सम्मिलित कर लिया जाएगा। यह पद्धति आकस्मिक ढंग से निदर्शन के चयन में सहायक होती है। अतः इसमें सभी प्रकार के छात्रों के निदर्शन में सम्मिलित होने की सम्भावना अधिक होती है। यद्यपि यह पद्धति दैव निदर्शन की ही एक पद्धति है, तथापि इसमें सभी इकाइयों की जानकारी होना कठिन होता है जिसके परिणामस्वरूप इसमें अभिनीति की सम्भावना अधिक रहती है। इस पद्धति को क्रमबद्ध निदर्शन भी कहा जाता है।

(ब) स्तरीकृत दैव निदर्शन–जब जनसमूह अथवा समग्र में समानता कम और भिन्नताएँ अधिक हों तो पहले सम्पूर्ण समग्र को कुछ सजातीय श्रेणियों या वर्गों में बाँट लिया जाता है और फिर प्रत्येक श्रेणी से सरल दैव निदर्शन द्वारा इकाइयों का चयन किया जाता है। यह समानुपातिक (Proportional) अर्थात् प्रत्येक श्रेणी की इकाइयों की संख्या के आधार पर समान अनुपात द्वारा लिया गया अथवा असमानुपातिक (Disproportional) हो सकता है जिसमें प्रत्येक श्रेणी से निश्चित संख्या में इकाइयों का चयन किया जाता है चाहे उनकी संख्या में कितना भी अन्तर क्यों न हो। कई बार इन दोनों का मिला-जुला प्रयोग में लाया जाता है जिसे भारयुक्त निदर्शन (Weighted sampling) कहा जाता है। इसमें प्रत्येक श्रेणी से इकाइयों की संख्या तो समान अनुपात में होती है परन्तु बाद में अधिक संख्या वाली श्रेणी की इकाइयों को अधिक भार प्रदान कर उसका प्रभाव बढ़ा दिया जाता है। इस भार को उसी अनुपात में बढ़ाया जाता है जिस अनुपात में श्रेणी की इकाइयाँ समग्र में विद्यमान हैं।

स्तरीकृत निदर्शन में समग्र का प्रसार कम हो जाता है और यह अधिक प्रतिनिधित्व करने वाला बन जाता है। सिन पाओ यांग (Hsin Pao Yang) के शब्दों में, ''स्तरीकृत निदर्शन का अर्थ समग्र में से सामान्य विशेषताओं के आधार पर उप-निदर्शन लेना है। यह विशेषताएँ कृषि, खेतों का आकार, भूमि पर स्वामित्व, शैक्षणिक स्तर, आय, लिंग, सामाजिक वर्ग इत्यादि हो सकती

हैं।'' इस निदर्शन हेतु अनुसन्धानकर्ता सर्वप्रथम समग्र की विशेषताओं के आधार पर उसे विभिन्न वर्गों में विभाजित कर लेता है तथा फिर प्रत्येक वर्ग में निर्धारित संख्या में निदर्शन की इकाइयों का चयन करता है। इस प्रकार, स्तरीकृत दैव निदर्शन में पहले स्तरों का निर्धारण होता है तथा फिर प्रत्येक स्तर में से निदर्शन की इकाइयों का चयन किया जाता है। उदाहरणार्थ, यदि हमें किसी गाँव के विभिन्न व्यवसायों में लगे 1,000 लोगों का 10 प्रतिशत निदर्शन लेना है तो पहले हमें विभिन्न व्यवसायों (कृषि, व्यापार, नौकरी, दस्तकारी, मजदूरी आदि) में लगे लोगों के वर्ग बनाने होंगे। फिर प्रत्येक वर्ग में जितने लोग आएँगे उनमें से 10 प्रतिशत लोगों का चयन दैव निदर्शन की पद्धति से कर लिया जाएगा।

स्तरीकृत निदर्शन की उपयोगिता को इसके निम्नलिखित प्रमुख गुणों द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है–

1.इसमें समग्र की प्रत्येक वर्ग या श्रेणी की इकाइयों को निदर्शन में सम्मिलित होने का अवसर प्राप्त होता है जिसके कारण किसी महत्त्वपूर्ण वर्ग या श्रेणी के उपेक्षित होने की सम्भावना नहीं रहती। सरल दैव निदर्शन में तो कोई महत्त्वपूर्ण इकाई छूट सकती है परन्तु स्तरीकृत दैव निदर्शन में ऐसा सम्भव नहीं है।

2.इसमें यदि विभिन्न श्रेणियों का विभाजन सोच-समझकर किया जाए तथा प्रत्येक श्रेणी से चाहे कम इकाइयों का ही चयन किया जाए तो भी यह निदर्शन समग्र का अधिक प्रतिनिधित्व करने वाला होता है।

3.इसमें किसी इकाई को आवश्यकता पड़ने पर त्याग कर उसके स्थान पर उसी श्रेणी की दूसरी इकाई चुनने की सुविधा होती है। यदि किसी कारणवश किसी एक श्रेणी के सूचनादाता से उसके द्वारा स्थान छोड़ देने के कारण सम्पर्क नहीं हो पा रहा है तो उसी श्रेणी के दूसरे सूचनादाता का चयन किया जा सकता है। ऐसा करने पर निदर्शन के प्रतिनिधित्वपूर्ण बने रहने में कोई बाधा नहीं पड़ती है।

4.इसमें वर्गों अथवा श्रेणियों का निर्धारण भौगोलिक आधार पर भी किया जा सकता है। क्षेत्रीय आधार पर वर्गीकरण करने में समय एवं धन की बचत होती है तथा चयनित इकाइयों से सम्पर्क स्थापित करने में सुविधा रहती है। सरल दैव निदर्शन में ऐसा होना सम्भव नहीं है।

स्तरीकृत दैव निदर्शन की उपर्युक्त गुणों के बावजूद कुछ सीमाएँ भी हैं जिनमें से प्रमुख निम्न प्रकार हैं–

1.यदि वर्गों अथवा श्रेणियों का निर्धारण ठीक प्रकार से नहीं किया जाए तो यह निदर्शन पक्षपातपूर्ण हो सकता है। इसमें किसी एक वर्ग या श्रेणी की इकाइयों की संख्या अत्यधिक या न्यूनतम हो सकती है जिससे निदर्शन समग्र का प्रतिनिधित्वपूर्ण नहीं रह जाता।

2.यदि वर्गों अथवा श्रेणियों के आकार में अत्यधिक अन्तर है तथा इकाइयों का चयन समानुपातिक ढंग से किया जाता है तो यह निदर्शन पक्षपातपूर्ण हो सकता है।

3.यदि वर्गों अथवा श्रेणियों के आकार में अत्यधिक अन्तर है तथा इकाइयों का चयन समानुपातिक ढंग से किया जाता है तो बाद में बड़े वर्गों अथवा श्रेणियों की इकाइयों को अधिक भार देना पड़ता है जिसके कारण इसमें पक्षपात की सम्भावना बढ़ जाती है।

4.कई बार कुछ इकाइयाँ मिश्रित विशेषताओं वाली होती हैं जिसके कारण उन्हें किसी एक वर्ग अथवा श्रेणी में रखना सम्भव नहीं होता है। ऐसी स्थिति में इकाइयों का श्रेणियों में विभाजन एक समस्या बन जाता है।

(स)बहु-स्तरीय निदर्शन–समग्र में अत्यधिक भिन्नताएँ होने पर इकाइयों के चयन हेतु बहु-स्तरीय निदर्शन पद्धति का भी प्रयोग किया जाता है। इसमें निदर्शन अनेक स्तरों पर किया जाता है। उदाहरणार्थ, यदि किसी बड़े नगर का अध्ययन करना है तो पहले उसके वार्डों का पता लगाया जाता है, फिर इनमें से कुछ वार्ड अध्ययन हेतु चुने जाते हैं। अगले स्तर पर इन वार्डों के परिवारों का पता लगाकर उनमें से कुछ परिवारों का चयन किया जाता है। यदि प्रत्येक स्तर का निदर्शन सुविधानुसार अथवा स्व-चयनित ढंग से किया जाता है तो यह असम्भावित निदर्शन कहलाता है। यदि प्रत्येक स्तर का चयन दैव निदर्शन द्वारा किया जाता है तो स्तरीकृत निदर्शन की भाँति इसे सम्भावित निदर्शन का एक प्रकार माना जाता है। अत्यधिक क्षेत्रीय भिन्नताओं वाले समग्र के अध्ययन हेतु यह पद्धति अत्यन्त उपयोगी मानी जाती है क्योंकि इसमें समग्र की इकाइयों को उचित प्रतिनिधित्व प्राप्त होता है, प्रत्येक इकाई के चयन की पूर्ण सम्भावना रहती है तथा इसमें दैव निदर्शन के गुण पाए जाते हैं। इस पद्धति को अपनाने में सबसे अधिक कठिनाई क्षेत्रीय विभाजन के समय होती है तथा इसमें दैव निदर्शन के सभी दोष अन्तर्निहित होते हैं।

(द) क्षेत्रीय या गुच्छ निदर्शन–इस निदर्शन में सर्वप्रथम समग्र को कुछ स्वाभाविक समूहों या भौगोलिक क्षेत्रों में विभाजित किया जाता है और फिर सरल दैव निदर्शन द्वारा प्रत्येक समूह या क्षेत्र से इकाइयों का चयन किया जाता है। यह भी सम्भव है कि पहले समग्र के कुछ क्षेत्रों या गुच्छों का दैव निदर्शन द्वारा चयन कर लिया जाए तथा इन चयनित क्षेत्रों या गुच्छों, जिन्हें उप-निदर्शन (Sub-sampling) कहा जाता है, से सभी या कुछ इकाइयों का चयन कर लिया जाए। आजकल इस पद्धति का भी बहुधा प्रयोग किया जाने लगा है।

(य) पुनरावृत्ति निदर्शन–कई बार समग्र से चुना गया निदर्शन अपेक्षाकृत बड़ा होता है क्योंकि हो सकता है कि स्तरीकरण के स्पष्ट आधार का पता न हो। इस बड़े निदर्शन से यदि चर से सम्बन्धित इकाइयों के चयन के लिए पुनः निदर्शन किया जाता है तो उसे द्विशः या पुनरावृत्ति

निदर्शन कहते हैं। इस पद्धति द्वारा समग्र की विशेषताओं का मूल्यांकन करने में सम्भावित त्रुटियाँ कम हो जाती हैं।

अधिकांश सामाजिक अनुसन्धानों एवं सर्वेक्षणों में दैव निदर्शन पद्धति का प्रयोग इसकी उपयोगिता का द्योतक है। इसके प्रमुख गुण निम्न प्रकार हैं–

1.दैव निदर्शन में निष्पक्षता का गुण होता है तथा यह पक्षपातरहित होता है। इसमें किसी भी इकाई को प्राथमिकता, प्रमुखता या अधिमान्यता नहीं दी जाती तथा प्रत्येक इकाई के निदर्शन में चुने जाने की समान सम्भावना विद्यमान रहती है। इसीलिए सामाजिक विज्ञानों में होने वाले अधिकांश अध्ययनों में इसी प्रकार के निदर्शन को आधार बनाया जाता है।

2.दैव निदर्शन एक सरल एवं वैज्ञानिक पद्धति है। इसमें किसी प्रकार की जटिल प्रक्रिया अथवा गूढ़ नियमों का पालन नहीं करना पड़ता है। येट्स (Yates) ने इस सन्दर्भ में उचित ही कहा है कि दैव निदर्शन सबसे सरल प्रकार का निर्वाचित निदर्शन है और निदर्शन की अधिकांश जटिल पद्धतियों का आधार है।

3.दैव निदर्शन में जनसंख्या के विषय में अधिक ज्ञान की आवश्यकता नहीं होती है। न्यूनतम ज्ञान होने पर भी इस पद्धति का प्रयोग सम्भव है।

4.दैव निदर्शन द्वारा इकाइयों के चयन तथा उनसे प्राप्त सामग्री के विश्लेषण में त्रुटियों का सरलतापूर्वक मूल्यांकन किया जा सकता है। इसमें गणितीय पद्धतियों द्वारा सम्भावित अशुद्धता का पता लगाया जा सकता है।

5.दैव निदर्शन समग्र का प्रतिनिधित्व करने वाला होता है क्योंकि इसमें प्रत्येक इकाई को निदर्शन में चयनित होने का समान अवसर उपलब्ध होता है।

दैव निदर्शन द्वारा इकाइयों के चयन हेतु पहले से स्रोत-सूची का होना अनिवार्य है। यदि इस प्रकार की कोई सूची उपलब्ध नहीं है और न ही उसे बनाया जाना सम्भव है तो इस प्रकार का निदर्शन प्रयोग में नहीं लाया जा सकता है। दैव निदर्शन की प्रमुख सीमाएँ निम्न प्रकार हैं–

1.दैव निदर्शन के प्रयोग हेतु समग्र की सम्पूर्ण इकाइयों की विस्तृत एवं सम्पूर्ण सूची उपलब्ध होना आवश्यक है। कुछ परिस्थितियों को छोड़कर इस प्रकार की सूची प्रायः उपलब्ध नहीं हो पाती है। इसलिए इसका प्रयोग सभी प्रकार के अध्ययनों में करना सम्भव नहीं है।

2.दैव निदर्शन में इकाइयों के चयन में अनुसन्धानकर्ता का कोई नियन्त्रण नहीं होता। इसलिए ऐसी इकाइयों का भी चयन हो जाता है जो दूर-दूर स्थित होती हैं तथा जिनसे सम्पर्क करना कठिन होता है। ऐसी स्थिति में चुने हुए निदर्शन को अपनाना प्रायः कठिन होता है।

3.दैव निदर्शन में विकल्प की कोई सम्भावना नहीं होती है। यदि निदर्शन में चयनित कुछ इकाइयाँ अपना स्थान छोड़कर कहीं और चली गई हैं तो अन्य विकल्पों को सुविधानुसार इसमें सम्मिलित नहीं किया जा सकता है। इससे निदर्शन की विश्वसनीयता प्रभावित होती है।

4.दैव निदर्शन में यदि समग्र की इकाइयाँ समान आकार वाली नहीं हैं तथा उनमें एकरूपता का अभाव पाया जाता है तो प्रतिनिधि इकाइयों का चयन होना अनिवार्य नहीं है। ऐसी स्थिति में यह पद्धति अधिक उपयुक्त नहीं होती।

दैव निदर्शन के प्रयोग में अनुसन्धानकर्ता यदि निम्नलिखित सावधानियाँ रखता है तो उसका अध्ययन अधिक वैज्ञानिक हो सकता है–

1. दैव निदर्शन द्वारा इकाइयों के चयन से पूर्व समग्र का निर्धारण ठीक प्रकार से किया जाना चाहिए तथा यह सुनिश्चित कर लेना आवश्यक है कि समस्त इकाइयों की सम्पूर्ण सूची उपलब्ध है।

2. दैव निदर्शन में सम्मिलित होने वाली इकाइयाँ स्वतन्त्र होनी चाहिए अर्थात् वे एक-दूसरे पर अध्ययन हेतु निर्भर नहीं होनी चाहिए।

3. दैव निदर्शन में इकाइयाँ ऐसी होनी चाहिएँ जिनसे सम्पर्क स्थापित किया जा सके क्योंकि इसमें एक बार चुनी हुई इकाई को बदला नहीं जा सकता है।

कुछ विद्वानों का मत है कि स्तरीकृत दैव निदर्शन, क्षेत्रीय या गुच्छ निदर्शन तथा द्विशः या पुनरावृत्ति निदर्शन पूरी तरह से सम्भावित निदर्शन न होकर अर्द्धसम्भावित (Semi-probability) निदर्शन होता है क्योंकि इनमें सरल दैव निदर्शन के सभी गुणों का समावेश नहीं होता है। यद्यपि इनमें तथा सरल दैव निदर्शन में अन्तर केवल अंशों का ही है, तथापि इनमें एक इकाई का चयन दूसरी इकाई के चयन को प्रभावित करता है। अतः इनमें समग्र की प्रत्येक इकाई के चयन का समानव अवसर नहीं होता है। कुछ विद्वान् इसे सीमित दैव (Limited random) निदर्शन भी कहते हैं।

10.4 असम्भावित निदर्शन

कई बार स्रोत-सूची इत्यादि उपलब्ध न होने पर सम्भावित निदर्शन करना कठिन कार्य हो जाता है। अतः कई बार इसका प्रयोग अनुसन्धान में न करके असम्भावित निदर्शन पद्धति का प्रयोग किया जाता है। इस प्रकार के निदर्शन में अनुसन्धानकर्ता अपनी सुविधा अथवा विवेक के आधार पर इकाइयों का चयन करता है परन्तु इसमें भी निदर्शन को प्रतिनिधित्व एवं पर्याप्त बनाने के लिए कुछ नियमों का पालन करना पड़ता है।

सामाजिक अनुसन्धान एवं सर्वेक्षण में मुख्य रूप से असम्भावित निदर्शन की निम्नलिखित पद्धतियों का प्रयोग किया जाता है–

1.अभ्यंश या कोटा निदर्शन–इसे कई बार प्रतिनिधित्व निदर्शन भी कह दिया जाता है क्योंकि इसमें भी जनसंख्या का स्तरीकरण उसी प्रकार से किया जाता है जिस प्रकार कि स्तरीकृत दैव

निदर्शन में। परन्तु इसमें प्रत्येक स्तर से आवश्यक संख्या में इकाइयों का चुनाव अनुसन्धानकर्ता अपने विवेक के आधार पर ही करता है। प्रत्येक स्तर से इकाइयों का निश्चित संख्या में चयन करने के कारण ही इसे अभ्यंश या कोटा निदर्शन कहा जाता है। जनमत सर्वेक्षणों में इस प्रकार के निदर्शन का अधिक प्रचलन है।

2.उद्देश्यपूर्ण निदर्शन–इसमें अनुसन्धानकर्ता अपने पूर्व ज्ञान या पूर्व विचारों के आधार पर उन इकाइयों का चयन कर लेता है जिन्हें वह जनसंख्या का प्रतिनिधि समझता है। इसे सविचार, सप्रयोजन अथवा सोद्देश्य निदर्शन पद्धति भी कहा जाता है। इसमें अनुसन्धानकर्ता द्वारा स्वेच्छा से विभिन्न समूहों से निर्धारित संख्या इकाइयों का चयन इस प्रकार किया जाता है कि विभिन्न समूह मिलकर यथासम्भव वही अनुपात प्रदान करते हैं जोकि समग्र में होता है। इस प्रकार के निदर्शन हेतु अध्ययनकर्ता का समग्र की सभी विशेषताओं से भली-भाँति परिचित होना आवश्यक है। यदि अनुसन्धानकर्ता में उपयुक्त कुशलता है और उसने उचित निर्णय लिया है तो यह निदर्शन भी सन्तोषजनक हो सकता है। इसमें धन का कम व्यय होता है क्योंकि निदर्शन का आकार बड़ा नहीं होता है। यह निदर्शन पद्धति इस मान्यता पर आधारित है कि यदि निदर्शन का चयन पक्षपातरहित हो तो अपेक्षाकृत छोटा निदर्शन भी समग्र का प्रतिनिधित्व करने वाला हो सकता है। साथ ही, इस पद्धति का प्रयोग उन परिस्थितियों में उपयोगी है जिनमें समग्र की कुछ इकाइयाँ विशेष महत्त्व रखती हैं तथा उनका निदर्शन में चुना जाना आवश्यक है। दैव निदर्शन द्वारा ऐसा सम्भव नहीं है। उदाहरणार्थ, यदि उत्तराखण्ड के महाविद्यालयों का अध्ययन करना है तो डी0ए0वी0 कॉलेज देहरादून को निदर्शन में सम्मिलित करना आवश्यक है। इस निदर्शन पद्धति के प्रयोग द्वारा यह महाविद्यालय तो निदर्शन में सम्मिलित हो सकता है, परन्तु हो सकता है कि दैव निदर्शन में यह महाविद्यालय छूट जाए।

यद्यपि उद्देश्यपूर्ण निदर्शन की पद्धति को बहुधा प्रयोग में लाया जाता है, तथापि यह अधिक उपयुक्त नहीं है क्योंकि इसमें अभिनति एवं पक्षपात की सम्भावना अधिक रहती है। अनुसन्धानकर्ता हित-विशेष की पूर्ति हेतु ऐसे निदर्शन का चयन कर सकता है जो उसके मतों की पुष्टि करने वाला हो। इस पद्धति में तीन प्रमुख दोष पाए जाते हैं–

(i)उद्देश्यपूर्ण निदर्शन हेतु प्रत्येक अनुसन्धानकर्ता में समग्र की विभिन्न विशेषताओं का पूर्ण ज्ञान होना अनिवार्य है। परन्तु यथार्थ में समग्र के बारे में पहले से ही पूर्ण ज्ञान सम्भव नहीं होता।

(ii)उद्देश्यपूर्ण निदर्शन में अनुसन्धानकर्ता किसी भी इकाई को निदर्शन के रूप में चुनने हेतु स्वतन्त्र होता है। उस पर किसी प्रकार का नियन्त्रण न होने के कारण इस पद्धति में निदर्शन पक्षपातपूर्ण ढंग से होने की सम्भावना अधिक रहती है।

(iii)निदर्शन सम्बन्धी अशुद्धता का अनुमान जिन मान्यताओं पर किया जाता है, उनमें से एक भी उद्देश्यपूर्ण निदर्शन में नहीं पाई जाती है।

उपर्युक्त सीमाओं के बावजूद यह पद्धति अत्यन्त उपयोगी मानी जाती है। दैव निदर्शन पद्धति में तो महत्त्वपूर्ण इकाइयों के छूट जाने की पूर्ण सम्भावना रहती है, परन्तु इसमें ऐसा नहीं होता है।

3.स्व-चयनित या आकस्मिक निदर्शन–स्व-चयनित निदर्शन को आकस्मिक निदर्शन भी कहा जाता है। इसमें जो भी इकाई सुविधाजनक रूप में उपलब्ध होती है उसका चयन कर लिया जाता है। इस पद्धति को भी सामाजिक अनुसन्धानों में निदर्शन के चयन हेतु प्रयोग में लाया जाता है। इस पद्धति का प्रयोग उन्हीं परिस्थितियों में किया जाता है जब न तो समग्र की पूर्ण जानकारी उपलब्ध है और न ही निदर्शन की इकाइयाँ स्पष्ट हैं। कोई स्रोत-सूची भी उपलब्ध नहीं है। इसमें आकस्मिक रूप में जो भी इकाई उपलब्ध होती है उसी को निदर्शन में सम्मिलित कर लिया जाता है। अनेक विद्वान् इस पद्धति को प्रयोग में लाने के पक्ष में नहीं है क्योंकि जब अनुसन्धानकर्ता अपनी सुविधाओं को ध्यान में रखकर आकस्मिक रूप से निदर्शन करने लगता है तो यह पद्धति अवैज्ञानिक एवं अवसरवादी बन जाती हैं।

4.खण्ड निदर्शन–इस प्रकार के निदर्शन में सम्पूर्ण समग्र का अध्ययन न करके उसके किसी एक खण्ड को सुविधानुसार अध्ययन हेतु चुन लिया जाता है। उदाहरणार्थ, यदि कोई अनुसन्धानकर्ता देहरादून के मतदाताओं का अध्ययन कर रहा है और वह केवल अपने मोहल्ले को निदर्शन के एक खण्ड के रूप में चुन लेता है तो इसे खण्ड निदर्शन कहा जाएगा। उसने अपने मोहल्ले का चयन अपनी सुविधानुसार किया है क्योंकि मोहल्ले वाले उसके परिचित हैं तथा मतदाता के रूप में जो भी जानकारी उसे चाहिए वह उसे उनसे मिल सकती है।

यह सही है कि असम्भावित निदर्शन अधिक वैज्ञानिक नहीं होता है, फिर भी अनेक सामाजिक विज्ञानों में इसका व्यापक प्रयोग किया जाता है। मनोवैज्ञानिक प्रयोगों में तो बहुधा इसी प्रकार के निदर्शन का प्रयोग किया जाता है क्योंकि प्रयोगशालाओं में सम्भावित निदर्शन सम्भव नहीं होता। इतना ही नहीं, सम्भावित निदर्शन की पद्धति अधिक कठोर पद्धति है जिसका पूरी तरह से पालन करना कठिन होता है। इसीलिए फरग्यूसन (Ferguson) ने लिखा है कि, '' यदि हम निदर्शन के संयोगिक आधार का कठोरता से पालन करें तब बहुत-से प्रायोगिक अध्ययन सम्भव ही नहीं हो सकेंगे।'' अतः असम्भावित निदर्शन की उपेक्षा करना सम्भव नहीं है।

असम्भावित निदर्शन की उपर्युक्त पद्धतियों में से किसी एक का चयन निम्नलिखित परिस्थितियों में उपयुक्त माना जाता है–

(i)जब अनुसन्धानकर्ता को समग्र के विषय में पूर्ण ज्ञान न हो।

(ii)जब अनुसन्धानकर्ता को समग्र की इकाइयों का स्वरूप स्पष्ट न हो।

(iii) जब अध्ययन का उद्देश्य अग्रगामी अध्ययन (Pilot study) करना हो।

(iv)जब अनुसन्धानकर्ता को निदर्शन के आधार पर अध्ययन के परिणामों को शीघ्रातिशीघ्र जानने की आवश्यकता हो।

(v)जब अनुसन्धानकर्ता को निदर्शन के लिए किसी प्रकार का तकनीकी ज्ञान उपलब्ध न हो।

(vi) जब अनुसन्धानकर्ता द्वारा अध्ययन सम्बन्धी आकलनों में परिशुद्धता को अधिक महत्त्व न दिया जाना हो।

(vii)जब अनुसन्धानकर्ता को धन का अभाव हो तथा कम साधनों के होते हुए एक छोटे आकार का निदर्शन लेना ही सम्भव हो।

(viii) जब अनुसन्धानकर्ता के पास समय का अभाव हो तथा उसका लक्ष्य एक छोटे आकार के निदर्शन को ही अध्ययन का आधार बनाना हो।

सम्भावित निदर्शन की विभिन्न पद्धतियों की तुलना में असम्भावित निदर्शन की पद्धतियों को उनके निम्नलिखित दोषों के कारण कम अपनाया जाता है–

(i) असम्भावित निदर्शन में अनुसन्धानकर्ता समग्र की इकाइयों का चयन अपनी सुविधानुसार करता है जिसके कारण पक्षपात की सम्भावना अधिक रहती है।

(ii)असम्भावित निदर्शन में पक्षपात की अधिक सम्भावना के कारण यह आवश्यक नहीं है कि निदर्शन समग्र का प्रतिनिधित्व करने वाला ही हो।

(iii)असम्भावित निदर्शन में निदर्शन की त्रुटि की गणना में कठिनाई होती है क्योंकि इसमें सम्भावित सिद्धान्त की अभिकल्पना नहीं रहती।

(iv)असम्भावित निदर्शन द्वारा जो निष्कर्ष प्राप्त होते हैं वे अधिक विश्वसनीय एवं वैद्य नहीं होते। इसीलिए ऐसे निष्कर्षों पर न तो कोई भविष्यवाणी की जा सकती है और यदि की भी जाति है तो यह आवश्यक नहीं है कि वह सच ही हो।

आजकल सम्भावित एवं असम्भावित दोनों प्रकार के निदर्शन का प्रयोग सामाजिक अनुसन्धान में किया जाने लगा है। यदि असम्भावित निदर्शन का प्रयोग किया गया है तो निष्कर्ष निकालने में विशेष सावधानी रखने की आवश्यकता है।

10.5 शब्दावली

सम्भावित निदर्शन –यह वह निदर्शन है जिसमें समान सम्भावना या संयोग को महत्त्व दिया जाता है। इसमें अनुसन्धानकर्ता को स्वयं के पक्षपात, पूर्वाग्रह तथा मिथ्या-झुकाव की सम्भावना को कम करने हेतु समग्र की सभी इकाइयों को चुने जाने का एक समान अवसर प्रदान करना पड़ता है।

असभावित निदर्शन–सम्भावित निदर्शन से अभिप्राय उस निदर्शन से है जिसमें अनुसन्धानकर्ता अपनी सुविधा अथवा विवेक के आधार पर इकाइयों का चयन करता है तथा प्रत्येक इकाई को निदर्शन में सम्मिलित होने का एक समान अवसर उपलब्ध नहीं होता।

पक्षपातपूर्ण निदर्शन–एक ऐसा निदर्शन जो समग्र का प्रतिनिधित्व नहीं करता पक्षपातपूर्ण निदर्शन कहा जा सकता है।

दैव निदर्शन –दैव निदर्शन उसे कहा जाता है जिसमें समग्र की प्रत्येक इकाई को चयनित होने हेतु समान अवसर प्राप्त होते हैं तथा जिसमें किसी इकाई का चयन किसी दूसरी इकाई के चयन की सम्भावना को किसी भी रूप में कम नहीं करता है।

10.6 अभ्यास प्रश्न

1.सम्भावित निदर्शन किसे कहते हैं? इसके गुण-दोषों की विवेचना कीजिए।

2.दैव निदर्शन क्या है? इसके चयन की प्रमुख पद्धतियों की विवेचना कीजिए।

3. सरल दैव निदर्शन से आप क्या समझते हैं? इसके गुण-दोषों की विवेचना कीजिए।

4. स्तरीकृत दैव निदर्शन क्या है? इसकी उपयोगिता स्पष्ट कीजिए।

5.असभावित निदर्शन क्या है? इसकी प्रमुख पद्धतियाँ बताइए।

6.सामाजिक अनुसन्धान में उपयुक्त निदर्शन का चयन कैसे किया जाता है?

7.निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिए–

(अ) ग्रिड पद्धति

(ब) उद्देश्यपूर्ण निदर्शन

(स) असम्भावित निदर्शन की सीमाएँ

(द) अभ्यंश या कोटा निदर्शन

(य) असम्भावित निदर्शन के प्रयोग की उपर्युक्त स्थितियाँ।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- Ferguson, G. A. and Takane Yoshio, Statistical Analysis in Psychology and Education, New York : McGraw-Hill Book Company, 1989.
- Fisher, Ronald A. and Frank Yates, Statistical Tables, London : Oliver and Boyd, 1963.
- Goode, W. J. and P. K. Hatt, Methods in Social Research, New York : McGraw-Hill Book Company, 1952.
- Tippett, L. H. C., Random Sampling Numbers, London : CUP, 1927.
- Yang, Hsin Pao, Fact-finding with Rural People, Rome : Food and Agriculture Organization of the United Nations, 1955.
- Yates, Frank, Sampling Methods for Censuses and Surveys, London : Charles Griffin, 1953.

इकाई–11

साक्षात्कार : अर्थ एवं परिभाषाएँ, साक्षात्कार के चरण, साक्षात्कार की उपयोगिता एवं साक्षात्कार निर्देशिका

Interview

इकाई की रूपरेखा

11.0 उद्देश्य

11.1 प्रस्तावना

11.2 साक्षात्कार का अर्थ एवं परिभाषा

11.3 साक्षात्कार के उद्देश्य

11.4 साक्षात्कार के प्रकार

11.5 साक्षात्कार प्रक्रिया के चरण

11.6 साक्षात्कार की समस्याएँ

11.7 साक्षात्कार के समय रखी जाने वाली सावधानियाँ

11.8 साक्षात्कार की उपयोगिता

11.9 साक्षात्कार की सीमाएँ

11.10 साक्षात्कार निर्देशिका

11.11 शब्दावली

11.12 अभ्यास प्रश्न

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

11.0 उद्देश्य

सामाजिक अनुसन्धान में सामग्री का संकलन अनेक प्रविधियों (तकनीकों) द्वारा किया जाता है। इन प्रविधियों में साक्षात्कार अत्यन्त महत्त्वपूर्ण प्रविधि है क्योंकि इसमें अवलोकन प्रविधि को एक सहायक प्रविधि के रूप में प्रयोग किया जाने का पूर्ण अवसर प्राप्त रहता है। इसीलिए साक्षात्कार को सामाजिक अनुसन्धान की बहुउद्देश्यीय प्रविधि माना जाता है। साक्षात्कार का प्रयोग अनेक रूपों में किया जाता है तथा प्रत्येक की अपनी उपयोगिता एवं सीमाएँ होती हैं। इस इकाई में साक्षात्कार के अर्थ एवं परिभाषाओं, साक्षात्कार के उद्देश्यों, साक्षात्कार के प्रकारों, साक्षात्कार की प्रक्रिया के चरणों, साक्षात्कार की समस्याओं, साक्षात्कार के समय रखी जाने

वाली सावधानियों, साक्षात्कार की उपयोगिता एवं सीमाओं तथा साक्षात्कार निर्देशिका को समझाने का प्रयास किया गया है।

11.1 प्रस्तावना

सामाजिक विज्ञानों में किए जाने वाले अनुसन्धान को मुख्य रूप से दो श्रेणियों में विभाजित किया जाता है– गुणात्मक अनुसन्धान (Qualitative research) एवं गणनात्मक अनुसन्धान (Quantitative research) गुणात्मक अनुसन्धान से अभिप्राय उस अनुसन्धान से है जिसका उद्देश्य किसी सामाजिक घटना के गुणों को उजागर करना होता है। यह एक प्रकार से वर्णनात्मक (Descriptive) अध्ययन होता है जिसमें सामाजिक घटना का वर्णन ज्यों का त्यों करने का प्रयास किया जाता है। इस प्रकार के अनुसन्धान में मात्राओं अथवा संख्याओं का प्रयोग नहीं किया जाता है। गणनात्मक अनुसन्धान, जिसे मात्रात्मक अनुसन्धान भी कहा जाता है, वह अनुसन्धान है जिसमें मात्राओं अथवा संख्याओं का प्रयोग किया जाता है। दोनों प्रकार के अनुसन्धानों की अपनी पृथक्-पृथक् प्रविधियाँ (तकनीक) हैं। उदाहरणार्थ–सहभागी अवलोकन, साक्षात्कार निर्देशिका, वैयक्तिक अध्ययन, जीवन इतिहास इत्यादि गुणात्मक अनुसन्धान की प्रमुख प्रविधियाँ हैं, जबकि सामाजिक सर्वेक्षण, प्रश्नावली, अनुसूची आदि गणनात्मक अनुसन्धान की प्रमुख प्रविधियाँ मानी जाती हैं।

साक्षात्कार अनुसन्धान में सामग्री संकलन करने की एक प्राचीन एवं बहुचर्चित प्रविधि है जिसका समाजशास्त्र में इतना अधिक प्रयोग किया गया है कि यह आज एक सर्वाधिक प्रचलित एवं सर्वोपरि प्रविधि मानी जाती है। साक्षात्कार प्रविधि अनुसन्धानकर्ता एवं सूचनादाता को आमने-सामने की स्थिति में वार्तालाप का अवसर प्रदान करती है जिससे सूचनादाता के मनोभावों, मनोवृत्तियों तथा दृष्टिकोणों के बारे में भी जानकारी प्राप्त हो सकती है। इसका प्रयोग केवल समाजशास्त्र में ही नहीं किया जाता अपितु अन्य सामाजिक विज्ञानों, मनोचिकित्सा, मनोविश्लेषण एवं चिकित्सा जैसे विषयों में भी अत्यधिक प्रचलन देखा जा सकता है। साक्षात्कार प्रविधि द्वारा अनुसन्धानकर्ता सूचनादाता के बाहरी एवं आन्तरिक जीवन का अध्ययन कर सकता है। आलपोर्ट (Allport) के अनुसार यह प्रविधि सूचनादाताओं की भावनाओं, अनुभवों, संवेगों तथा मनोवृत्तियों के अध्ययन में विशेष रूप से उपयोगी है।

11.2 साक्षात्कार का अर्थ एवं परिभाषा

साक्षात्कार दो अथवा दो से अधिक व्यक्तियों (सामान्यतः दो) की आमने सामने के सम्बन्धों पर आधारित एक बैठक है जिसमें अनुसन्धानकर्ता (साक्षात्कारकर्ता) सूचनादाताओं से अपनी अनुसन्धान की समस्या से सम्बन्धित औपचारिक या अनौपचारिक रूप में प्रश्न पूछ कर सूचनाएँ

एकत्रित करता है। 'साक्षात्कार' अंग्रेजी के शब्द 'इण्टरव्यू' ('Interview') का हिन्दी अनुवाद है जिसे दो भागों 'इण्टर' ('Inter') तथा 'व्यू' ('View') में विभाजित किया जा सकता है। पहले शब्द अर्थात् 'इण्टर' का अर्थ है 'आन्तरिक' या 'भीतरी' तथा दूसरे शब्द अर्थात् 'व्यू' का अर्थ है 'देखना'। इस प्रकार, 'साक्षात्कार' शब्द का शाब्दिक अर्थ ही 'सूचनादाता के आन्तरिक जीवन को देखना' है अर्थात् इससे भीतरी तथ्यों की जानकारी प्राप्त करना है। दैनिक जीवन में भी 'साक्षात्कार' शब्द का प्रयोग किसी व्यक्ति द्वारा अन्य व्यक्ति से आमने-सामने की परिस्थिति में प्रश्न पूछे जाने के रूप में किया जाता है। गुड एवं हैट (Goode and Hatt) के अनुसार, ''साक्षात्कार मौलिक रूप से सामाजिक अन्तर्क्रिया की एक प्रक्रिया है।'' यंग (Young) ने इसे इन शब्दों में परिभाषित किया है, ''साक्षात्कार को एक क्रमबद्ध पद्धति माना जा सकता है जिसके द्वारा एक व्यक्ति अन्य ऐसे व्यक्ति, जो सामान्यतः उसके लिए तुलनात्मक रूप से अजनबी होता है, के आन्तरिक जीवन में अधिक या कम कल्पनात्मक रूप से प्रवेश करता है।''

यांग (Yang) के अनुसार, ''साक्षात्कार क्षेत्रीय-कार्य की एक पद्धति है जोकि किसी व्यक्ति या व्यक्तियों के व्यवहार का निरीक्षण करने, कथनों को अंकित करने तथा सामाजिक एवं सामूहिक अन्तर्क्रिया के वास्तविक परिणामों का निरीक्षण करने के लिए प्रयोग में लाई जाती है। इसलिए यह एक सामाजिक प्रक्रिया है जिसमें सामान्यतः दो व्यक्तियों में अन्तर्क्रिया पाई जाती है।'' इसी भाँति, पामर (Palmer) के शब्दों में, ''साक्षात्कार दो व्यक्तियों के मध्य एक सामाजिक स्थिति की रचना करता है तथा इसमें प्रयुक्त मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया के अन्तर्गत दोनों को परस्पर प्रत्युत्तर देने पड़ते हैं।''

उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट होता है कि साक्षात्कार सामाजिक अनुसन्धान में आँकड़े संकलन करने की एक प्रविधि है जिसमें साक्षात्कारकर्ता सूचनादाता के बाहरी एवं आन्तरिक जीवन से सम्बन्धित तथ्यों का परस्पर वार्तालाप (औपचारिक या अनौपचारिक) द्वारा पता लगाता है। परिभाषाओं के आधार पर साक्षात्कार की निम्नलिखित विशेषताएँ स्पष्ट होती हैं–

1.साक्षात्कार सामाजिक अनुसन्धान में क्षेत्रीय कार्य द्वारा प्राथमिक सामग्री संकलन करने की एक क्रमबद्ध प्रविधि है।

2. इसमें कम-से-कम दो व्यक्ति प्रत्यक्ष या आमने-सामने का सम्पर्क स्थापित करते हैं–प्रथम, सूचना एकत्रित करने वाला या प्रश्न करने वाला अर्थात् साक्षात्कारकर्ता तथा द्वितीय, सूचना या उत्तर देने वाला अर्थात् साक्षात्कारदाता।

3. साक्षात्कार में साक्षात्कारकर्ता औपचारिक रूप में (साक्षात्कार अनुसूची या निर्देशिका की सहायता से) या अनौपचारिक रूप में साक्षात्कारदाता से अपनी अनुसन्धान की समस्या से सम्बन्धित प्रश्न पूछता है अर्थात् उसका एक निश्चित उद्देश्य होता है।

4.साक्षात्कार एक सामाजिक प्रक्रिया है जिसमें साक्षात्कारकर्ता तथा साक्षात्कारदाता के मध्य प्राथमिक सम्बन्ध विकसित होते हैं।

11.3 साक्षात्कार के उद्देश्य

साक्षात्कार केवल दो व्यक्तियों में ऐसे ही वार्तालाप करने की प्रक्रिया नहीं है अपितु इसके अनेक उद्देश्य होते हैं अर्थात् साक्षात्कारकर्ता तथा साक्षात्कारदाता में वार्तालाप किसी विशेष उद्देश्य के लिए होता है। साक्षात्कार के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं–

1.प्रत्यक्ष सम्पर्क–साक्षात्कार का प्रथम उद्देश्य अनुसन्धानकर्ता को सूचनादाताओं से प्रत्यक्ष या आमने-सामने का सम्पर्क स्थापित करके उनसे आँकड़े संकलन करने में सहायता प्रदान करना है। आमने-सामने बैठकर केवल अनुसन्धानकर्ता सूचनादाताओं से खुलकर वार्तालाप ही नहीं करता, अपितु उनके चेहरे पर आने वाले मनोभावों को समझने का भी प्रत्यन करता है।

2.उपकल्पनाओं का निर्माण–साक्षात्कार उपकल्पनाओं का निर्माण करने का एक महत्त्वपूर्ण स्रोत है। इसका प्रयोग दो अथवा दो से अधिक चरों के परस्पर सम्बन्धों को जानने के लिए अर्थात् अन्वेषणात्मक ढंग से सूचना प्राप्त करके उपकल्पनाओं का निर्माण करने के लिए किया जाता है।

3.व्यक्तिगत सूचनाओं का संकलन–साक्षात्कार का उद्देश्य सूचनादाताओं के आन्तरिक जीवन में झाँकना है। पी0 वी0 यंग के अनुसार इसका उद्देश्य सूचनादाता के व्यक्तित्व का एक चित्र बनाना है। अतः यह सूचनादाताओं के आन्तरिक जीवन से सम्बन्धित, जिसे हम अवलोकन द्वारा नहीं देख सकते, आँकड़े एकत्रित करने में विशेष रूप से सहायक प्रविधि है।

4.अवलोकन का अवसर–साक्षात्कार द्वारा सूचनादाताओं के दोनों आन्तरिक एवं बाहरी जीवन के अध्ययन करने का अवसर मिलता है। अनुसन्धानकर्ता को सूचनादाताओं के व्यवहार का प्रत्यक्ष अवलोकन करने का भी अवसर प्राप्त होता हैं।

5.अन्य प्रविधियों को प्रभावपूर्ण बनाना–साक्षात्कार जहाँ एक ओर अपने में पूर्ण प्रविधि है, वहीं पर यह अन्य प्रविधियों की के प्रभाव को बढ़ाने की दृष्टि से एक पूरक प्रविधि के रूप में भी प्रयोग की जाती है। अनुसूची तथा अवलोकन में यह एक पूरक प्रविधि के रूप में प्रयोग में लाई जाती है। पी0 वी0 यंग के अनुसार, ''सामाजिक अनुसन्धान में साक्षात्कार कोई पृथक् उपकरण नहीं है अपितु यह अन्य विधियों एवं प्रविधियों का पूरक है। यह अध्ययन को गहन बनाता है और अन्य स्रोतों एवं साधनों द्वारा एकत्रित सूचनाओं को नियन्त्रित करता है।''

11.4 साक्षात्कार के प्रकार

सामाजिक अनुसन्धान में साक्षात्कार का प्रयोग विभिन्न रूपों में किया जाता है। साक्षात्कार के वर्गीकरण हेतु अनेक आधारों का प्रयोग किया जाता है जिनमें से अग्रलिखित प्रमुख हैं–

11.4.1उत्तरदाताओं की संख्या के आधार पर वर्गीकरण

उत्तरदाताओं की संख्या के आधार पर साक्षात्कार को निम्नांकित दो श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है–

1.व्यक्तिगत साक्षात्कार–इस प्रकार के साक्षात्कार में केवल दो व्यक्ति होते हैं अर्थात् इसमें अनुसन्धानकर्ता केवल एक ही सूचनादाता से एक समय पर वार्तालाप करता है। केवल दो व्यक्ति होने के कारण इस प्रकार के साक्षात्कार में वास्तविक सूचनाएँ सरलता से मिल जाती हैं तथा अनेक भावपूर्ण एवं विवादग्रस्त प्रश्नों का उत्तर भी मिल जाता है। परन्तु प्रत्येक व्यक्ति के साथ व्यक्तिगत सम्पर्क स्थापित करने के कारण यह प्रविधि अधिक खर्चीली एवं अधिक समय लेने वाली है। यदि बड़े पैमाने पर अध्ययन किया जा रहा है तो अनेक साक्षात्कारकर्ताओं की नियुक्ति तथा उनका प्रशिक्षण एक समस्या हो सकती है।

2.सामूहिक साक्षात्कार–इस प्रकार के साक्षात्कार में एक या एक से अधिक साक्षात्कारकर्ता अनेक उत्तरदाताओं (साक्षात्कारदाताओं) से समस्या से सम्बन्धित सूचना एकत्रित करने का प्रयास करते हैं। यह व्यक्तिगत साक्षात्कार से कम व्ययपूर्ण है और इनसे सूचनाएँ भी अधिक प्राप्त की जा सकती हैं। इस प्रकार के साक्षात्कार में गोपनीयता के अभाव के कारण सूचनादाता खुलकर बात नहीं कर पाते। परन्तु जो सूचनाएँ प्राप्त होती हैं वे अधिक विश्वसनीय होती हैं क्योंकि इनका दूसरे लोगों द्वारा अनुमोदन किया जाता है। संचार अनुसन्धानों; विशेष रूप से फिल्मों के प्रभाव जानने से सम्बन्धित अनुसन्धानों में इस प्रकार के साक्षात्कार का प्रयोग किया जाता है।

11.4.2 उद्देश्यों के आधार पर वर्गीकरण

साक्षात्कार का प्रयोग विविध प्रकार की परिस्थितियों में किया जाता है। उद्देश्य के आधार पर इसे मुख्य रूप से निम्नांकित तीन श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है–

1.निदानात्मक या लक्षण परीक्षक साक्षात्कार–जब साक्षात्कार का उद्देश्य किसी गम्भीर सामाजिक घटना, समस्या, परिस्थिति एवं अन्य किसी पहलू के कारणों की खोज करना अथवा इनकी जानकारी प्राप्त करना होता है तो इस प्रकार के साक्षात्कार को लक्षण परीक्षक साक्षात्कार कहा जाता है। इस प्रकार के साक्षात्कार का प्रयोग केवल व्यापक पैमाने पर आयोजित सर्वेक्षणों में ही किया जाता है। उदाहरण के लिए–छात्र असन्तोष, शिक्षित लोगों में बेरोजगारी इत्यादि समस्याओं की जानकारी प्राप्त करने के लिए किया गया साक्षात्कार लक्षण परीक्षक साक्षात्कार कहा जाएगा।

2.उपचारात्मक साक्षात्कार–यदि साक्षात्कार का उद्देश्य किसी समस्या के समाधान के बारे में सुझाव प्राप्त करना है ताकि समस्या का उपचार किया जा सके और परिस्थितियों में सुधार किया जा सके तो ऐसे साक्षात्कार को उपचारात्मक साक्षात्कार कहा जा सकता है। उदाहरण के लिए–

प्रधानाचार्य का छात्र नेताओं से कॉलेज में छात्र असन्तोष दूर करने एवं अनुशासन बनाए रखने के सुझावों पर वार्तालाप करना उपचारात्मक साक्षात्कार कहा जा सकता है।

3.अनुसन्धानात्मक साक्षात्कार–इस प्रकार के साक्षात्कार का प्रयोग सामान्यतः सामाजिक अनुसन्धान में अनुसन्धान समस्या से सम्बन्धित जानकारी प्राप्त करने के लिए किया जाता है। यह सूचनादाताओं के विचारों, प्रवृत्तियों एवं मूल्यों को जानने के लिए किया जाता है, अतः इसका क्षेत्र लक्षण परीक्षक साक्षात्कार तथा उपचारात्मक साक्षात्कार से अधिक व्यापक होता है।

10.4.3सम्पर्क के आधार पर वर्गीकरण

साक्षात्कारकर्ता तथा साक्षात्कारदाता में सम्पर्क के आधार पर साक्षात्कार का वर्गीकरण अग्रांकित दो श्रेणियों में किया जा सकता है–

1.प्रत्यक्ष साक्षात्कार–सामान्यतः साक्षात्कार प्रत्यक्ष साक्षात्कार ही होता है क्योंकि परिभाषा के अनुसार ही यह दो या अधिक व्यक्तियों का आमने-सामने बैठकर किसी विषय पर वार्तालाप करना है। इसे अनुसन्धानकर्ता को काल्पनिक रूप से सूचनादाता के आन्तरिक जीवन में प्रवेश के रूप में देखा गया है अर्थात् प्रत्यक्ष सम्पर्क ही साक्षात्कारकर्ता को साक्षात्कारदाता के मनोभावों एवं व्यवहार द्वारा उसके आन्तरिक जीवन के अध्ययन में सहायता देता है।

2.अप्रत्यक्ष साक्षात्कार–आमने-सामने न बैठ कर अप्रत्यक्ष रूप में; जैसे टेलीफोन द्वारा अनुसन्धानकर्ता द्वारा सूचनादाता से समस्या से सम्बन्धित बातों के बारे में वार्तालाप करके सूचना प्राप्त करना अप्रत्यक्ष साक्षात्कार कहा जाता है।

सम्पर्क की अवधि के आधार पर भी साक्षात्कार का वर्गीकरण किया जा सकता है; जैसे अल्पकालीन साक्षात्कार, जिसमें सम्पर्क की अवधि छोटी होती है जैसा कि सामान्यतः अनुसन्धानों में होता है, तथा दीर्घकालीन साक्षात्कार, जिसमें सम्पर्क की अवधि काफी लम्बी होती है। मनोचिकित्सीय साक्षात्कार सामान्यतः दीर्घकालीन अवधि के होते हैं।

11.4.4औपचारिकता के आधार पर वर्गीकरण

प्रश्न पूछे जाने की पद्धति तथा उत्तरों को लेखबद्ध करने में किस प्रकार का ढंग अपनाया जाता है इसके आधार पर भी वर्गीकरण किया जा सकता है।

औपचारिकता के आधार पर साक्षात्कार को निम्नांकित दो श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है–

1.औपचारिक साक्षात्कार–इस प्रकार के साक्षात्कार में साक्षात्कारकर्ता सूचनादाता से पहले से निर्मित प्रश्न (जोकि साक्षात्कार अनुसूची में लिखे हुए हैं) एक-एक करके पूछता है और उनके उत्तर वहीं पर लिखता जाता है। इस प्रकार के साक्षात्कार को नियन्त्रित साक्षात्कार, संचालित

साक्षात्कार, व्यवस्थित साक्षात्कार अथवा नियोजित साक्षात्कार भी कहा जाता है। इस प्रकार के साक्षात्कार में सूचनादाता से सम्बन्ध औपचारिक रूप में स्थापित किए जाते हैं तथा साक्षात्कारकर्ता पहले से निर्धारित प्रश्नों को उसी क्रम में पूछता है जिसमें कि उसने उन्हें अनुसूची में लिखा है। इसमें साक्षात्कारकर्ता को स्वेच्छा से प्रश्न पूछने और उत्तर लिखने की स्वतन्त्रता नहीं होती है।

2.अनौपचारिक साक्षात्कार–इस प्रकार के साक्षात्कार में साक्षात्कारकर्ता सूचनादाता से स्वतन्त्र रूप में अपनी अनुसन्धान की समस्या के विभिन्न पहलुओं पर वार्तालाप करता है। इसे अव्यवस्थित साक्षात्कार, अनियन्त्रित साक्षात्कार, असंचालित साक्षात्कार अथवा अनियोजित साक्षात्कार भी कहा जाता है। इसमें सूचनादाता कहानी के रूप में घटना का वर्णन करता जाता है तथा साक्षात्कारकर्ता समयानुकूल अपनी समस्या से सम्बन्धित प्रश्नों को पूछता जाता है परन्तु उत्तरों को वहीं पर लिखने का प्रयास नहीं करता। अतः वह अनौपचारिक रूप से होने वाले वार्तालाप से ही सूचना एकत्रित कर लेता है।

11.4.5पद्धतिशास्त्र के आधार पर वर्गीकरण

पद्धतिशास्त्र, अध्ययन पद्धति अथवा अध्ययन के क्षेत्र के आधार पर साक्षात्कार को अग्रांकित तीन श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है–

1.केन्द्रित साक्षात्कार–इस प्रकार के साक्षात्कार का प्रयोग सामान्यतः किसी सामाजिक घटना, परिस्थिति, फिल्म, रेडियो या टेलीविजन प्रोग्राम का सूचनादाताओं पर प्रभाव का अध्ययन करने के लिए किया जाता है। संचार अनुसन्धान में इसका अधिकतर प्रयोग किया जाता है। इसका प्रयोग सर्वप्रथम रोबर्ट के0 मर्टन (Robert K. Merton) ने जनसंचार साधनों (रेडियो) के प्रभाव का अध्ययन करने के लिए किया था। यह साक्षात्कार किसी विशेष घटना या उसके किसी विशेष पहलू से ही सम्बन्धित होता है।

2.गैर-निर्देशित साक्षात्कार–गैर-निर्देशित साक्षात्कार अनौपचारिक साक्षात्कार के समान ही है क्योंकि इसमें भी साक्षात्कारकर्ता पहले से निर्मित अनुसूची इत्यादि का प्रयोग न करके स्वतन्त्रतापूर्वक सूचनादाताओं से वार्तालाप करता है। इसमें भी सूचनादाता एक कहानी या विवरण के रूप में सूचना देता है। साक्षात्कारकर्ता उसे बीच में टोकता नहीं, चाहे वह कितने ही विस्तार से सूचना क्यों न दे। इस प्रकार का साक्षात्कार यद्यपि मानसिक स्थिति का अध्ययन करने के लिए प्रयोग में लाया जाता है, फिर भी इसका क्षेत्र केवल यहीं तक सीमित न होकर अधिक विस्तृत है। प्रश्न करने की स्वतन्त्रता के साथ-साथ असीमित क्षेत्र इस प्रकार के साक्षात्कार को विस्तृत रूप प्रदान करता है।

3.पुनरावृत्ति साक्षात्कार–यह वह साक्षात्कार है जिसमें अनुसन्धानकर्ता एक से अधिक बार साक्षात्कार करके सूचनादाता से सूचना एकत्रित करता है। इसका प्रयोग सामान्य रूप में परिवर्तन करने एवं सामाजिक तथा मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाओं के प्रभाव जानने के लिए किया जाता है। चुनाव अध्ययनों में पुनरावृत्ति साक्षात्कार किया जाता है। यह साक्षात्कार पैनल अध्ययन के नाम से जाना जाता है।

11.4.6संरचना के आधार पर वर्गीकरण

साक्षात्कार के समय पूछे जाने वाले प्रश्नों की संरचना या प्रकृति के आधार पर भी साक्षात्कार को निम्नांकित तीन श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है–

1.मतदान प्रकार का साक्षात्कार–इस प्रकार के साक्षात्कार में प्रतिबन्धित प्रश्नों की एक अनुसूची तैयार की जाती है तथा प्रश्नों के विभिन्न वैकल्पिक उत्तरों को भी सूचनादाता को बताकर उससे सही विकल्प जानने का प्रयास किया जाता है। इस प्रकार के साक्षात्कार में औपचारिक रूप से सम्बन्ध स्थापित किया जाता है तथा औपचारिक रूप में ही सभी प्रश्न उसी भाषा में पूछे जाते हैं जिसमें कि उनकी रचना की गई है। इस प्रकार के साक्षात्कार में समय कम लगता है। क्योंकि प्रत्युत्तर के विकल्प पहले से ही निश्चित कर लिए जाते हैं, अतः विश्लेषण भी सरल होता है। परन्तु यह साक्षात्कार सभी परिस्थितियों में सम्भव नहीं हो सकता।

2.खुला साक्षात्कार–इस प्रकार के साक्षात्कार में भी पहले से निर्मित प्रश्नों को ही पूछा जाता है परन्तु वैकल्पिक उत्तर नहीं बताए जाते। सूचनादाता स्वयं सोच-विचार कर प्रश्नों के उत्तर देता है। कई बार साक्षात्कारकर्ता सुविधानुसार प्रश्नों में आवश्यक परिवर्तन भी कर लेता है।

3.अप्रतिबन्धित साक्षात्कार–यह साक्षात्कार अनौपचारिक साक्षात्कार के समान ही होता है क्योंकि इसमें न तो प्रश्न और न ही उनके उत्तर पूर्व निर्धारित होते हैं। इसमें लचीलापन अधिक होता है और सूचना भी अधिक गहराई में प्राप्त की जा सकती है। परन्तु इस प्रकार के साक्षात्कार से प्राप्त सूचना का विश्लेषण करने में काफी कठिनाई होती है। कुछ लोग अप्रतिबन्धित साक्षात्कार को पुनः केन्द्रित साक्षात्कार, लक्षण परीक्षक साक्षात्कार तथा गैर-निर्देशित साक्षात्कार में विभाजित करते हैं।

11.5 साक्षात्कार की प्रक्रिया के चरण

साक्षात्कार सामाजिक अन्तर्क्रिया की एक ऐसी प्रक्रिया है जो देखने में तो सरल लगती है परन्तु वास्तव में यह एक जटिल प्रक्रिया है। साक्षात्कार की प्रक्रिया को एक निश्चित ढंग से करना पड़ता है तथा यदि इसे सोच-विचार कर एवं विधिवत् रूप से नियोजित करके नहीं किया जाता तो अनुसन्धानकर्ता के सामने अनेक समस्याएँ आ सकती हैं। साक्षात्कार की सम्पूर्ण प्रक्रिया को तीन प्रमुख चरणों में विभाजित किया जा सकता है–साक्षात्कार की प्रारम्भिक तैयारी, साक्षात्कार

की मुख्य प्रक्रिया तथा साक्षात्कार का समापन एवं प्रतिवेदन। इन तीनों चरणों का संक्षिप्त परिचय निम्न प्रकार है–

11.5.1साक्षात्कार की प्रारम्भिक तैयारी

साक्षात्कार करने के पहले इसके लिए पूरी तरह से तैयारी करना अनिवार्य है। साक्षात्कार की परिस्थितियों एवं सूचनादाताओं के बारे में पहले से प्राप्त जानकारी बाद में आने वाली अनेक कठिनाइयों से बचा सकती है।

साक्षात्कार की प्रारम्भिक तैयारी के लिए साक्षात्कारकर्ता को निम्नलिखित बातों के बारे में स्पष्ट जानकारी होना अनिवार्य है–

1.समस्या का ज्ञान–साक्षात्कार करने से पहले अनुसन्धानकर्ता को अपनी अनुसन्धान समस्या के बारे में पूर्ण ज्ञान होना चाहिए तथा समस्या के विभिन्न पक्षों एवं पहलुओं पर पहले से ही सोच-विचार कर लेना चाहिए ताकि जितना समय उसे मिल पाए उसमें वह केवल सम्बन्धित सूचनाएँ ही उपलब्ध कर सके। अन्यथा सारा समय व्यर्थ इधर-उधर की बातों में ही निकल सकता है। समस्या का कौन-सा पक्ष अधिक महत्त्वपूर्ण है तथा किसके बारे में कितनी जानकारी प्राप्त करनी है इसका पूर्व ज्ञान होना अनिवार्य है।

2.उत्तरदाताओं का चयन–अनुसन्धानकर्ता को समस्या के सभी पक्षों की जानकारी एवं अपेक्षाकृत महत्त्व निर्धारित कर लेने के बाद सूचनादाताओं का चयन करना चाहिए। सूचनादाताओं की संख्या उपलब्ध समय एवं साधनों को ध्यान में रखकर निश्चित की जानी चाहिए।

3.उत्तरदाताओं के बारे में प्रारम्भिक जानकारी–उत्तरदाताओं का चयन कर लेने के पश्चात् अनुसन्धानकर्ता को सूचनादाताओं की दिनचर्या के बारे में पता लगाना चाहिए। साथ ही, उनकी योग्यता, स्वभाव, अवकाश के समय इत्यादि के बारे में भी प्रारम्भिक जानकारी प्राप्त कर लेनी चाहिए।

4.साक्षात्कार के लिए समय एवं स्थान का निर्धारण–साक्षात्कार की प्रारम्भिक तैयारी में साक्षात्कारदाताओं का चयन एवं उनके बारे में प्रारम्भिक जानकारी प्राप्त करके उनसे समय एवं स्थान का निर्धारण करना होता है। इसमें साक्षात्कारदाता की सुविधा के अनुसार समय तथा स्थान का निर्धारण किया जाना चाहिए। समय तथा स्थान का निर्धारण व्यक्तिगत सम्पर्क द्वारा, पत्र व्यवहार द्वारा या टेलीफोन पर बातचीत करके तय किया जा सकता है। पी0 वी0 यंग के अनुसार ऐसा स्थान सबसे उपयुक्त होता है जहाँ विश्वास हो कि साक्षात्कारदाता सुविधापूर्वक उपलब्ध होगा।

5.साक्षात्कार यन्त्र की रचना–साक्षात्कार की प्रारम्भिक तैयारी में अन्तिम चरण साक्षात्कार यन्त्र (उपकरण) का निर्माण करना है। अनुसन्धानकर्ता क्योंकि साक्षात्कारदाताओं का चयन तथा उनके

बारे में प्रारम्भिक जानकारी प्राप्त कर चुका है अतः उसे यह निर्णय ले लेना चाहिए कि साक्षात्कारदाताओं से आँकड़े प्राप्त करने के लिए किस यन्त्र का प्रयोग किया जाना है। यदि साक्षात्कार निर्देशिका या साक्षात्कार अनुसूची का प्रयोग करना है तो इनकी रचना कर ली जानी चाहिए। यदि अनौपचारिक या गैर-निर्देशक साक्षात्कार द्वारा आँकड़े एकत्रित करने हैं तो भी साक्षात्कार की पूर्ण योजना बना ली जानी चाहिए। कई अनुसन्धानों में पहले एक कार्यवाहक यन्त्र बना लिया जाता है तथा इसे सूचनादाताओं पर लागू करके इसकी कमियों को दूर करके फिर एक मानक यन्त्र का निर्माण किया जाता है।

11.5.2साक्षात्कार की मुख्य प्रक्रिया

साक्षात्कार की प्रक्रिया के लिए प्रारम्भिक तैयारी कर लेने के पश्चात् इसका दूसरा प्रमुख चरण मुख्य साक्षात्कार का संचालन करना है। यह सबसे महत्त्वपूर्ण चरण है क्योंकि इसमें ही अपनी अनुसन्धान समस्या से सम्बन्धित प्रश्न पूछ कर उनके उत्तर साक्षात्कारदाताओं से प्राप्त करने हैं। साक्षात्कार की मुख्य प्रक्रिया निम्न प्रकार से प्रारम्भ की जा सकती है–

1.सूचनादाताओं से सम्पर्क स्थापित करना–प्रारम्भिक तैयारी कर लेने के पश्चात् अनुसन्धानकर्ता को सूचनादाता से पूर्व निश्चित समय एवं स्थान पर सम्पर्क स्थापित करना चाहिए। अनुसन्धानकर्ता का व्यवहार सौम्य होना चाहिए तथा उसे सूचनादाता का उचित अभिवादन करना चाहिए।

2.उद्देश्य बताना–सूचनादाता से सम्पर्क स्थापित करने के पश्चात् उसे अपना उद्देश्य बताना चाहिए। साक्षात्कारकर्ता को अपना पूरा परिचय, सूचनादाता को साक्षात्कार के उद्देश्य तथा उसका चयन इत्यादि कैसे किया गया सभी बातें स्पष्ट बता देनी चाहिए। पी0 वी0 यंग के अनुसार सम्पर्क स्थापित करके तथा सांस्कृतिक प्रतिमानों द्वारा निर्धारित पारस्परिक अभिवादन कर लेने के पश्चात् साक्षात्कारदाता को यह बता देना चाहिए कि इस भेंट का क्या उद्देश्य है, क्योंकि सूचनादाता भी यह जानने का अधिकारी होता है कि उसका साक्षात्कार क्यों किया जा रहा है, विशेष रूप से जबकि इसमें उसका अधिक समय एवं श्रम व्यय होता है।

3.सहयोग याचना–सम्पर्क स्थापित करके तथा भेंट का उद्देश्य बताने के पश्चात् साक्षात्कारकर्ता को सूचनादाता से इस कार्य में सहयोग देने की याचना की जानी चाहिए। उसे यह स्पष्ट आश्वासन देना अनिवार्य है कि उसके द्वारा दी गई सूचना गुप्त रखी जाएगी और उसका प्रयोग केवल अनुसन्धान के लिए ही किया जाएगा। गुड एवं हैट का कहना है कि जब सूचनादाता साक्षात्कारकर्ता द्वारा बताए गए अनुसन्धान के उद्देश्यों को स्वीकार कर लेता है तो यह समझ लेना चाहिए कि दोनों के बीच उपयुक्त एवं उन्मुक्त वार्तालाप की स्थिति उत्पन्न हो गई है।

4.साक्षात्कार का प्रारम्भ–उन्मुक्त वार्तालाप की स्थिति पैदा हो जाने के पश्चात् साक्षात्कारकर्ता को विधिवत् रूप से प्रश्न पूछना शुरू करना चाहिए। प्रश्न करते समय साक्षात्कारकर्ता का व्यवहार सहानुभूतिपूर्ण एवं मृदुल होना चाहिए तथा उसे गम्भीर एवं निष्पक्ष रूप से साक्षात्कार का संचालन करना चाहिए। साक्षात्कार की पूरी प्रक्रिया में उत्तरदाता को यह अनुभव नहीं होना चाहिए कि उसे बेवकूफ बनाया जा रहा है या व्यर्थ में ही उसका समय बरबाद किया जा रहा है।

5.अन्वेषक एवं बचाव वाले प्रश्न–साक्षात्कारकर्ता को जहाँ एक ओर समस्या के बारे में अधिक-से-अधिक जानकारी प्राप्त करने के लिए समय-समय पर अन्वेषक प्रश्न पूछने चाहिए वहीं पर ऐसे प्रश्न प्रत्यक्ष रूप से नहीं पूछे जाने चाहिए जिनसे सूचनादाता के क्रुद्ध होने या चिढ़ जाने या उसकी मनोभावनाओं को किसी प्रकार की ठेस पहुँचने की सम्भावना होती है। आदेशात्मक, उपदेशात्मक तथा पथ-प्रदर्शक प्रश्न यथासम्भव नहीं पूछे जाने चाहिए क्योंकि उनसे साक्षात्कारदाता प्रभावित हो सकता है या उसके द्वारा दी गई सूचना में पक्षपात की सम्भावना बढ़ सकती है।

6.उत्साहवर्धन तथा पुनः स्मरण–साक्षात्कार को सफल बनाने के लिए प्रश्न पूछते समय उत्तरदाता को प्रोत्साहन देते रहना अत्यन्त अनिवार्य है। ऐसे वाक्य जैसे 'आपने तो बहुत उपयोगी सूचना दी'; 'मुझे इस बारे में कुछ पता नहीं था'; 'आपकी स्मरण शक्ति बहुत अच्छी है'; 'आपने पूरी घटना ही स्पष्ट कर दी'; 'आपने अत्यन्त दुर्लभ एवं बहुमूल्य बातें बताई हैं' इत्यादि का समयानुकूल प्रयोग करके उत्तरदाता का उत्साह बढ़ाया जा सकता है। परन्तु इन वाक्यों का प्रयोग इतना अधिक भी नहीं होना चाहिए की सूचनादाता यह अनुभव करने लगे कि उसकी चापलूसी की जा रही है। साथ ही, कभी-कभी उत्तरदाता मुख्य प्रश्न से हटकर इधर-उधर की बातें करने लगता है। ऐसे अवसरों पर साक्षात्कार का क्रम जारी रखने के लिए पुनः स्मरण के लिए 'आप बता रहे थे कि.....'; 'फिर क्या हुआ'; 'आपकी उस विषय के बारे में क्या प्रतिक्रिया हुई' इत्यादि वाक्यों का प्रयोग किया जा सकता है।

7.सन्तुलन बनाए रखना–कई बार साक्षात्कार में सन्तुलन बिगड़ जाता है क्योंकि हो सकता है कि उत्तरदाता अपने वक्तव्य में इतना खो जाए कि वह समस्या से बहुत दूर चला जाए या किसी प्रश्न से उसकी भावना को ठेस पहुँची है, तो ऐसे अवसरों पर सन्तुलन बनाए रखना अत्यन्त अनिवार्य है। कई बार स्वयं अनुसन्धानकर्ता उत्तरदाता के व्यवहार से क्रोधित हो सकता है जोकि उचित नहीं है। पी0 वी0 यंग के अनुसार एक चतुर साक्षात्कारकर्ता को ऐसा वातावरण उत्पन्न कर लेना चाहिए कि जिसमें साक्षात्कारदाता अपनी कहानी को निजी रूप में अपनी स्वाभाविक गति से सुना सके। सूचनादाता सहानुभूतिपूर्वक सुनने वालों को अधिक अच्छा समझते हैं अतः सूचनादाता को निर्विरोध अपनी बात कहने देना चाहिए।

8.साक्षात्कार अभिलेखन–यदि साक्षात्कार में किसी औपचारिक यन्त्र; जैसे साक्षात्कार अनुसूची का प्रयोग किया गया है तो उत्तरों को साथ-साथ लिखा जा सकता है परन्तु अधिकांश साक्षात्कार अनौपचारिक एवं गैर-निर्देशित होते हैं तथा स्वाभाविकता बनाए रखने के लिए कई बार कापी-पेन्सिल इत्यादि सूचनादाता के सामने नहीं निकाली जा सकती। ऐसी परिस्थितियों में अनुसन्धानकर्ता की स्मरण शक्ति अच्छी होना अनिवार्य है। यदि अनौपचारिक साक्षात्कार किया गया है तो साक्षात्कारकर्ता को साक्षात्कार के समापन के तुरन्त पश्चात् सूचनादाता से प्राप्त सूचना को लेखबद्ध कर लेना चाहिए। यदि अनुसन्धानकर्ता संकेत-लिपि जानता है या परिस्थिति किसी ऐसे व्यक्ति को साथ ले जाने की अनुमति देती है जो संकेत-लिपि जानता है या जिसमें टेपरिकॉर्डर का प्रयोग सम्भव हो तो लेखन कार्य में आने वाली अनेक असुविधाओं से बचा जा सकता है।

11.5.3साक्षात्कार का समापन एवं प्रतिवेदन

कई बार (विशेष रूप से यदि गैर-निर्देशित ढंग से साक्षात्कार किया गया है) साक्षात्कार का आलेखन साक्षात्कार के समापन के पश्चात् तुरन्त बाद घर जाकर किया जाता है। जिस प्रकार साक्षात्कार का प्रारम्भ सौम्य एवं मधुर वातावरण में किया जाता है, ठीक उसी प्रकार इसकी समाप्ति भी ऐसे ही वातावरण में होनी चाहिए। साक्षात्कारदाता को इस कार्य में सहयोग देने के लिए धन्यवाद दिया जाना चाहिए तथा उसे पुनः यह आश्वासन दिया जाना चाहिए कि उसके द्वारा दी गई सूचना गुप्त रखी जाएगी और उसका प्रयोग केवल अनुसन्धान के लिए ही किया जाएगा। साक्षात्कार तभी सफल माना जाता है जबकि इसकी समाप्ति पर भी उत्तरदाता प्रसन्नचित्त एवं सन्तुष्ट मुद्रा में हो और उसके मन में किसी प्रकार का भय, सन्देह या कोई अन्य दबाव नहीं हो। हो सकता है कि सूचनादाता को इस बात की आत्म-ग्लानि हो रही हो कि उसने यह सब बातें एक अजनबी को क्यों बताई हैं अथवा हो सकता है कि वह बहुत थका हुआ अनुभव कर रहा हो अतः उसे पुनः आश्वस्त करना तथा समाप्ति भी मधुर एवं अनौपचारिक वातावरण में करना अनिवार्य है। प्रतिवेदन तैयार करने में अनुसन्धानकर्ता को निष्पक्ष होना चाहिए तथा साक्षात्कार के तुरन्त पश्चात् प्रतिवेदन तैयार कर लेना चाहिए ताकि कोई महत्त्वपूर्ण बात रह न जाए।

बर्गेस (Burgess) के अनुसार प्रतिवेदन निश्चय ही सूचनादाता के बाहरी व्यवहार का वर्णन-मात्र नहीं है अपितु यह उसके व्यवहार, उसके जीवन की योजना तथा वर्तमान समस्या के प्रति उसकी मनोवृत्ति के जीवन इतिहास पर भी प्रकाश डालता है।

11.6 साक्षात्कार की समस्याएँ

सामाजिक अनुसन्धान में विश्वसनीय एवं प्रमाणित आँकड़ों का संकलन करना एक महत्त्वपूर्ण चरण है जिसका निष्पादन अनेक प्रविधियों द्वारा किया जाता है। साक्षात्कार द्वारा विश्वसनीय

एवं प्रमाणित आँकड़ों का संकलन करना एक कठिन कार्य है क्योंकि सम्पूर्ण प्रक्रिया में कुछ त्रुटियाँ रह जाती हैं जिन्हें हम साक्षात्कार की समस्याएँ कह सकते हैं। इन त्रुटियों को चार प्रमुख श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है–साक्षात्कारकर्ता से सम्बन्धित त्रुटियाँ, साक्षात्कार यन्त्र से सम्बन्धित त्रुटियाँ, साक्षात्कार संचालन से सम्बन्धित त्रटियाँ तथा उत्तरदाताओं से सम्बन्धित त्रुटियाँ।

इनका संक्षिप्त वर्णन निम्न प्रकार है–

1.साक्षात्कारकर्ता से सम्बन्धित त्रुटियाँ–साक्षात्कारकर्ता की कुछ व्यक्तिगत विशेषताएँ साक्षात्कार द्वारा एकत्रित आँकड़ों की विश्वसनीयता एवं प्रामाणिकता को प्रभावित करती हैं, जिनमें से प्रमुख निम्नांकित हैं–

(i)साक्षात्कारकर्ता की आयु, लिंग तथा शिक्षा,

(ii)साक्षात्कारकर्ता की जाति, धर्म तथा सामाजिक वर्ग,

(iii)साक्षात्कारकर्ता का व्यक्तित्व,

(iv) साक्षात्कारकर्ता का अनुभव,

(v)साक्षात्कारकर्ता का दृष्टिकोण एवं विचारधारा तथा

(vi)साक्षात्कारकर्ता की निजी आशाएँ एवं अभिलाषाएँ।

2.साक्षात्कार यन्त्र से सम्बन्धित त्रुटियाँ–साक्षात्कार यन्त्र की त्रुटियाँ भी आँकड़ों की विश्वसनीयता एवं प्रामाणिकता को प्रभावित कर सकती हैं। साक्षात्कार यन्त्र की प्रमुख त्रुटियाँ निम्नांकित हैं–

(i)साक्षात्कार अनुसूची का अत्यधिक लम्बा होना,

(ii)प्रश्नों का उचित क्रम न होना,

(iii)प्रश्नों की जटिल संरचना,

(iv)प्रश्नों की अस्पष्ट एवं दोषपूर्ण रचना तथा

(v)संवेगात्मक या उत्तेजक प्रश्नों का अनुसूची में होना।

3.साक्षात्कार संचालन से सम्बन्धित त्रुटियाँ–यदि साक्षात्कार की मुख्य प्रक्रिया का संचालन भी ठीक प्रकार से न किया जाए तो भी आँकड़ों की विश्वसनीयता एवं प्रामाणिकता प्रभावित होती है। इसमें हम निम्नांकित त्रुटियों को सम्मिलित कर सकते हैं–

(i)साक्षात्कार के लिए अनुपयुक्त स्थान का चयन,

(ii)साक्षात्कार के लिए अनुपयुक्त समय का चयन,

(iii)सूचनादाता से उचित सम्पर्क (Rapport) का अभाव,

(iv)प्रश्नों को ठीक प्रकार से न पूछना,

(v)प्रत्युत्तरों को तोड़-मरोड़ या अपने दृष्टिकोण के अनुकूल करके लिखना तथा

(vi)संकेतन (Coding) से सम्बन्धित अन्तर।

4.उत्तरदाताओं से सम्बन्धित त्रुटियाँ–कई बार उत्तरदाताओं से ठीक प्रकार से सम्पर्क स्थापित न हो पाने के कारण भी अनेक त्रुटियाँ आँकड़ों की विश्वसनीयता एवं प्रामाणिकता को प्रभावित करती हैं। उत्तरदाताओं से सम्बन्धित प्रमुख त्रुटियाँ निम्नांकित हैं–

(i)उत्तरदाताओं की सही प्रत्युत्तर न देने की इच्छा,

(ii)उत्तरदाताओं की अनुसन्धान की समस्या के प्रति असम्बद्धता,

(iii)उत्तरदाताओं के व्यक्तिगत दृष्टिकोण एवं विचारधाराएँ,

(iv)उत्तरदाताओं की दोषपूर्ण स्मृति,

(v)उत्तरदाताओं के मन में प्रश्नों के बारे में सन्देह तथा

(vi)उत्तरदाताओं की स्थिति।

उपर्युक्त चारों प्रकार की त्रुटियाँ साक्षात्कार द्वारा प्राप्त की गई सूचना की विश्वसनीयता एवं प्रामाणिकता को प्रभावित करती हैं। परन्तु यदि साक्षात्कार पूर्व-नियोजित रूप से तथा सावधानीपूर्वक किया जाए तो अनेक त्रुटियों की सम्भावना समाप्त की जा सकती है।

11.7 साक्षात्कार के समय रखी जाने वाली सावधानियाँ

साक्षात्कार की त्रुटियों को निम्नांकित सावधानियाँ रखकर यथासम्भव दूर किया जा सकता है–

1.उत्तरदाता से उचित प्रकार से सम्पर्क स्थापित किया जाना चाहिए।

2.साक्षात्कार के लिए उपयुक्त स्थान एवं समय का चयन किया जाना चाहिए।

3.यदि साक्षात्कार अनुसूची का प्रयोग किया जा रहा है तो उसमें अत्यधिक प्रश्नों को सम्मिलित नहीं किया जाना चाहिए। यथासम्भव अनावश्यक प्रश्न नहीं पूछे जाने चाहिए।

4.प्रश्नों की भाषा, रचना तथा क्रम ठीक होना चाहिए।

5.साक्षात्कार में ऐसे प्रश्नों को सम्मिलित नहीं किया जाना चाहिए जो आदेशात्मक अर्थात् आदेश देने वाले, उपदेशात्मक अर्थात् उपदेश देने वाले, निषेधात्मक अर्थात् किसी बात के लिए मना करने वाले तथा संकेतक या प्रथप्रदर्शक अर्थात् विशेष उत्तर की ओर संकेत करने वाले हों। साथ ही, ऐसे प्रश्न भी नहीं पूछे जाने चाहिए जिनसे सूचनादाताओं की मनोभावनाएँ उत्तेजित हों या उनमें हीनता की भावना आ जाए।

6.साक्षात्कारकर्ता प्रशिक्षित होना चाहिए।

7.उत्तरदाता को साक्षात्कार के समय प्रोत्साहन देते रहना चाहिए।

8.सूचनादाता की सभी बातों को सहानुभूतिपूर्वक सुना जाना चाहिए चाहे वे अनुसन्धान समस्या से असम्बन्धित ही क्यों न हों।

9.साक्षात्कारकर्ता को सूचनादाता की आयु एवं स्थिति के आधार पर अभिवादन एवं सम्मान किया जाना चाहिए।

10.साक्षात्कार तथा लेखन में अधिक समय नहीं होना चाहिए।

11.8 साक्षात्कार की उपयोगिता

साक्षात्कार का यदि हम सामाजिक अनुसन्धान में सूचना संकलन करने की एक प्रविधि के रूप में मूल्यांकन करें तो अन्य प्रविधियों की तरह इसके भी कुछ गुण हैं तथा कुछ दोष। साक्षात्कार क्योंकि सूचनादाता के साथ प्रत्यक्ष सम्पर्क का अवसर प्रदान करता है अतः यह बाहरी व्यवहार एवं आन्तरिक विचारों एवं मनोवृत्तियों दोनों का अध्ययन करने में अति उपयोगी प्रविधि है।

इसके प्रमुख गुण निम्नांकित रूप से स्पष्ट किए जा सकते हैं–

1.विस्तृत सूचनाओं की प्राप्ति–साक्षात्कार सभी प्रकार की सूचनाएँ संकलन करने की एक अत्यन्त सरल प्रविधि है। इसके द्वारा सभी प्रकार के सूचनादाताओं, चाहे वे शिक्षित हों या अशिक्षित अथवा वे किसी भी वर्ग से सम्बन्धित क्यों न हों, से सूचना संकलित की जा सकती है।

2.अमूर्त घटनाओं का अध्ययन–साक्षात्कार अमूर्त घटनाओं तथा अदृश्य तथ्यों; जैसे व्यक्ति की मानसिक स्थिति के अध्ययन में सहायता देता है। इन घटनाओं एवं अदृश्य तथ्यों से सम्बन्धित एवं प्रभावित व्यक्तियों से साक्षात्कार द्वारा सूचना एकत्रित करके उनके बारे में ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है।

3.सामाजिक-मनोवैज्ञानिक अध्ययनों में सहायक–साक्षात्कार विशेष रूप से व्यक्ति के सामाजिक- मनोवैज्ञानिक अध्ययन करने में अति उपयोगी प्रविधि है। इसके द्वारा सूचनादाताओं के मनोभावों के उतार-चढ़ाव, उनकी धारणाओं एवं दृष्टिकोणों तथा आन्तरिक विचारों एवं उद्वेगों का अध्ययन किया जा सकता है। क्योंकि इसके द्वारा अनुसन्धानकर्ता सूचनादाता, जोकि उसके लिए अपेक्षाकृत अजनबी होता है, के जीवन में काल्पनिक रूप से प्रवेश करता है अतः यह उसकी आन्तरिक स्थिति को समझने में अत्यन्त उपयोगी है।

4.भूतकालीन घटनाओं का अध्ययन–साक्षात्कार द्वारा भूतकाल में घटित हुई घटनाओं का वास्तविक परिचय भी मिल जाता है। भूतकाल में घटित घटना से प्रभावित सूचनादाता उस घटना का वर्णन करके अनुसन्धानकर्ता को उसकी यथार्थ जानकारी दे सकता है। यदि किसी विशेष घटना द्वारा प्रभावित व्यक्ति उस घटना के बारे में न बताए तो फिर ऐसी घटनाओं का अध्ययन ही नहीं किया जा सकता।

5.सूचनाओं की जाँच–साक्षात्कार द्वारा प्राप्त सूचनाओं की जाँच भी सरलता से की जा सकती है। एक कुशल साक्षात्कारकर्ता सूचनादाता के चेहरे के मनोभावों तथा साक्षात्कार के समय अन्य अनेक बातों का अवलोकन करके उसके द्वारा बताई जा रही बातों का मूल्यांकन कर लेता है। साथ ही, यदि वह कोई अस्पष्ट बात बताता है तो अनुसन्धानकर्ता तुरन्त उसका स्पष्टीकरण ले सकता है।

6.अन्तःप्रेरणा की सुविधा–साक्षात्कार क्योंकि साक्षात्कारकर्ता तथा साक्षात्कारदाता की आमने-सामने की बैठक है अतः दोनों एक-दूसरे को प्रेरित एवं प्रोत्साहित करते हैं। अन्तः प्रेरणा के कारण जो सूचना सूचनादाता साक्षात्कार द्वारा देता है वह किसी भी प्रविधि द्वारा उपलब्ध नहीं हो सकती।

7.लचीलापन–साक्षात्कार की प्रविधि विषय-वस्तु एवं इसके संचालन दोनों ही दृष्टि से अत्यधिक लचीली है जिसके कारण इससे कई बार अनेक ऐसे तथ्य भी सामने आ जाते हैं जिनका अनुसन्धानकर्ता अनुमान भी नहीं लगा सकता।

8.प्रश्नों को अच्छी तरह से समझने का अवसर–अनुसन्धानकर्ता का साक्षात्कार में सूचनादाता से सीधा सम्पर्क होता है जिसके कारण सूचनादाता प्रश्नों को भली-भाँति समझ सकता है। यदि प्रश्नों को समझने में उसे किसी प्रकार की कठिनाई हो रही है तो वह साक्षात्कारकर्ता द्वारा उनका स्पष्टीकरण करवा लेता है।

9.अशिक्षित एवं कम पढ़े-लिखे व्यक्तियों से सूचना संकलन करने में सहायक–साक्षात्कार सभी प्रकार के सूचनादाताओं से, चाहे वे पढ़े-लिखे हैं या अनपढ़, सूचना संकलन करने में सहायक प्रविधि है। अनपढ़ एवं कम पढ़े-लिखे लोगों से भी उनकी भाषा में प्रश्न पूछकर समस्या के बारे में उनकी राय प्राप्त की जा सकती है।

10.प्रत्युत्तर न मिलने की सम्भावना की समाप्ति–साक्षात्कार क्योंकि सूचनादाता से प्रत्यक्ष एवं आमने-सामने का सम्पर्क स्थापित करने का अवसर प्रदान करता है अतः इससे प्रत्युत्तर न मिलने की सम्भावना बिल्कुल समाप्त हो जाती है। प्रत्युत्तर न देने से सम्बन्धित जो समस्याएँ हैं उनका समाधान प्रत्यक्ष सम्पर्क के परिणामस्वरूप सम्भव है।

11.9 साक्षात्कार की सीमाएँ

यद्यपि साक्षात्कार सभी प्रकार के सूचनादाताओं से सूचना संकलन करने की सर्वोत्तम प्रविधि है फिर भी यह दोषमुक्त नहीं है।

इसमें पाए जाने वाले मुख्य दोष निम्नलिखित हैं–

1.स्मृति पर निर्भरता–साक्षात्कार में सामान्यतः सूचनाओं को साक्षात्कार करते समय लिख पाना सम्भव नहीं होता, अतः साक्षात्कार के बाद प्राप्त सूचनाएँ लिखने में अनेक महत्त्वपूर्ण तथ्यों के

दोषपूर्ण स्मृति के कारण छूटने की सम्भावना बनी रहती है। यदि किसी भूतकालीन घटना का अध्ययन किया जा रहा है तो जरूरी नहीं है कि उस घटना से प्रभावित व्यक्ति उसका विवरण ज्यों-का-त्यों दे ही सकें।

2.**मूल्यों में भिन्नता**–यदि अनुसन्धानकर्ता तथा सूचनादाता की सामाजिक पृष्ठभूमि में काफी अन्तर है (जैसा कि अधिकतर होता है), दोनों के घटना के बारे में पृथक् दृष्टिकोण हैं तो साक्षात्कार द्वारा प्राप्त सूचनाओं की स्वाभाविकता तथा विश्वसनीयता प्रभावित हो सकती है।

3.**अनावश्यक सूचनाएँ**–साक्षात्कार द्वारा प्राप्त सूचनाओं में बहुत-सी बातें तो अनावश्यक होती हैं क्योंकि सूचनादाता अनेक बातों को बढ़ा-चढ़ा कर बताता है तथा अनेक असम्बन्धित बातें बताता है। सूचनादाता पर आश्रित होने के कारण कई बार अनुसन्धानकर्ता को अनावश्यक बातें भी सुननी पड़ती हैं।

4.**व्यक्तिगत पक्षपात**–साक्षात्कार में व्यक्तिगत अभिनति अथवा पक्षपात की सम्भावना अत्यधिक रहती है क्योंकि सूचनादाता द्वारा बताई गई सूचना को केवल अनुसन्धानकर्ता ही जानता है तथा यदि वह चाहे तो प्राप्त सूचना एवं आँकड़ों को अपने दृष्टिकोण के अनुरूप बनाकर प्रस्तुत कर सकता है। साथ ही, यदि सूचनादाता के मनोभाव अनुसन्धानकर्ता को प्रभावित कर दें तो वह उसके द्वारा दी गई सूचनाओं को उसके पक्ष में तोड़-मरोड़ कर प्रस्तुत कर सकता है।

5.**हीनता की भावना**–अधिकतर साक्षात्कारों में सूचनादाता अनुसन्धानकर्ता के व्यक्तित्व तथा समस्या के बारे में उसके ज्ञान से इतना अधिक प्रभावित हो जाता है कि उसमें हीनता की भावना आ जाती है जिसके कारण वह सूचनाएँ बढ़ा-चढ़ा कर देता है ताकि उसकी हीन भावनाएँ प्रकट न हो सकें। इससे सूचनाओं की विश्वसनीयता प्रभावित होती है।

6.**साक्षात्कारदाताओं पर निर्भरता**–साक्षात्कार प्रविधि में अनुसन्धानकर्ता को केवल साक्षात्कारदाताओं पर ही निर्भर रहना पड़ता है। उनसे साक्षात्कार का समय लेना तथा साक्षत्कार हेतु उन्हें तैयार करना एक कठिन कार्य है। साथ ही, अपने जीवन से सम्बन्धित व्यक्तिगत बातें सूचनादाता अजनबी अनुसन्धानकर्ता के सामने प्रकट नहीं होने देना चाहता।

7.**व्यक्तिनिष्ठा की सम्भावना**–साक्षात्कार प्रविधि में व्यक्तिनिष्ठा की सम्भावना बनी रहती है। क्योंकि साक्षात्कार कर्ता को साक्षात्कार करने एवं सूचना को लेखबद्ध करने में समय का अन्तर हो जाने के कारण साक्षात्कार कर्ता के लिए सूचनादाता द्वारा दी गई सूचनायें को उसी रूप में याद रख पाना सम्भव नहीं हो पाता।

8.**प्रशिक्षित साक्षात्कारकर्ताओं की समस्या**–साक्षात्कार जितनी सरल प्रक्रिया लगती है वास्तव में यह व्यवहार में उतनी ही जटिल प्रक्रिया है। इसमें साक्षात्कारकर्ता का कुशल, अनुभवी, लगनवान, बुद्धिमान, मनोवैज्ञानिक दृष्टि से कुशल तथा अनुसन्धान की दृष्टि से प्रशिक्षित होना

अनिवार्य है। सामान्यतः प्रशिक्षित साक्षात्कारकर्ताओं का मिलना एक कठिन कार्य है। यदि अप्रशिक्षित कार्यकर्ताओं को इस कार्य के लिए नियुक्त कर लिया जाए तो सूचनाओं की विश्वसनीयता प्रभावित हो सकती है। साथ ही, अगर साक्षात्कारकर्ता अनुसन्धान के बीच में ही अपना कार्य अपूर्ण छोड़कर चला जाता है और उसकी जगह किसी दूसरे व्यक्ति को नियुक्त करना पड़े तो भी सूचनाओं में काफी अन्तर हो सकता है।

9.अधिक खर्चीली–साक्षात्कार में प्रत्येक सूचनादाता से समय एवं स्थान तय करने तथा फिर साक्षात्कार करने के लिए अनुसन्धानकर्ता को व्यक्तिगत सम्पर्क स्थापित करना पड़ता है। अतः यह प्रविधि अन्य प्रविधियों की अपेक्षा अधिक खर्चीली है। यदि सूचनादाता अधिक व्यापक क्षेत्र में फैले हुए हैं तो उनसे सम्पर्क स्थापित करना और भी कठिन एवं खर्चीला हो सकता है।

पी0 वी0 यंग (P. V. Young) का कहना है कि साक्षात्कारदाता समझदार होने पर भी दोषपूर्ण अन्तर्दृष्टि, दोषपूर्ण स्मृति, सूक्ष्म दृष्टि के अभाव तथा स्पष्ट अभिव्यक्ति की अयोग्यता से पीड़ित हो सकते हैं। साथ ही, सामान्यतः इसमें पक्षपात की भी सम्भावना अधिक रहती है। परन्तु फिर भी इन दोषों के बावजूद साक्षात्कार प्रविधि सामाजिक अनुसन्धान की एक मूलभूत प्रविधि मानी जाती है। वास्तव में, अधिकांश दोष इस प्रविधि के न होकर साक्षात्कारकर्ता अथवा इसे प्रयोग मे लाने के ढंग के हैं।

11.10 साक्षात्कार निर्देशिका

साक्षात्कार दो अथवा दो से अधिक व्यक्तियों (सामान्यतः दो) की एक बैठक है जिसमें अनुसन्धानकर्ता (साक्षात्कारकर्ता) सूचनादाताओं से अपनी अनुसन्धान की समस्या से सम्बन्धित औपचारिक या अनौपचारिक रूप में प्रश्न पूछ कर सूचनाएँ एकत्रित करता है। जब साक्षात्कार में पहले से निर्मित प्रश्नों का ही प्रयोग किया जाता है तो उसे औपचारिक साक्षात्कार कहते हैं। इसके विपरीत, अनौपचारिक साक्षात्कार में साक्षात्कारकर्ता सूचनादाता से स्वतन्त्र रूप में अपनी अनुसन्धान की समस्या के विभिन्न पहलुओं पर वार्तालाप करता है। कई बार अनौपचारिक साक्षात्कार में साक्षात्कारकर्ता सूचनादाताओं से सूचना संकलन हेतु कुछ बिन्दुओं का चयन कर लेता है तथा उन चयनित बिन्दुओं पर सूचनादाताओं से कहानी के रूप में घटना का वर्णन करने को कहता है। इन बिन्दुओं को, जो साक्षात्कारकर्ता का अनुसन्धान समस्या से सम्बन्धित सामग्री संकलन करने में निर्देशन कर रहे हैं, साक्षात्कार निर्देशिका कहते हैं। साक्षात्कारकर्ता एक के बाद एक बिन्दु पर सूचनादाता को जितनी विस्तृत अथवा जितनी संक्षिप्त सूचना वह देना चाहता है, उसे देने के लिए प्रेरित करता है। साक्षात्कार निर्देशिका में किसी प्रकार के औपचारिक प्रश्न नहीं लिखे हुए होते हैं अपितु केवल वे बिन्दु ही अंकित होते हैं जिनके बारे में सूचनादाता से बातचीत करनी है। मैक्कोबी एवं मैक्कोबी (Maccoby and Maccoby) की साक्षात्कार की

परिभाषा सम्भवतः साक्षात्कार निर्देशिका पर अधिक लागू होती है। इन्होंने लिखा है कि, ''साक्षात्कार से अभिप्राय ऐसी स्थिति से है, जिसमें एक व्यक्ति– साक्षात्कारकर्ता–आमने-सामने के पारस्परिक मौखिक आदान-प्रदान से दूसरे व्यक्ति अथवा व्यक्तियों को सूचना देने अथवा अपने विचार एवं विश्वास व्यक्त करने के लिए प्रेरित करने का प्रयास करता है।'' साक्षात्कार निर्देशिका से सूचना संकलित करते समय सूचनादाता को उत्तर देने की पर्याप्त स्वतन्त्रता रहती है।

श्रीमती पी0 वी0 यंग (P. V. Young) ने कभी-कभार अपराध करने वाले नगरीय युवाओं से अपने अध्ययन में साक्षात्कार निर्देशिका द्वारा सूचना संकलित की तथा इस गुणात्मक पद्धति को अत्यन्त उपयोगी पाया। इससे वे सूचनाएँ प्राप्त हो सकीं जो इन अपराधियों द्वारा बताए गए रिकार्ड में भी वर्णित नहीं थीं। अन्य शब्दों में, युवा अपराधियों ने अधिकारियों को जो सूचना दी थी उससे भी कहीं अधिक सूचना साक्षात्कार निर्देशिका द्वारा संकलित करने में सफलता प्राप्त हुई। वह इन सूचनाओं के आधार पर उन परिस्थितियों को समझने में सफल रहीं जिनके परिणामस्वरूप इन युवाओं ने इस प्रकार का व्यवहार किया था। साक्षात्कार निर्देशिका द्वारा प्राप्त सूचना से उन लोगों के बारे में भी पता चला जिन्होंने इन युवाओं को अत्यधिक प्रभावित किया था। कहने का तात्पर्य यह है कि साक्षात्कार निर्देशिका केवल मात्र पारिवारिक, कार्यस्थल एवं स्कूल की परिस्थिति के बारे में व्यक्तिगत इतिहास ज्ञात करने में ही सहायक सिद्ध नहीं हुई अपितु इससे इन युवाओं के व्यवहार को समझने तथा उनके इस व्यवहार को प्रेरित करने वाली परिस्थितियों को समझने में भी सहायता प्राप्त हुई। श्रीमती पी0 वी0 यंग ने साक्षात्कार की समाप्ति के पश्चात् युवाओं द्वारा बताई गई सूचना को लेखबद्ध भी किया तथा उन्हें उसे पढ़कर सुनाया ताकि उनके द्वारा दी गई सूचना की पुनर्परीक्षा हो सके तथा सूचनाओं की विश्वसनीयता बढ़ सके।

साक्षात्कार निर्देशिका की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं–

1.साक्षात्कार निर्देशिका सामाजिक अनुसन्धान में आँकड़े संकलित करने की एक गुणात्मक पद्धति है।

2.साक्षात्कार निर्देशिका में साक्षात्कार हेतु कुछ बिन्दु लिखे रहते हैं और इन्हीं बिन्दुओं पर साक्षात्कारकर्ता चयनित सूचनादाताओं से अनौपचारिक बातचीत करता है।

3. साक्षात्कार निर्देशिका व्यक्तिगत एवं गुणात्मक तथ्यों की जानकारी प्राप्त करने की एक सर्वाधिक उपयोगी प्रविधि है।

4. साक्षात्कार निर्देशिका एक ऐसी प्रविधि है जिसके द्वारा अन्य प्रविधियों की तुलना में कहीं गहन एवं गुणात्मक सूचना संकलित करने में सहायता प्राप्त होती है।

5.साक्षात्कार निर्देशिका में साक्षात्कारकर्ता का सूचनादाता से वार्तालाप करने का एक विशेष उद्देश्य होता है। यह उद्देश्य अनुसन्धान समस्या से सम्बन्धित गुणात्मक सामग्री संकलन करना है।

साक्षात्कार निर्देशिका के प्रमुख गुण निम्नलिखित हैं–

1.साक्षात्कार निर्देशिका सूचनादाताओं की मौलिक एवं वास्तविक मनोदशाओं का अध्ययन करने में सहायक है।

2.साक्षात्कार निर्देशिका द्वारा दमित एवं कुण्ठित संवेगों एवं मनोवृत्तियों का अध्ययन सम्भव है।

3.साक्षात्कार निर्देशिका द्वारा किए जाने वाले अध्ययन में लचीलापन बना रहता है जिससे सम्बन्धित समस्या का बहुपक्षीय अध्ययन सम्भव हो पाता है।

4. साक्षात्कार निर्देशिका द्वारा प्राप्त सूचनाएँ अधिक वैध एवं विश्वसनीय होती हैं।

5. साक्षात्कार निर्देशिका द्वारा उपलब्ध सूचना पूर्वगामी अध्ययन के रूप में प्रयोग की जा सकती है ताकि आगे का अध्ययन अधिक संरचित किया जा सके।

6. साक्षात्कार निर्देशिका द्वारा विभिन्न साक्षात्कारकर्ताओं को जो सूचना प्राप्त होती है, उनकी तुलना करना सम्भव है।

7. साक्षात्कार निर्देशिका द्वारा प्राप्त सामग्री उपकल्पना के निर्माण में तथा कई बार उपकल्पना के परीक्षण में सहायक होती है।

यद्यपि साक्षात्कार निर्देशिका गुणात्मक सामग्री संकलित करने की एक प्रमुख एवं अत्यन्त उपयोगी प्रविधि मानी जाती है, तथापि अन्य सभी प्रविधियों की भाँति यह दोषरहित नहीं है। इसके प्रमुख अवगुण या दोष निम्नलिखित हैं–

1.साक्षात्कार निर्देशिका द्वारा किए जाने वाले अध्ययन का स्वरूप कई बार सन्तुलित नहीं रह पाता है क्योंकि किसी बिन्दु पर तो अत्यधिक जानकारी प्राप्त हो जाती है तो कुछ बिन्दु ऐसे भी होते हैं जिन पर बहुत कम जानकारी उपलब्ध होती है।

2.साक्षात्कार निर्देशिका द्वारा अनावश्यक सामग्री का भी संकलन होने की सम्भावना रहती है।

3.साक्षात्कार निर्देशिका द्वारा संकलित सामग्री में वस्तुनिष्ठता का अभाव पाया जाता है। इसकी विश्वसनीयता की परख करना अत्यन्त कठिन है।

4.साक्षात्कार निर्देशिका द्वारा संकलित सामग्री का परिशुद्ध लेखन सम्भव नहीं है अर्थात् यदि प्राप्त सामग्री को तत्काल लेखबद्ध नहीं किया जाता तो बाद में लिखने पर उसमें अनेक त्रुटियाँ रहने की सम्भावना बढ़ जाती है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि साक्षात्कार निर्देशिका द्वारा संरचित साक्षात्कार के अनेक दोष तो कम हो जाते हैं, परन्तु इससे सूचना संकलित करने में काफी लम्बा समय लग जाता है।

11.11 शब्दावली

साक्षात्कार- –साक्षात्कार सामाजिक अनुसन्धान में सामग्री संकलन करने की वह तकनीक है जिसके द्वारा साक्षात्कारकर्ता आमने-सामने की स्थिति में सूचनादाता के विचारों और भावनाओं को ज्ञात करने का प्रयास करता है।

औपचारिक साक्षात्कार–औपचारिक साक्षात्कार से अभिप्राय उस साक्षात्कार से है जिसमें साक्षात्कारकर्ता पहले से निर्मित प्रश्न (जिन्हें उसने अनुसूची में सम्मिलित किया है) के उत्तर प्राप्त करने का ही प्रयास करता है। उसे इन प्रश्नों के अतिरिक्त अन्य प्रश्न पूछने की स्वतन्त्रता नहीं होती है।

अनौपचारिक साक्षात्कार–अनौपचारिक साक्षात्कार से अभिप्राय उस साक्षात्कार से है जिसमें साक्षात्कारकर्ता पर किसी प्रकार का नियन्त्रण नहीं होता है तथा वह अपने अध्ययन-विषय के सम्बन्ध में सूचनादाता से वार्तालाप द्वारा सूचनाएँ संकलित करने का प्रयास करता है।

साक्षात्कार निर्देशिका–साक्षात्कार निर्देशिका एक ऐसा प्रपत्र है जिस पर वे बिन्दु अंकित होते हैं जिन पर एक साक्षात्कारकर्ता को सूचनादाता से आमने-सामने की स्थिति में वार्तालाप कर उसके विचारों को ज्ञात करना है।

11.12 अभ्यास प्रश्न

1.साक्षात्कार किसे कहते हैं? इसके प्रमुख उद्देश्य बताइए।

2.साक्षात्कार को परिभाषित कीजिए। सामाजिक अनुसन्धान में साक्षात्कार के किन प्रकारों का प्रयोग किया जाता है? संक्षेप में समझाइए।

3.साक्षात्कार से आप क्या समझते हैं? साक्षात्कार की प्रक्रिया के प्रमुख चरण संक्षेप में लिखिए।

4. साक्षात्कार क्या है? इसकी उपयोगिता बताइए।

5.सामाजिक अनुसन्धान की एक तकनीक के रूप में साक्षात्कार का मूल्यांकन कीजिए।

6.साक्षात्कार की परिभाषा लिखिए तथा इसके गुण-दोष बताइए।

7.साक्षात्कार निर्देशिका पर विस्तृत टिप्पणी लिखिए।

8.निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिए–

(अ) साक्षात्कार के समय रखी जाने वाली सावधानियाँ

(ब) साक्षात्कार की उपयोगिता

(स) साक्षात्कार की सीमाएँ

(द) प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष साक्षात्कार।

11.13 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- Burgess, Ernest W. and Robert E. Park, Introduction to Science of the Sociology, Chicago : University of Chicago Press 1921.

- Goode, W. J. and P. K. Hatt, Methods in Social Research, New York : McGraw-Hill Book Company, 1952.
- Maccoby, E. E. and N. Maccoby quoted in Gardner Lindzey (ed,), Handbook of Social Psychology, Cambridge, Massachusetts : Addison-Wesley Publishing Co., Inc., 1954.
- Palmer, V. M., Field Studies in Sociology, Chicago : Chicago University Press, 1928.
- Yang, Hsin Pao, Fact-finding with Rural People, Rome : Food and Agriculture Organization of the United Nations, 1955.
- Young, P. V., Scientific Social Surveys and Research, Bombay : Asia Publishing House, 1960.

इकाई-12

सूचनाओं के प्राथमिक एवं द्वितीयक स्रोत

Primary & Secondary Sources of Data

इकाई की रूपरेखा

12.0 उद्देश्य

12.1 प्रस्तावना

12.2 सूचनाओं के स्रोत

12.3 प्राथमिक सामग्री

12.4 प्राथमिक सामग्री की उपयोगिता

12.5 प्राथमिक सामग्री की सीमाएँ

12.6 प्राथमिक सामग्री के स्रोत

12.7 द्वितीयक सामग्री

12.8 द्वितीयक सामग्री की उपयोगिता

12.9 द्वितीयक सामग्री की सीमाएँ

12.10 द्वितीयक सामग्री के स्रोत

12.11 प्राथमिक एवं द्वितीयक सामग्री में अन्तर

12.12 शब्दावली

12.13 अभ्यास प्रश्न

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

12.0 उद्देश्य

सामाजिक अनुसन्धान, अन्वेषण अथवा शोध में विविध प्रकार की सामग्री (आँकड़े, सूचनाएँ अथवा तथ्य) का प्रयोग किया जाता है। बिना इनके सामाजिक अनुसन्धान एक अपंग प्राणी की भाँति है। अनुसन्धान में प्रयोग की जाने वाली सामग्री चूँकि एक ही प्रकार की नहीं होती, अतः प्रत्येक अनुसन्धानकर्ता को यह पता होना चाहिए कि उसे किस प्रकार की सामग्री की आवश्यकता है? वह सामग्री किन स्रोतों से प्राप्त की जा सकती है? यदि उसे इसका पता नहीं है तो वह इधर-उधर भटकता रहेगा तथा उसका काफी समय एवं श्रम व्यर्थ चला जाएगा। प्रस्तुत इकाई में अनुसन्धान में प्रयुक्त होने वाली दोनों प्रकार की सामग्री–प्राथमिक एवं द्वितीयक–के

अर्थ, उपयोगिता, सीमाओं तथा स्रोतों के साथ-साथ इन दोनों में अन्तर स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है।

12.1 प्रस्तावना

सामाजिक अनुसन्धान का अर्थ सामाजिक घटनाओं अथवा तथ्यों के बारे में नवीन जानकारी प्राप्त करना, प्राप्त ज्ञान में वृद्धि करना अथवा जिन सिद्धान्तों एवं नियमों का निर्माण किया जा चुका है उनमें किसी भी प्रकार का संशोधन करना है। अतः सामाजिक अनुसन्धान का एक महत्त्वपूर्ण चरण सामग्री अथवा आँकड़े एकत्रित करना है क्योंकि इस सामग्री के आधार पर ही नवीन ज्ञान की प्राप्ति या पहले से प्राप्त ज्ञान में वृद्धि की जा सकती है। सामग्री के संकलन में जितनी अधिक सावधानी रखी जाती है, निष्कर्ष उतने ही अधिक विश्वसनीय एवं वैज्ञानिक होते हैं।

सामाजिक अनुसन्धान में मुख्यतः प्राथमिक एवं द्वितीयक सामग्री का प्रयोग किया जाता है। इन दोनों के विभिन्न स्रोत होते हैं तथा इन स्रोतों का अपना अलग महत्त्व होता है। प्राथमिक सामग्री अनुसन्धानकर्ता क्षेत्राधारित अध्ययनों द्वारा संकलित करता है, जबकि द्वितीयक (जिसे ऐतिहासिक सामग्री भी कहा जाता है) का संकलन स्वयं अनुसन्धानकर्ता नहीं करता है अपितु वह अन्य किसी द्वारा संकलित होती है जिसे अनुसन्धानकर्ता अपनी अनुसन्धान समस्या के विश्लेषण एवं विवेचन हेतु प्रयोग करता है। द्वितीयक सामग्री किसी अन्य व्यक्ति, संस्था अथवा एजेन्सी द्वारा अपने निजी प्रयोग के लिए संकलित की जाती है। इसे संकलित करने वाला व्यक्ति, संस्था अथवा एजेन्सी का स्वरूप सरकारी, अर्द्ध-सरकारी अथवा निजी कुछ भी हो सकता है। इस प्रकार की सामग्री सामान्यतया विद्वानों द्वारा प्रस्तुत किए गए संस्मरणों एवं अप्रकाशित प्रतिवेदनों अथवा प्रकाशित पत्र-पत्रिकाओं व प्रलेखों में उपलब्ध रहती है। अनेक अन्तर्राष्ट्रीय संगठन भी समय-समय पर इस प्रकार की सामग्री प्रकाशित करते रहते हैं जो अन्य अनुसन्धानकर्ताओं हेतु द्वितीयक सामग्री का कार्य करते हैं। किसी अनुसन्धानकर्ता द्वारा जनगणना सम्बन्धी सामग्री का प्रयोग भी द्वितीयक सामग्री का ही उदाहरण है। किसी भी ऐतिहासिक अध्ययन में द्वितीयक सामग्री का महत्त्वपूर्ण स्थान होता है। प्राथमिक सामग्री सूक्ष्म प्रकृति की होती है, जबकि द्वितीयक सामग्री की प्रकृति वृहत् होती है। द्वितीयक सामग्री सम्पूर्ण समाज अथवा सभ्यता से सम्बन्धित हो सकती है। उदाहरणार्थ, जनगणना, राष्ट्रीय निदर्शन सर्वेक्षण इत्यादि वृहत् सामग्री के ही उदाहरण हैं जिन्हें द्वितीयक स्रोतों के रूप में अनुसन्धान में विविध प्रकार से प्रयोग किया जाता है।

12.2 सामग्री के स्रोत

सामाजिक अनुसन्धान में विविध प्रकार की विधियों एवं प्रविधियों द्वारा सामग्री एकत्रित की जाती है। आखिर इस सामग्री या आँकड़ों के स्रोत क्या हैं? एक समाजशास्त्री अनुसन्धान सम्बन्धी

सामग्री का संकलन दो प्रमुख स्रोतों से करता है–सामग्री के प्राथमिक स्रोत या क्षेत्रीय स्रोत तथा सामग्री के द्वितीयक स्रोत या ऐतिहासिक स्रोत। सामग्री या आँकड़ों के प्राथमिक स्रोतों द्वारा प्राथमिक सामग्री एकत्रित की जाती है, जबकि ऐतिहासिक स्रोतों द्वारा द्वितीयक सामग्री या ऐतिहासिक सामग्री एकत्रित की जाती है। प्राथमिक स्रोत वे साधन हैं जो घटना, व्यक्ति या संस्था के विषय में प्रथम साक्षी का कार्य करते हैं। द्वितीयक स्रोत वे साधन हैं जो अनुसन्धानकर्ता के लिए प्रथम साक्षी नहीं है क्योंकि इनमें उसका स्रोत से सम्बन्धित घटना, व्यक्ति या संस्था से तात्कालिक सम्बन्ध नहीं होता। प्राथमिक स्रोतों को क्षेत्रीय स्रोत तथा द्वितीयक स्रोतों को ऐतिहासिक स्रोत या प्रलेखीय स्रोत भी कहा जाता है। प्राथमिक स्रोतों में अनुसन्धानकर्ता द्वारा अपनी समस्या से सम्बन्धित वास्तविक व्यक्तियों से प्राप्त जानकारी अथवा प्रत्यक्ष अवलोकन (या अन्य किसी तकनीक) द्वारा प्राप्त तथ्य सम्मिलित होते हैं, जबकि द्वितीयक स्रोतों के अन्तर्गत सरकारी तथा गैर-सरकारी संस्थाओं या व्यक्तियों द्वारा प्रकाशित, अप्रकाशित अथवा लिखित प्रलेख सम्मिलित होते हैं। वास्तव में, अध्ययन या अनुसन्धान के स्रोत क्या होंगे यह इस बात पर निर्भर करता है कि किस प्रकार की सामग्री की आवश्यकता है?

12.3 प्राथमिक सामग्री

प्राथमिक सामग्री उस सामग्री, आँकड़ों या सूचनाओं को कहते हैं जोकि अनुसन्धानकर्ता (अथवा किसी अन्य व्यक्ति द्वारा) स्वयं प्राप्त की जाती है अर्थात् प्रथम स्तर (First hand) पर एकत्रित सामग्री ही प्राथमिक सामग्री कहलाती है। सामाजिक अनुसन्धान में यद्यपि कुछ प्रलेखों इत्यादि से भी सामग्री एकत्रित की जाती है परन्तु उसे प्राथमिक सामग्री में सम्मिलित नहीं किया जा सकता क्योंकि उसे अनुसन्धानकर्ता ने स्वयं प्रथम स्तर पर संकलित नहीं किया होता। प्राथमिक सामग्री में वे मौलिक सूचनाएँ सम्मिलित की जाती हैं जोकि एक अनुसन्धानकर्ता स्वयं अध्ययन-क्षेत्र में जाकर अपनी अध्ययन समस्या की विवेचना हेतु निदर्शन द्वारा चयनित सूचनादाताओं से प्रत्यक्ष अवलोकन, साक्षात्कार, अनुसूची या प्रश्नावली की सहायता से एकत्रित करता है। प्राथमिक सामग्री को प्राथमिक इस अर्थ में कहा जाता है क्योंकि इसे अनुसन्धानकर्ता अपने अध्ययन उपकरणों द्वारा प्रथम बार स्वयं एकत्रित करता है। इसलिए प्राथमिक सामग्री संकलित करने के दो प्रमुख स्रोत हो सकते हैं–प्रथम, सूचनादाताओं से प्राप्त विशिष्ट सूचनाएँ तथा द्वितीय, क्रियाशील व्यवहारों का प्रत्यक्ष अवलोकन।

पामर (Palmer) के मतानुसार सूचनादाता न केवल अध्ययन विषय की विद्यमान अवस्थाओं को स्पष्ट करने की योग्यता रखते हैं, अपितु एक सामाजिक प्रक्रिया में अन्तर्निहित महत्त्वपूर्ण चरण एवं अवलोकन योग्य प्रवृत्तियों के सम्बन्ध में संकेत कर सकते हैं। यदि इन सूचनादाताओं का चयन सावधानीपूर्वक किया जाए तो वे अध्ययन कार्य के महत्त्वपूर्ण अंग बन सकते हैं। प्रत्यक्ष

अवलोकन द्वारा भी किसी समुदाय या समूह के जीवन से सम्बन्धित अनेक महत्त्वपूर्ण जानकारी प्राप्त होती है। यदि अनुसन्धानकर्ता अवलोकन करते समय निष्पक्षता बनाए रखता है तो उसके द्वारा जो सामग्री प्रत्यक्ष अवलोकन के प्रयोग से संकलित की जाएगी वह अत्यन्त विश्वसनीय एवं अति उत्तम प्राथमिक स्रोत हो सकती है। सहभागी अवलोकन द्वारा तो सामुदायिक जीवन से सम्बन्धित आन्तरिक एवं गुप्त बातों को भी जाना जा सकता है।

सरल शब्दों में, प्राथमिक स्रोतों द्वारा एकत्रित सामग्री प्राथमिक सामग्री कहलाती है। प्राथमिक स्रोतों को कई बार क्षेत्रीय स्रोत भी कहा जाता है। पीटर एच0 मन (Peter H. Mann) के अनुसार, ''प्राथमिक स्रोत हमें प्रथम स्तर पर संकलित सामग्री प्रदान करते हैं अर्थात् जिन लोगों ने उसे एकत्रित किया है ये उनके द्वारा ही प्रस्तुत की गई सामग्री के मौलिक स्वरूप (कुलक) हैं।'' मन ने यह भी स्पष्ट किया है कि प्राथमिक स्रोत की परिभाषा को सीमित अर्थ अर्थात् स्वयं अनुसन्धानकर्ता द्वारा एकत्रित सामग्री के रूप में नहीं लिया जाना चाहिए। उदाहरण के लिए, जनगणना के आँकड़ों (Census data) को हम प्रथम स्तर के आँकड़े मानते हैं यद्यपि इन्हें रजिस्ट्रार जनरल (Registrar General) ने व्यक्तिगत रूप में एकत्रित नहीं किया और न ही इनके विश्लेषण एवं लिखने का कार्य ही उसने किया है। इन्हें हम प्राथमिक आँकड़े या सामग्री इसलिए कहते हैं क्योंकि रजिस्ट्रार जनरल के विभाग ने एक इकाई के रूप में इन्हें एकत्रित करके इनका विश्लेषण किया है।

12.4 प्राथमिक सामग्री की उपयोगिता

सामाजिक अनुसन्धान में हमारा प्रयास यथासम्भव प्राथमिक सामग्री को एकत्रित करना है क्योंकि प्रथम स्तर पर संकलित सामग्री या आँकड़े अधिक विश्वसनीय होते हैं। ग्रामीण समाज के क्षेत्रीय अध्ययनों में तो केवल प्राथमिक सामग्री ही उपयोगी मानी जाती है। प्राथमिक सामग्री का संकलन प्राथमिक स्रोतों से ही किया जाता है। इन स्रोतों में अनुसन्धानकर्ता द्वारा प्रयोग की गई तकनीक (साक्षात्कार, अनुसूची, प्रश्नावली इत्यादि) तथा प्रत्यक्ष अवलोकन प्रमुख हैं। प्राथमिक सामग्री की उपयोगिता को इसके निम्नलिखित गुणों द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है–

1.विश्वसनीयता–प्राथमिक सामग्री अधिक विश्वसनीय होती है क्योंकि इसे अधिकांशतः अनुसन्धानकर्ता द्वारा स्वयं प्रत्यक्ष रूप में एकत्रित किया जाता है। यदि इसमें किसी प्रकार की कमी है तो यह केवल अनुसन्धानकर्ता के पक्षपात के कारण है।

2.वास्तविकता–प्राथमिक सामग्री अधिक स्वाभाविक अर्थात् वास्तविक होती है क्योंकि इसे अनुसन्धानकर्ता द्वारा प्रथम स्तर पर क्षेत्रीय कार्य के आधार पर संकलित किया जाता है। इससे हमें घटना के वास्तविक रूप का पता चल जाता है।

3.व्यावहारिक उपयोगिता–प्राथमिक सामग्री अधिक व्यावहारिक होती है क्योंकि इसे स्वयं अनुसन्धानकर्ता द्वारा अनुसन्धान की समस्या के उद्देश्यों के अनुकूल ही एकत्रित किया जाता है।

4.नवीनता–प्राथमिक सामग्री में नवीनता का गुण पाया जाता है क्योंकि इसे अनुसन्धान क्षेत्र में जाकर स्वयं अनुसन्धानकर्ता द्वारा एकत्रित किया जाता है। प्रत्यक्ष सम्पर्क होने के कारण बहुत-सी ऐसी बातों का पता चल जाता है जोकि द्वितीयक स्रोतों से नहीं मिल पातीं।

12.5 प्राथमिक सामग्री की सीमाएँ

यद्यपि प्राथमिक सामग्री सामाजिक अनुसन्धान की आधारशिला है, फिर भी इसकी अपनी कुछ सीमाएँ अथवा अवगुण हैं।

इसकी प्रमुख सीमाएँ निम्नांकित हैं–

1.अभिनति–प्राथमिक सामग्री के संकलन में अनुसन्धानकर्ता द्वारा पक्षपात की सम्भावना अधिक रहती है। वह अपने विचारों, मूल्यों अथवा पूर्वाग्रहों के अनुरूप सामग्री को तोड़-मरोड़ कर प्रस्तुत कर सकता है। उसके लिए अपने विचारों, मूल्यों अथवा पूर्वाग्रहों को छोड़कर निष्पक्ष रूप से अध्ययन करना प्रायः कठिन होता है।

2.साधनों की आवश्यकता–प्राथमिक सामग्री के संकलन में अधिक साधनों की आवश्यकता होती है क्योंकि इसके संकलन में अधिक समय एवं धन व्यय होता है। उदाहरणार्थ, यदि हम साक्षात्कार द्वारा सूचनादाताओं से प्राथमिक सामग्री संकलन करना चाहते हैं तो हमें चयनित प्रत्येक सूचनादाता से व्यक्तिगत सम्पर्क द्वारा आमने-सामने की स्थिति में सूचनाएँ एकत्रित करनी पड़ती है।

3.केवल समकालीन घटनाओं का अध्ययन–प्राथमिक सामग्री केवल समकालीन घटनाओं के अध्ययन में ही उपयोगी है। भूतकालीन घटनाओं के बारे में प्राथमिक सामग्री एकत्रित करना कठिन कार्य है। इन घटनाओं को समझने में केवल द्वितीयक सामग्री ही उपयोगी होती है।

12.6 प्राथमिक सामग्री के स्रोत

प्राथमिक सामग्री को अनेक स्रोतों द्वारा एकत्रित किया जा सकता है। प्राथमिक सामग्री के स्रोतों को निम्नलिखित दो श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है–

1.प्रत्यक्ष स्रोत–इनमें उन स्रोतों को सम्मिलित किया जाता है जिनमें अनुसन्धानकर्ता प्रत्यक्ष सम्पर्क द्वारा सामग्री एकत्रित करता है।

प्रत्यक्ष स्रोतों के मुख्य प्रकार निम्नलिखित हैं–

(i)अवलोकन–प्राथमिक सामग्री को संकलित करने का सबसे प्रमुख स्रोत प्रत्यक्ष अवलोकन (निरीक्षण, प्रेक्षण अथवा पर्यवेक्षण) है। अवलोकन अनुसन्धान की एक तकनीक या प्रविधि है जिसका प्रयोग प्राथमिक सामग्री या आँकड़े एकत्रित करने के लिए किया जाता है। डॉलार्ड

(Dollard) के मतानुसार, ''अवलोकन अनुसन्धान के एक प्राथमिक यन्त्र के रूप में मानव-बुद्धि के प्रेक्षण तथा अनुभवों के आधार पर ज्ञान प्राप्त करना है।'' इसका प्रयोग उस सामाजिक व्यवहार, घटनाओं एवं परिस्थितियों के अध्ययन के लिए किया जाता है जिन्हें हम घटित होते हुए देख सकते हैं। यह एक विश्वसनीय प्रविधि मानी गई है क्योंकि एक प्राचीन कहावत है कि देखकर ही विश्वास होता है। अवलोकन में देखकर ही अध्ययन किया जाता है अतः यह प्रविधि विश्वसनीय प्राथमिक सामग्री के संकलन में सहायक है। अवलोकन में घटनाओं का ज्यों-का-त्यों निरीक्षण किया जाता है और आँकड़ों का निष्पक्ष आलेखन किया जाता है। अतः इस प्रविधि द्वारा एकत्रित आँकड़े अधिक विश्वसनीय होते हैं। इसके द्वारा वास्तविक व्यवहार का अध्ययन किया जाता है जिससे अतिशयोक्ति एवं पक्षपात इत्यादि की सम्भावना कम हो जाती है। सामाजिक मानवशास्त्र में तो अवलोकन प्राथमिक सामग्री का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण स्रोत माना जाता है। अवलोकन का प्रयोग सहभागी अवलोकन, असहभागी अवलोकन तथा अर्द्ध-सहभागी अवलोकन के रूप में किया जाता है।

(ii)साक्षात्कार–साक्षात्कार अनुसन्धान में प्राथमिक सामग्री संकलित करने की एक प्राचीन एवं बहुचर्चित प्रविधि है जिसका समाजशास्त्र में इतना अधिक प्रयोग किया गया है कि यह आज एक सर्वाधिक प्रचलित प्रविधि मानी जाती है। साक्षात्कार प्रविधि सूचनादाता के सामने बैठकर वार्तालाप का अवसर प्रदान करती है जिससे कि उसके मनोभावों, मनोवृत्तियों तथा दृष्टिकोणों के बारे में भी जानकारी प्राप्त हो सकती है। इसका प्रयोग केवल समाजशास्त्र में ही नहीं किया जाता अपितु अन्य सामाजिक विज्ञानों, मनोचिकित्सा, मनोविश्लेषण एवं चिकित्सा जैसे विषयों में भी अत्यधिक प्रचलन देखा जा सकता है। पामर (Palmer) के अनुसार, ''साक्षात्कार दो व्यक्तियों के मध्य एक सामाजिक स्थिति की रचना करता है तथा इसमें प्रयुक्त मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया के अन्तर्गत दोनों को परस्पर प्रत्युत्तर देने पड़ते हैं।'' साक्षात्कार प्रविधि द्वारा अनुसन्धानकर्ता सूचनादाता के बाहरी एवं आन्तरिक जीवन का अध्ययन कर सकता है। आलपोर्ट (Allport) के अनुसार यह प्रविधि सूचनादाताओं की भावनाओं, अनुभवों, संवेगों तथा मनोवृत्तियों के अध्ययन में विशेष रूप से उपयोगी है।

(iii)अनुसूची–अनुसूची सामाजिक अनुसन्धान की समस्या से सम्बन्धित प्राथमिक सामग्री एकत्रित करने का एक उपकरण है। इसका यथार्थ एवं वास्तविक सामग्री को प्रत्यक्ष रूप में संकलन करने में महत्त्वपूर्ण स्थान है। यह प्रश्नों की एक सूची है जिसे अनुसन्धानकर्ता सूचनादाता के पास लेकर जाता है तथा उससे प्रश्नों के उत्तर पूछ कर स्वयं उन्हें अनुसूची में अंकित करता है। बोगार्डस (Bogardus) के अनुसार, ''अनुसूची तथ्यों को एकत्रित करने के

लिए एक औपचारिक प्रणाली का प्रतिनिधित्व करती है जो वस्तुनिष्ठ रूप में हैं एवं आसानी से प्रत्यक्ष अनुभव किए जाने योग्य हैं।.......अनुसूची स्वयं अनुसन्धानकर्ता द्वारा भरी जाती है।''

2.अप्रत्यक्ष स्रोत–प्राथमिक सामग्री के अप्रत्यक्ष स्रोत उन स्रोतों को कहते हैं जिनमें सूचना तो प्रथम स्तर पर एकत्रित की जाती है परन्तु अनुसन्धानकर्ता (अध्ययनकर्ता) का सूचनादाताओं से किसी प्रकार का प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं होता। इनका संकलन निम्नांकित प्रविधियों द्वारा किया जाता है–

(i) डाक प्रश्नावली–डाक प्रश्नावली का विस्तृत एवं व्यापक क्षेत्र में फैले हुए सूचनादाताओं से प्राथमिक सामग्री संकलित करने में महत्त्वपूर्ण स्थान है। यह प्राथमिक सामग्री का एक महत्त्वपूर्ण स्रोत है जिसमें कम समय में अनेक सूचनादाताओं, जोकि विस्तृत क्षेत्र में फैले हुए होते हैं, से सूचना एकत्रित की जा सकती है। यांग (Yang) के अनुसार, ''प्रश्नावली एक विशाल एवं विस्तृत क्षेत्र में फैले हुए व्यक्तियों के समूह से आँकड़े एकत्रित करने की शीघ्रतम पद्धति प्रदान करती है। अपने सरलतम रूप में प्रश्नावली प्रश्नों की एक अनुसूची है जिसे कि सर्वेक्षण निदर्शन के रूप से चुने हुए व्यक्तियों के पास डाक द्वारा भेजा जाता है।'' इस प्रकार, डाक प्रश्नावली प्रश्नों की एक सूची है जिनका उत्तर स्वयं सूचनादाता भरता है अतः इसका प्रयोग उन्हीं परिस्थितियों में किया जा सकता है जिसमें सूचनादाता शिक्षित हैं।

(ii) दूरभाष साक्षात्कार–दूरभाषा साक्षात्कार भी प्राथमिक सामग्री संकलन का महत्त्वपूर्ण स्रोत है। दूरभाष साक्षात्कार द्वारा अनुसन्धानकर्ता पहले दूरभाष करने वाले को अपने उद्देश्य बताकर उससे सहयोग की याचना करता है तथा उसे आश्वासन देता है कि उसके द्वारा दी गई सूचना का प्रयोग केवल अनुसन्धान हेतु ही किया जाएगा। यदि सूचनादाता इससे आश्वस्त हो जाता है तो इस प्रविधि द्वारा प्राप्त प्राथमिक सामग्री भी अत्यन्त विश्वसनीय होती है।

(iii) रेडियो एवं टेलीविजन पर प्रसारित परिचर्चाएँ–आज का युग जनसंचार का युग है। दैनिक क्रियाकलापों में प्रयोग किए जाने वाले जनसम्पर्क या जनसंचार के साधन के रूप में आज रेडियो, टेलीविजन तथा समाचार पत्रों का प्रमुख स्थान है। देशभर के अनेक मध्यवर्गीय परिवारों में लोग प्रायः बिस्तर से उठते ही सबसे पहले रेडियो या टेलीविजन चालू करते हैं अथवा प्रातःकालीन समाचार पढ़ते हैं। उन्हीं परिवारों के बच्चे सर्वप्रथम अपने मोबाइल फोन पर यह देखने के लिए नजर डालते हैं कि कोई 'मिस्ड काल' तो नहीं आई है। जनसंचार का अर्थ लाखों-करोड़ों व्यक्तियों को एक-साथ सन्देश पहुँचाना है। पहले एक समय था जब जनसंचार के माध्यम के रूप में रेडियो की महत्त्वपूर्ण भूमिका थी। दो-तिहाई घरों में रेडियो समाचारों एवं मनोरंजन का प्रमुख साधन था। टेलीविजन एवं प्रिण्ट मीडिया के महत्त्व में वृद्धि के कारण ऐसा लगने लगा है कि रेडियो खत्म होता जा रहा है। उदारीकरण के बाद 2002 ई0 में भारत में गैर-

सरकारी स्वामित्व वाले एफ0 एम0 रेडियो स्टेशनों की स्थापना से रेडियो पुनः मनोरंजन के कार्यक्रमों का प्रमुख साधन बन गया है। बहुत-से एफ0 एम0 चैनल अपने श्रोताओं को लुभाए रखने के लिए किसी विशेष प्रकार के लोकप्रिय संगीत में अपनी विशेषता रखते हैं। ऐसे एक एफ0 एम0 चैनल का दावा है कि वह दिन भर 'हिट गानों' को ही प्रसारित करता है। आजकल टेलीविजन ने नई सूचना एवं संचार क्रान्ति को जन्म दे दिया है। इसे 'जादुई डिब्बा' तथा 'आँखों को अपने से चिपकाने वाला' कहा गया है। यह छोटे पर्दे पर चलचित्र ही नहीं बल्कि उससे भी अधिक प्रभावशाली है। रेडयो एवं टेलीविजन पर सम-सामयिक परिचर्चाएँ प्रसारित की जाती हैं। यह परिचर्चाएँ भी प्राथमिक सामग्री का महत्त्वपूर्ण अप्रत्यक्ष स्रोत माने जाते हैं।

12.7 द्वितीयक सामग्री

द्वितीयक स्रोतों द्वारा एकत्रित सामग्री को द्वितीयक सामग्री कहा जाता है। इसे अनुसन्धानकर्ता दूसरे के प्रयोग अथवा अनुसन्धान से प्राप्त करता है अर्थात् इसे स्वयं अनुसन्धानकर्ता संकलित नहीं करता। इसमें प्रायः लिखित प्रलेखों को सम्मिलित किया जाता है इसलिए इसे कई बार प्रलेखीय सामग्री अथवा ऐतिहासिक सामग्री भी कह दिया जाता है तथा इसके स्रोतों को प्रलेखीय स्रोत (Documentary sources) अथवा ऐतिहासिक स्रोत (Historical sources) भी कहते हैं। पीटर एच0 मन (Peter H. Mann) के अनुसार, ''प्राथमिक स्रोतों को द्वितीयक स्रोतों, जिनके द्वारा द्वितीयक स्तर पर सामग्री एकत्रित की जाती है अर्थात् सामग्री का संकलन प्रथम स्तर पर न होकर अन्य लोगों की मूल सामग्री से किया जाता है, से भिन्न माना जाता है।'' इसी प्रकार, कर्लिंगर (Kerlinger) ने लिखा है कि, ''द्वितीयक स्रोत किसी एक ऐतिहासिक घटना अथवा स्थिति से अपने मूल स्रोतों से एक या अधिक चरण दूर हटे हुए होते हैं।'' संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि द्वितीयक सामग्री में प्रकाशित एवं अप्रकाशित प्रलेख, रिपोर्ट, सांख्यिकीय विवेचन, पाण्डुलिपि, समाचार-पत्र एवं पत्रिकाओं, डायरी इत्यादि को सम्मिलित किया जाता है। लुण्डबर्ग (Lundberg) के मतानुसार शिलालेख, स्तूप, विभिन्न खुदाइयों से प्राप्त अस्थि-पंजर, भौतिक वस्तुएँ आदि ऐतिहासिक स्रोतों से प्राप्त सामग्री भी द्वितीयक सामग्री कहलाती है।

12.8 द्वितीयक सामग्री की उपयोगिता

सामाजिक अनुसन्धान में प्राथमिक एवं द्वितीयक, दोनों प्रकार की सामग्री एकत्रित की जाती है। द्वितीयक सामग्री का अनुसन्धान में अपना अलग महत्त्व है।

द्वितीयक सामग्री एवं द्वितीयक स्रोतों के प्रमुख गुण निम्नांकित हैं–

1.पक्षपात से बचाव–द्वितीयक स्रोतों के प्रयोग में अनुसन्धानकर्ता द्वारा किसी प्रकार के पक्षपात करने की सम्भावना तथा सामग्री को अपने मूल्यों के अनुरूप तोड़-मरोड़ लेने की सम्भावना बहुत ही कम होती है।

2.भूतकालीन घटनाओं का अध्ययन–द्वितीयक स्रोत एवं द्वितीयक सामग्री भूतकाल की घटनाओं के अध्ययन में भी सहायक है क्योंकि भूतकालीन घटनाओं का क्षेत्रीय अध्ययन सम्भव नहीं होता। समाजशास्त्र, शिक्षाशास्त्र एवं मनोविज्ञान के क्षेत्रों में ऐतिहासिक सामग्री की व्यापक आवश्यकता होती है। समाजशास्त्र की इतिहास के अध्ययन से सम्बन्धित शाखा को 'ऐतिहासिक समाजशास्त्र' (Historical Sociology) कहते हैं।

3.समय एवं धन की बचत–द्वितीयक स्रोत अनुसन्धानकर्ता के समय, श्रम एवं पैसे के व्यर्थ प्रयोग से बचत करते हैं। यदि सूचनाएँ पहले से ही लिखित रूप में उपलब्ध हैं तो फिर से उनके संकलन की कोई आवश्यकता नहीं है।

4.गोपनीय तथ्यों की प्राप्ति–द्वितीयक स्रोतों; विशेष रूप से डायरियों तथा आत्मकथाओं से ऐसे तथ्यों के बारे में भी ज्ञान प्राप्त हो जाता है जिनके बारे में प्रत्यक्ष सम्पर्क द्वारा सूचनाएँ प्राप्त नहीं की जा सकतीं। यदि वैयक्तिक अध्ययन करते समय हमें सूचनादाताओं द्वारा लिखी गई डायरी या पत्र उपलब्ध हो पाते हैं तो उनसे अनेक ऐसे गोपनीय तथ्यों का पता चल सकता है जिसे अन्यथा सूचनादाता किसी भी अनुसन्धानकर्ता को सरलता से नहीं बताते।

5.असम्भव सूचनाओं का संकलन– द्वितीयक स्रोत असम्भव सूचनाओं के संकलन में सहायता प्रदान करते हैं। उदाहरण के लिए–सरकारी रिपोर्टें, पुलिस एवं कचहरी के रिकॉर्ड इत्यादि हमें कई बार अत्यन्त उपयोगी व दुर्लभ सूचनाएँ भी प्रदान करते हैं।

12.9 द्वितीयक सामग्री की सीमाएँ

यद्यपि द्वितीयक स्रोत एवं सामग्री सामाजिक अनुसन्धान में अनुसन्धानकर्ता को महत्त्वपूर्ण योगदान देती है, फिर भी इसके प्रयोग के कारण अनुसन्धान में अनेक दोष आ जाते हैं। द्वितीयक सामग्री अथवा स्रोतों के प्रमुख दोष निम्नांकित हैं–

1.पुनर्परीक्षण कठिन–द्वितीयक स्रोतों द्वारा उपलब्ध सामग्री या आँकड़ों की पुनर्परीक्षा करना सम्भव नहीं है क्योंकि इनमें जिस घटना का वर्णन है वह अनुसन्धानकर्ता की मर्जी से पुनर्घटित नहीं हो सकती है।

2.कम विश्वसनीय–द्वितीयक स्रोत एवं सामग्री कम विश्वसनीय होते हैं क्योंकि इनकी जाँच करना सम्भव नहीं है। कर्लिंगर ने इसी सन्दर्भ में उचित ही कहा है कि द्वितीयक स्रोत सापेक्षिक रूप में कम विश्वसनीय होते हैं तथा एक द्वितीयक स्रोत अपने प्राथमिक स्रोत से जितने चरण

अधिक दूर हटा हुआ होता है, उतनी ही उसमें अधिक तोड़-मरोड़ की सम्भावना रहती है और उसकी मौलिकता की विश्वसनीयता में तदनुसार कमी आती चली जाती है।

3.लेखक की अभिनति–सभी द्वितीयक प्रलेख लेखकों के विशिष्ट दृष्टिकोणों द्वारा प्रभावित हो सकते हैं और इसीलिए हो सकता है कि इनसे अनुसन्धानकर्ता को वास्तविकता का पूरा पता न चले। सामान्यतया यह प्रमाणित करना कठिन होता है कि जिस व्यक्ति के प्रलेखों को हम द्वितीयक सामग्री के रूप में प्रयोग कर रहे हैं वह एक निष्पक्ष, ईमानदार, सुयोग्य तथा सचरित्र व्यक्ति था अथवा नहीं। हो सकता है कि उसने किसी पूर्वाग्रह, संवेग, भय, भाव व अभाव से, जाने या अनजाने में तथ्यों को तोड़-मरोड़ कर प्रस्तुत किया हो और उसके प्रलेखों में अनेक त्रुटियाँ हों।

4.अपर्याप्त सूचना–सामान्यतः द्वितीयक स्रोतों द्वारा उपलब्ध सूचना अपर्याप्त होती है क्योंकि इन्हें अनुसन्धान के उद्देश्य से अथवा अनुसन्धानकर्ताओं द्वारा ही संकलित नहीं किया जाता है। बहुत-सी काल्पनिक बातों का भी, हो सकता है इन स्रोतों में समावेश किया गया हो।

12.10 द्वितीयक सामग्री के स्रोत

द्वितीयक स्रोतों में हम अन्य व्यक्तियों द्वारा लिखित रूप से उपलब्ध स्रोतों या प्रलेखों को सम्मिलित करते हैं चाहे ये प्रकाशित हो गए हों या अप्रकाशित ही हों। द्वितीयक स्रोतों में मुख्य रूप से दो प्रकार के प्रलेखों को सम्मिलित किया जाता है–

1.व्यक्तिगत प्रलेख–जिन्हें किसी व्यक्ति द्वारा निजी रूप से लिखा गया है तथा

2.सार्वजनिक प्रलेख–जिन्हें रिकार्ड के रूप में किसी सरकारी, अर्द्ध-सरकारी अथवा गैर-सरकारी संगठन द्वारा तैयार किया जाता है।

12.10.1 व्यक्तिगत प्रलेख

व्यक्ति किसी अन्य व्यक्ति की जीवन सम्बन्धी जानकारी प्राप्त करके, उसके द्वारा कही गई बातों का पता लगाकर तैयार करता है। जीवन इतिहास हमें महत्त्वपूर्ण सामाजिक घटनाओं एवं तथ्यों के बारे में विस्तृत जानकारी उपलब्ध कराने में सहायता प्रदान करते हैं। परन्तु इनमें लेखक अपने गुणों को बढ़ाकर लिखता है, अतः इनके प्रयोग में विशेष सावधानी रखनी पड़ती है। जॉन डोलार्ड (John Dollard) ने इस बात पर बल दिया है कि जीवन इतिहास को लिखते समय सामाजिक अनुसन्धानकर्ता को चाहिए कि वह व्यक्ति-विशेष की संस्कृति, पारिवारिक पृष्ठभूमि एवं आन्तरिक जीवन की गहराइयों में प्रवेश पा सके तथा बिना किसी प्रकार की अनावश्यक आवृत्तियों के विस्तारसहित सभी कारकों का स्पष्ट रूप से वर्णन करे। हमें इस तथ्य को भी ध्यान में रखना चाहिए कि किसी व्यक्ति के सम्पूर्ण जीवन इतिहास को प्रस्तुत करना तो प्रायः सरल है, परन्तु उसके जीवन के किसी एक पक्ष का अध्ययन करना अपेक्षाकृत कठिन होता है।

यह ध्यान देने योग्य तथ्य है कि जीवन इतिहास पद्धति का प्रयोग सभी परिस्थितियों में नहीं किया जा व्यक्तिगत प्रलेखों से तात्पर्य ऐसे प्रलेखों या लिखित सामग्री से है जिन्हें किसी व्यक्ति द्वारा निजी रूप में लिखा जाता है। जॉन मैज (John Madge) के अनुसार, ''संकुचित अर्थ में, व्यक्तिगत प्रलेख किसी व्यक्ति के द्वारा अपनी निजी क्रियाओं, अनुभवों तथा विश्वासों का एक स्वतः प्रथम व्यक्ति वर्णन है।'' सरल शब्दों में यह कहा जा सकता है कि इनमें किसी व्यक्ति द्वारा निजी रूप से लिखे गए प्रलेखों को सम्मिलित किया जाता है। व्यक्तिगत प्रलेख सामाजिक घटनाओं को समझने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं क्योंकि इनसे वास्तविक तथ्यों का पता चलता है। मनोवैज्ञानिक विश्लेषणों में व्यक्तिगत प्रलेखों द्वारा अत्यधिक सहायता मिलती है। परन्तु इनके प्रयोग की सबसे बड़ी कमी यह है कि व्यक्तिगत प्रलेख लेखक के निजी दृष्टिकोण द्वारा प्रभावित होते हैं। आलपोर्ट (llport) ने व्यक्तिगत प्रलेखों को लिखने के लिए निम्नलिखित सम्भावित कारण बताए हैं–

(i) अपने किसी कार्य के औचित्य को सिद्ध करने हेतु,
(ii)अपने दोषों की स्वीकृति हेतु,
(iii)घटनाओं के क्रमबद्ध वर्णन की इच्छा को चारितार्थ करने हेतु,
(iv)साहित्यिकता का आनन्द लेने हेतु,
(v)व्यक्तिगत प्रलेखों में अनुसन्धान हेतु,
(vi)मानसिक तनाव से छुटकारा पाने हेतु,
(vii)धन प्राप्ति हेतु,
(viii)किसी सौंपे हुए कार्य की पूर्ति हेतु,
(ix)किसी चिकित्सा सम्बन्धी विवरण प्रस्तुत करने हेतु,
(x)अपनी योग्यताओं को प्रदर्शित करने हेतु,
(xi)किसी सिद्धन्त या 'वाद' को लोकप्रिय बनाने हेतु,
(xii)जनसेवा एवं कल्याण हेतु तथा
(xiii)अमृत्व प्राप्त करने हेतु।

व्यक्तिगत प्रलेखों में सामान्यतः जीवन इतिहास, डायरी, पत्र तथा संस्मरण आदि प्रलेखों अथवा स्रोतों को सम्मिलित किया जाता है।

इनका संक्षिप्त विवरणा निम्न प्रकार है–

1.जीवन इतिहास–जीवन इतिहास से तात्पर्य विस्तृत आत्मकथा से है। जॉन मैज (John Madge) के अनुसार, ''सीमित अर्थ में, जीवन इतिहास का अभिप्राय विस्तृत आत्मकथा से है। परन्तु व्यवहार में इसका सामान्य प्रयोग मोटे रूप से किसी भी जीवन सम्बन्धी सामग्री के लिए

किया जाता है।'' अधिकांश जीवन इतिहास महान् व्यक्तियों द्वारा स्वयं अपने बारे में अथवा अन्य लोगों द्वारा उनके बारे में लिखे जाते हैं। जीवन इतिहास मुख्य रूप से तीन प्रकार के हैं–(क) स्वतः लिखित आत्मकथा, जोकि व्यक्ति द्वारा स्वेच्छा से अपने बारे में लिखी जाती है, (ख) प्रेरित आत्म-लेख, जिसे व्यक्ति अपने बारे में परन्तु अन्य व्यक्तियों से प्रेरित होकर लिखता है तथा (ग) संकलित जीवन इतिहास, जिसे कोई सकता है। कुछ क्षेत्र ऐसे हैं जिनमें जीवन इतिहास पद्धति सबसे अधिक उपयोगी है। इसका प्रयोग निम्नांकित परिस्थितियों में विशेष रूप से किया जा सकता है–

(i)गहन एवं सूक्ष्म अध्ययनों में–जीवन इतिहास का प्रयोग किसी इकाई के गहन एवं सूक्ष्म अध्ययन करने के लिए किया जाता है। यह गहन एवं सूक्ष्म अध्ययनों में विशेष रूप से सहायक प्रविधि है।

(ii)गुणात्मक तथ्यों के संकलन में–यदि किसी व्यक्ति के बारे में गुणात्मक आँकड़े एकत्रित करने हैं अर्थात् उसके जीवन के विभिन्न पक्षों से सम्बन्धित आँकड़ें एकत्रित करने हैं तो जीवन इतिहास अधिक उपयोगी है।

(iii)परिवर्तन एवं विकास के अध्ययन में–यदि किसी व्यक्ति के व्यवहार में परिवर्तन का अध्ययन करना है अथवा उसके विकास एवं परिवर्तन को प्रभावित करने वाले कारकों का अध्ययन करना है, तो जीवन इतिहास एक उपयोगी प्रविधि हो सकती है।

(iv)व्यक्तित्वों के अध्ययन में–यदि किसी व्यक्ति की भावनाओं, मनोवृत्तियों एवं परिस्थितियों का पता लगाना है तो जीवन इतिहास एक उपयोगी एवं श्रेष्ठ प्रविधि हो सकती है।

(v)आन्तरिक जीवन के अध्ययन में–यदि किसी व्यक्ति के आन्तरिक जीवन के बारे में आँकड़ें एकत्रित करने हैं तो इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु जीवन इतिहास एक उपयुक्त प्रविधि है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि जीवन इतिहास पद्धति का प्रयोग प्रत्येक प्रकार के अनुसन्धान में नहीं किया जा सकता है। इसका प्रयोग केवल सीमित परिस्थितियों में ही सम्भव है।

2.डायरी–डायरी एक निजी प्रलेख है। कुछ लोग अपने दैनिक जीवन की प्रमुख घटनाओं, अनुभवों तथा वर्तमान परिस्थितियों के बारे में अपनी प्रतिक्रियाओं को विस्तृत अथवा संकेतक रूप में डायरी पर लिखते रहते हैं। क्योंकि यह गोपनीय प्रलेख है अतः इसमें लेखक वास्तविक एवं यथार्थ बातें ही लिखता है। डायरियाँ विश्वसनीय सामग्री या आँकड़ों के स्रोत हैं तथा उनसे लिखने वाले के बारे में अनेक ऐसे रहस्यों का भी पता चलता है जिन्हें सामान्य व्यक्ति नहीं जानते। यदि डायरी में संकेतों द्वारा लिखा गया है तो उनका अर्थ लगाना कठिन हो सकता है तथा साथ ही डायरी उपलब्ध हो पाना भी एक कठिन कार्य है।

3.पत्र–व्यक्तियों द्वारा लिखे गए निजी पत्र भी उनके बारे में महत्त्वपूर्ण सामग्री उपलब्ध कराने में सहायता प्रदान करते हैं। पत्रों द्वारा प्राप्त सामग्री अधिक विश्वसनीय होती है क्योंकि इन्हें व्यक्ति स्वतन्त्रतापूर्वक लिखता है तथा साथ ही गोपनीय बातों का भी इससे पता चल जाता है। पारिवारिक तनाव या वैवाहिक जीवन के अध्ययन में पत्र काफी उपयोगी सामग्री प्रदान करते हैं। पत्रों का उपलब्ध हो पाना एक कठिन कार्य है तथा साथ ही यदि एक ही पक्ष के पत्र उपलब्ध हों या बीच के कुछ पत्र न मिलें तो द्वितीयक सामग्री में क्रमबद्धता नहीं रहती।

4.संस्मरण–संस्मरण ऐतिहासिक सामग्री के महत्त्वपूर्ण स्रोत हैं। यात्राओं, जीवन घटनाओं अथवा महत्त्वपूर्ण परिस्थितियों के बारे में लिखे गए विवरण संस्मरण कहलाते हैं। संस्मरणों द्वारा यद्यपि कई बार बहुमूल्य सामग्री प्राप्त हो जाती है फिर भी इनमें सामान्यतः क्रमबद्धता का अभाव पाया जाता है और साथ ही संस्मरण अति महत्त्वपूर्ण घटनाओं के बारे में ही उपलब्ध होते हैं।

यद्यपि जीवन इतिहास, डायरी, पत्र तथा संस्मरण जैसे व्यक्तिगत प्रलेख व्यक्तित्व के गहन, सूक्ष्म एवं विस्तृत अध्ययन में अति उपयोगी होते हैं, फिर भी इसका सामाजिक अनुसन्धानों में सीमित पैमाने पर ही प्रयोग किया जाता है।

ऐसे प्रलेखों के प्रमुख दोष या अवगुण निम्नलिखित हैं–

1.अस्पष्ट तथा अवैज्ञानिक–जीवन इतिहास, डायरी, पत्र तथा संस्मरण आदि स्रोत असंगठित, अनियन्त्रित एवं अस्पष्ट होने के कारण अवैज्ञानिक माने जाते हैं क्योंकि इसमें व्यक्तित्व का चयन करने में नियमों का पालन नहीं किया जाता है। साथ ही, अध्ययन हेतु चयनित व्यक्तित्वों पर किसी भी प्रकार का नियन्त्रण रखने का प्रयास नहीं किया जाता है। इनमें वस्तुनिष्ठता का भी अभाव पाया जाता है।

2.सीमित अध्ययन–जीवन इतिहास, डायरी, पत्र तथा संस्मरण आदि का सबसे बड़ा दोष इसके द्वारा केवल एक अथवा सीमित व्यक्तित्वों का ही अध्ययन हो पाना भी है।

3.दोषपूर्ण सामान्यीकरण–पहले तो जीवन इतिहास, डायरी, पत्र तथा संस्मरण आदि को आधार मानकर किए जाने वाले अध्ययन सामान्यीकरण में सहायक ही नहीं है क्योंकि इससे केवल एक अथवा कुछ व्यक्तित्वों का ही अध्ययन किया जाता है तथा दूसरे यदि सामान्यीकरण किया भी जाता है तो इकाइयों के प्रतिनिधित्व न होने के कारण जो सामान्यीकरण किया भी जाता है वह दोषपूर्ण होता है। गुड एवं हैट (Goode and Hatt) ने जीवन इतिहास एवं वैयक्तिक अध्ययन सम्बन्धी इसी दोष को स्वेच्छानुसार सैद्धान्तीकरण (Adhoc theorizing) करना कहा है।

4.पक्षपात–जीवन इतिहास पद्धति में व्यक्तित्व के सभी पक्षों के बारे में विस्तृत अध्ययन किया जाता है तथा यह अध्ययन कालक्रम (दीर्घकालिक) के अनुसार होता है, अतःकभी कभी

अनुसन्धानकर्ता सूचनादाता से हमदर्दी हो जाने की सम्भावना हो जाती है। इससे पक्षपात की सम्भावना काफी बढ़ जाती है। यदि ऐसा है तो रिपोर्ट लिखने में भी अनुसन्धानकर्ता तथ्यों को सूचनादाता के पक्ष में तोड़-मरोड़ कर लिख सकता है जिससे हो सकता है कि वास्तविकता का पता ही न चले।

5.अप्रमाणित तथ्य–जीवन इतिहास द्वारा संकलित तथ्यों की प्रामाणिकता की जाँच करना एक कठिन कार्य है। कुछ व्यक्ति ऐसे होते हैं जिनका दोहरा व्यक्तित्व होता है अर्थात् दूसरे उनके बारे में जो जानते हैं वह वास्तव में वैसा नहीं होता। ऐसी परिस्थिति में हो सकता है कि दूसरों द्वारा उनके बारे में बताई गई सूचनाएँ वास्तविक न हों। यदि ऐसे व्यक्ति में अपना जीवन इतिहास स्वयं लिखा है तो भी वह भ्रामक हो सकता है।

6.अत्यधिक आत्म-विश्वास–जीवन इतिहास प्रविधि के प्रयोग में क्योंकि अनुसन्धानकर्ता व्यक्ति के बारे में गहराई से अध्ययन करता है तथा उसे प्रभावित करने वाले सभी कारकों का पता लगाता है, इसलिए उसमें झूठा आत्म-विश्वास पैदा हो जाता है कि वह उस व्यक्ति को पूरी तरह से समझ गया है तथा बार-बार उसे यही महसूस होता है कि वह समस्या की गहराई में पहुँच गया है। यह आत्म-विश्वास अनुसन्धानकर्ता के अध्ययन को प्रभावित करता है।

उपर्युक्त दोषों के बावजूद, जीवन इतिहास, डायरी, पत्र तथा संस्मरण आदि अध्ययन इकाई के सूक्ष्म एवं गहन अध्ययन में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण होते हैं। मनोचिकित्सा में इनका विशेष महत्त्व है। दोषों का यदि हम मूल्यांकन करें तो यह भी स्पष्ट होता है कि सभी दोष इन पद्धतियों के ही नहीं हैं, अपितु कुछ दोष इसे प्रयोग करने वाले अनुसन्धानकर्ता के भी हैं जिन्हें कुछ सावधानियों द्वारा दूर किया जा सकता है।

12.10.2 सार्वजनिक प्रलेख

सार्वजनिक प्रलेखों में ऐसे प्रकाशित अथवा अप्रकाशित प्रलेखों को सम्मिलित किया जाता है जोकि किसी सरकारी, अर्द्ध-सरकारी अथवा गैर-सरकारी संगठनों एवं संस्थाओं द्वारा तैयार किए जाते हैं। कुछ प्रलेखों को तो इन संगठनों द्वारा प्रकाशित करवा दिया जाता है। परन्तु कुछ को गोपनीय रखने के लिए अप्रकाशित ही रखा जाता है। अप्रकाशित प्रलेख मिलना एक कठिन कार्य है।

सार्वजनिक प्रलेख अधिकतर सरकारी रिपोर्टों के रूप में होते हैं। परन्तु अनेक प्रलेखों को उपलब्ध कर पाना एक कठिन कार्य होता है तथा अनेक प्रलेख घटना का केवल उपरी वर्णन ही प्रस्तुत करते हैं।

प्रकाशित प्रलेखों में मुख्य रूप से सार्वजनिक संगठनों की रिपोर्ट, समाचारपत्र एवं पत्र-पत्रिकाएँ, प्रकाशित आँकड़े तथा पुस्तक-सूचियाँ सम्मिलित की जाती हैं।

इनका संक्षिप्त विवरण निम्न प्रकार है–

1.सार्वजनिक संगठनों की रिपोर्टें–अनेक सार्वजनिक संगठन अपना औचित्य सिद्ध करने अथवा पिछले वर्षों में हुई प्रगति के बारे में समय-समय पर अपनी रिपोर्ट प्रकाशित करवाते रहते हैं जिनसे इन संगठनों के बारे में काफी सूचनाएँ उपलब्ध हो जाती हैं। अन्तर्राष्ट्रीय तथा राष्ट्रीय संगठनों, लोकसभा, राज्यसभा की कार्यवाही की रिपोर्टें तथा अन्य सरकारी दस्तावेज कई बार महत्त्वपूर्ण सूचनाओं के स्रोत होते हैं।

2.समाचारपत्र एवं पत्र-पत्रिकएँ–समाचारपत्र तथा पत्र-पत्रिकाएँ भी द्वितीयक सामग्री के महत्त्वपूर्ण स्रोत हैं जिनसे सामाजिक घटनाओं, सामाजिक परिस्थितियों तथा सरकार की नीतियों इत्यादि के बारे में आँकड़े एकत्रित किए जा सकते हैं।

3.प्रकाशित आँकड़े–सरकार द्वारा समय-समय पर विभिन्न प्रकार के आँकड़े प्रकाशित किए जाते हैं। सरकारी गजेटियर, जनगणना रिपोर्ट, देश की जनसंख्या, उत्पादन, आयात-निर्यात के बारे में प्रकाशित आँकड़ों का प्रयोग सामाजिक अनुसन्धान में विशेष महत्त्व रखता है। केन्द्र तथा राज्य सरकारें समय-समय पर राष्ट्र या प्रदेश की आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक परिस्थितियों का समय-समय पर सर्वेक्षण एवं अनुसन्धान कराती रहती हैं और उन्हें जनसाधारण के उपयोग हेतु विभिन्न माध्यमों से प्रकाशित कराती रहती हैं। इनमें महत्त्वपूर्ण आँकड़ों का समावेश होता है जोकि अनुसन्धान में उपयोगी सिद्ध होते हैं।

4.पुस्तक-सूचियाँ–पुस्तक-सूचियाँ भी विषय से सम्बन्धित सर्वेक्षणों या समस्या से सम्बन्धित विभिन्न स्रोतों का ज्ञान देने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं।

अप्रकाशित प्रलेखों में मुख्य रूप से निम्नलिखित स्रोतों को सम्मिलित किया जाता है–

(i) सरकारी प्रलेख,

(ii) दुर्लभ हस्तलेख,

(iii) शोध प्रतिवेदन

(iv) अप्रकाशित लोक-साहित्य, लोक गीत तथा ऐतिहासिक महत्त्व के केन्द्रों पर लिखे हुए श्लोक, सूक्तियाँ या शिलालेख इत्यादि।

किसी भी अनुसन्धान में प्रकाशित एवं अप्रकाशित प्रलेखों का प्रयोग अत्यन्त सावधानीपूर्वक किया जाना आवश्यक है। इनका प्रयोग करने से पहले यह सुनिश्चित करना चाहिए कि इनमें सम्मिलित सामग्री कहाँ तक विश्वसनीय है तथा सामग्री के संकलन हेतु किन स्रोतों का प्रयोग किया गया है। साथ ही, समग्र या निदर्शन की इकाइयों, सामग्री संकलित करने वालों की योग्यताएँ तथा सामग्री की परिशुद्धता को बनाए रखने के प्रयासों के बारे में ज्ञात होना भी आवश्यक है। कॉनर (Connor) ने इस सन्दर्भ में उचित ही लिखा है कि, ''सामग्री प्रमुख रूप

से अन्य स्रोतों से संकलित सामग्री, अत्यधिक सावधानी से उपयोग में लानी चाहिए, नहीं तो वह अनुसन्धानकर्ता को गर्त में ढकेल सकती है।'' बाउले (Bowley) ने प्रकाशित प्रलेखों के सन्दर्भ में यह चेतावनी दी है कि, ''प्रकाशित सामग्री को बिना मूल अर्थ एवं उसकी सीमाएँ ज्ञात किए जैसे-का-तैसा प्रयोग में लाना खतरे से खाली नहीं है। अतः यह हमेशा आवश्यक है कि उन पर आधारित तर्कों की आलोचना कर ली जाए।''

12.11 प्राथमिक एवं द्वितीयक सामग्री में अन्तर

सामाजिक अनुसन्धान में अनुसन्धान समस्या की प्रकृति के आधार पर प्राथमिक एवं द्वितीयक सामग्री का संकलन किया जाता है।

प्राथमिक एवं द्वितीयक सामग्री में मुख्य अन्तर निम्नलिखित हैं–

1.संकलन के आधार पर अन्तर–प्राथमिक सामग्री का संकलन स्वयं अनुसन्धानकर्ता द्वारा किया जाता है, जबकि द्वितीयक सामग्री प्रलेखों के रूप में उपलब्ध होती है। प्राथमिक सामग्री का संकलन अध्ययन-क्षेत्र में जाकर किया जता है, जबकि द्वितीयक सामग्री प्रलेखों के रूप में पुस्तकालय में उपलब्ध होती है।

2.मौलिकता तथा विश्वसनीयता के आधार पर अन्तर –प्राथमिक सामग्री द्वितीयक सामग्री की अपेक्षा अधिक मौलिक एवं विश्वसनीय होती है क्योंकि इसका स्वयं अनुसन्धानकर्ता द्वारा क्षेत्र-अध्ययन (आनुभविक अध्ययन) के आधार पर संकलन किया जाता है।

3.स्रोत के आधार पर अन्तर –प्राथमिक सामग्री का संकलन अवलोकन, साक्षात्कार तथा अनुसूची एवं प्रश्नवली द्वारा किया जाता है, जबकि द्वितीयक सामग्री का संकलन लिखित प्रलेखों से अन्तर्वस्तु विश्लेषण द्वारा किया जाता है।

4.धन तथा समय के आधार पर अन्तर –प्राथमिक सामग्री के संकलन में धन तथा समय अधिक लगता है, जबकि द्वितीयक सामग्री के संकलन में कम।

5.पुनर्परीक्षण के आधार पर अन्तर –प्राथमिक सामग्री के बारे में यदि किसी प्रकार का सन्देह हो तो इसे पुनर्परीक्षण द्वारा दूर किया जा सकता है। सामान्यतः द्वितीयक सामग्री की जाँच करना सम्भव नहीं है।

6.सूचनाओं की पर्याप्तता के आधार पर अन्तर –प्राथमिक सामग्री का संकलन अनुसन्धानकर्ता द्वारा समस्या के विभिन्न पहलुओं को सामने रखकर किया जाता है, जबकि द्वितीयक सामग्री के लिए हमें प्रलेखों पर निर्भर रहना पड़ता है। प्रलेखों में उपलब्ध सूचनाएँ अपर्याप्त होती हैं क्योंकि इन्हें अनुसन्धानकर्ता के उद्देश्य के अनुरूप तैयार नहीं किया जाता।

संक्षेप में, प्राथमिक एवं द्वितीयक सामग्री में पाए जाने वाले प्रमुख अन्तर अग्र प्रकार हैं–

अन्तर का आधार	प्राथमिक सामग्री	द्वितीयक सामग्री
1.संकलन	स्वयं अनुसन्धानकर्ता द्वारा अध्ययन क्षेत्र में जाकर	लिखित प्रलेखों से
2.मौलिकता तथा विश्वसनीयता	अधिक मौलिक एवं अधिक विश्वसनीय	कम मौलिक एवं कम विश्वसनीय
3.स्रोत	अवलोकन, साक्षात्कार, अनुसूची, प्रश्नावली आदि	अन्तर्वस्तु विश्लेषण
4.धन तथा समय	अधिक धन एवं समय	कम धन और समय
5.पुनर्परीक्षण	सम्भव	असम्भव (कठिन)
6.सूचनाओं की	पर्याप्त	अपर्याप्त

पीटर एच0 मन का कहना है कि यदि हम जॉन मैज (John Madge) द्वारा रिकॉर्ड (Record) तथा रिपोर्ट (Report) के अन्तर को प्राथमिक तथा द्वितीयक स्रोतों के सन्दर्भ में देखें तो प्राथमिक एवं द्वितीयक स्रोतों में अन्तर और अधिक स्पष्ट हो सकता है।

इसे उन्होंने अग्रवर्णित तालिका द्वारा स्पष्ट करने का प्रयास किया है–

प्राथमिक	**द्वितीयक**
लेखक द्वारा सामयिक संकलित	प्राथमिक समकालीन स्रोतों की नकल
उदाहरण :	उदाहरण :
कचहरी के रिकॉर्ड।	सहायकों के क्षेत्र-कार्य पर आधारित
हैन्सर्ड।	शोध रिपोर्ट।
जनसंख्या की जनगणना।	वास्तविक प्रलेखों पर आधारित
समाचारपत्र रिपोर्ट (?)	ऐतिहासिक अध्ययन।
सम्पर्क।	जनगणना आँकड़ों पर आश्रित
पत्र।	सांख्यिकीय अनुसन्धान
टेप रिकार्डिंग।	अन्य लोगों के पत्राचार पर आश्रित
फिल्म।	अनुसन्धान

'मैं इसे अभी लिख रहा हूँ'	'उसने इसे घटनास्थल पर ही लिखा'
घटना घटित होने के पश्चात् लेखक द्वारा संकलित	प्राथमिक पूर्व व्यापी स्रोतों की नकल
उदाहरण :	उदाहरण :
व्यक्तिगत डायरी।	डायरियों अथवा जीवन इतिहासों
संस्था के निरीक्षण के पश्चात् लिखी गई रिपोर्ट।	पर आश्रित अनुसन्धान।
'मैने इसे घटना के बाद लिखा'	'उसने इसे घटना के बाद लिखा'

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि प्राथमिक एवं द्वितीयक सामग्री में न केवल स्रोतों की दृष्टि से अन्तर होता है, अपितु मौलिकता एवं विश्वसनीयता में भी अन्तर होता है।

12.12 शब्दावली

प्राथमिक सामग्री - प्राथमिक सामग्री उस सामग्री, आँकड़ों या सूचनाओं को कहते हैं जोकि अनुसन्धानकर्ता (अथवा किसी अन्य व्यक्ति द्वारा) स्वयं प्राप्त की जाती है।

द्वितीयक सामग्री–द्वितीयक स्रोतों द्वारा एकत्रित सामग्री को द्वितीयक सामग्री कहा जाता है। इसे अनुसन्धानकर्ता दूसरों द्वारा किए गए अनुसन्धान से प्राप्त करता है अर्थात् इसे स्वयं अनुसन्धानकर्ता संकलित नहीं करता। इसमें प्रायः लिखित प्रलेखों को सम्मिलित किया जाता है

जीवन इतिहास–जीवन इतिहास शब्द का प्रयोग विस्तृत आत्मकथा अथवा किसी अन्य अन्वेषक द्वारा व्यक्ति-विशेष के बारे में लिखी गई जीवन सम्बन्धी आत्मकथा या विवरण के लिए किया जाता है।

सार्वजनिक प्रलेख–सार्वजनिक प्रलेखों में ऐसे प्रकाशित अथवा अप्रकाशित प्रलेखों को सम्मिलित किया जाता है जोकि किसी सरकारी, अर्द्ध-सरकारी अथवा गैर-सरकारी संगठनों एवं संस्थाओं द्वारा तैयार किए जाते हैं।

जनसंचार–जनसंचार से अभिप्राय संचार के उन माध्यमों से है जो किसी बात को एक ही समय पर लाखों-करोड़ों व्यक्तियों तक पहुँचाने की क्षमता रखते हैं। रेडियो, समाचार-पत्र, फिल्में, टेलीविजन आदि इसके प्रमुख माध्यम माने जाते हैं।

12.13 अभ्यास प्रश्न

1.प्राथमिक सामग्री किसे कहते हैं? इसके प्रमुख स्रोत बताइए।

2.द्वितीयक सामग्री किसे कहते हैं? इसके प्रमुख स्रोत कौन-से हैं?

3.प्राथमिक एवं द्वितीयक सामग्री में अन्तर स्पष्ट कीजिए।

4.प्राथमिक सामग्री क्या है? इसकी उपयोगिता एवं सीमाओं की विवेचना कीजिए।

5.द्वितीयक सामग्री क्या है? इसकी उपयोगिता एवं सीमाओं की विवेचना कीजिए।

6.सामाजिक अनुसन्धान में व्यक्तिगत प्रलेखों के प्रयोग पर विस्तृत टिप्पणी लिखिए।

7.निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिए–

(अ) सार्वजनिक प्रलेख

(ब) प्राथमिक सामग्री के प्रत्यक्ष स्रोत

(स) प्राथमिक सामग्री के अप्रत्यक्ष स्रोत

(द) जीवन इतिहास।

12.14 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- Allport, Gordon W., The Use of Personal Documents in Psychological Science, New York : Social Science Research Council, 1951.
- Bogardus, E. S., Introduction to Sociology, New York : Charles Scribner's Sons, 1922.
- Bowley, A. L., An Elementary Manual of Statistics, London : Macdonald and Evans, 1910.
- Connor, L. R., Statistics in Theory and Practice, London : Sir Isaac Pitman & Sons, 1964.
- Dollard, John, Criteria for the Life History with Analyses of Six Notable Documents, New York : P. Smith, 1949.
- Kerlinger, F. N., Foundations of Behavioural Research, New York : Holt, Rinehart, and Winston, 1979.
- Lundberg, G. A., Social Research, New York : Longmans Green and Co., 1951.
- Madge, John, The Tools of Social Science, New York : Longmans Green and Co., 1953.
- Mann, Peter H., Methods of Sociological Enquiry, Oxford : Blackwell, 1968.
- Palmer, V. M., Field Studies in Sociology, Chicago : Chicago University Press, 1928.
- Yang, Hsin Pao, Fact-finding with Rural People, Rome : Food and Agriculture Organization of the United Nations, 1955.

इकाई–13

सामग्री का वर्गीकरण एवं प्रदर्शन

Classification & Presentation of Data

इकाई की रूपरेखा

13.0 उद्देश्य

13.1 प्रस्तावना

13.2 सामग्री का वर्गीकरण

13.3 वर्गीकरण के उद्देश्य एवं आधार

13.4 वर्गीकरण के प्रकार

13.5 सामग्री विश्लेषण के स्तर : संकेतन, सारणीयन एवं निर्वचन

13.6 सामग्री का सारणीयन

13.7 सारणीयन के विभिन्न प्रकार

13.8 सारणी का निर्माण

13.9 सारणीयन की विधियाँ

13.10 सारणीयन की उपयोगिता

13.11 सारणीयन की सीमाएँ

13.12 सामग्री का निर्वचन

13.13 शब्दावली

13.14 अभ्यास प्रश्न

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

13.0 उद्देश्य

किसी भी अनुसन्धान का उद्देश्य अध्ययनरत समस्या के बारे में निष्कर्ष निकालना होता है। निष्कर्ष निकालने हेतु सामग्री को व्यवस्थित करना आवश्यक है। चूँकि सामाजिक विज्ञानों में संकलित सामग्री गुणात्मक होती है, इसलिए उससे निष्कर्ष निकालने हेतु उसे गणनात्मक रूप में परिवर्तित करना आवश्यक होता है। यह कार्य संकेतन द्वारा किया जाता है। वर्गीकरण एवं सारणीयन द्वारा सामग्री को व्यवस्थित रूप दिया जाता है ताकि सामग्री का निर्वचन किया जा सके तथा उसके आधार पर निष्कर्ष निकाले जा सकें। इस इकाई में सामग्री के वर्गीकरण,

संकेतन एवं सारणीयन सम्बन्धी आवश्यक जानकारी उपलब्ध कराने का प्रयास किया गया है। साथ ही, सामग्री के निर्वचन को भी संक्षेप में समझाया गया है।

13.1 प्रस्तावना

सामाजिक अनुसन्धान किसी समस्या से प्रारम्भ होता है। समस्या से सम्बन्धित उपकल्पनाएँ बनाई जाती हैं तथा उनका परीक्षण करने के लिए विभिन्न अनुसन्धान प्रविधियों में से सबसे उपयुक्त प्रविधि या प्रविधियों का चयन करके सामग्री का संकलन किया जाता है। सामग्री संकलित कर लेने के पश्चात् सामग्री को व्यवस्थित करना अनिवार्य है ताकि अर्थपूर्ण ढंग से सामग्री पर आधारित निष्कर्ष निकाले जा सकें। वर्गीकरण का उद्देश्य बिखरी हुई सामग्री को व्यवस्थित करना है अर्थात् इसे विभिन्न श्रेणियों में विभाजित करके अर्थपूर्ण बनाना है। सामग्री के प्रदर्शन (प्रस्तुतिकरण) एवं उससे निष्कर्ष निकालने हेतु बिखरी हुई सामग्री को वर्गीकरण द्वारा व्यवस्थित करना आवश्यक होता है। सामग्री का वर्गीकरण एवं सारणीयन सामग्री को निष्कर्ष निकालने योग्य बनाता है। इसीलिए निर्वचन हेतु सामग्री का वर्गीकरण एवं सारणीयन आवश्यक माना जाता है।

13.2 सामग्री का वर्गीकरण

गणनात्मक अनुसन्धान द्वारा संकलित सामग्री अव्यवस्थित एवं बिखरी हुई होती है। उससे किसी भी प्रकार के निष्कर्ष निकालने हेतु उसे व्यवस्थित करना आवश्यक होता है। सामाजिक अनुसन्धान में यह कार्य वर्गीकरण द्वारा किया जाता है। वर्गीकृत सामग्री को सारणीयन द्वारा प्रस्तुत किया जाता है तथा निर्वचन द्वारा निष्कर्ष निकाले जाते हैं। वर्गीकरण का अर्थ विभिन्न वस्तुओं अथवा बिखरी हुई सामग्री को समान गुणों (अथवा विशेषताओं) के आधार पर विभिन्न श्रेणियों अथवा वर्गों में विभाजित करना है। इस प्रकार से वर्गीकरण एकरूपता एवं समानताओं के आधार पर तथ्यों, आँकड़ों या सामग्री का विभिन्न श्रेणियों में विभाजन है। मन (Mann) के अनुसार, ''वर्गीकरण अनिवार्य रूप से वस्तुओं को उनकी समान विशेषताओं के आधार पर एक साथ रखने का एक प्रकार है ताकि उन्हें सरलता से समझा जा सके।'' कॉनर (Connor) ने वर्गीकरण को परिभाषित करते हुए लिखा है कि, ''वर्गीकरण वस्तुओं को उनकी समानताओं अथवा गुणों के आधार पर समूहों एवं वर्गों में क्रमबद्ध करने की एक प्रक्रिया है जिसका उद्देश्य विभिन्न व्यक्तियों के समान गुणों को खोज कर एक साथ रखना है।'' इसी भाँति, एलहांस (Elhance) के अनुसार, ''सादृश्यताओं व समानताओं के अनुसार सामग्री को समूहों या वर्गों में व्यवस्थित करने की प्रक्रिया को तकनीकी दृष्टि से वर्गीकरण कहा जा सकता है।''

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर हम कह सकते हैं कि वर्गीकरण एकत्रित सामग्री को समान गुणों के आधार पर विभिन्न वर्गों अथवा श्रेणियों में विभाजन करने की प्रक्रिया है ताकि सामग्री को व्यवस्थित करके निष्कर्ष निकालने में सहायता मिल सके। वर्गीकरण के आधार पर सामग्री को

सरलता से समझा जा सकता है। इसके बिना सामग्री का विश्लेषण करना सम्भव नहीं है। वर्गीकरण का उद्देश्य संकलित सामग्री को श्रेणीबद्ध करके समझने योग्य बनाना है।

एक अच्छे वर्गीकरण की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं–

1.वर्गीकरण स्पष्ट होना चाहिए–वर्गीकरण का उद्देश्य सामग्री को व्यवस्थित करना है ताकि इससे अर्थपूर्ण निष्कर्ष निकाले जा सकें तथा इसे दूसरों को समझने योग्य बनाया जा सके। इसलिए इसकी सर्वप्रथम विशेषता इसका स्पष्ट होना है। अन्य शब्दों में यह कहा जा सकता है कि जिन श्रेणियों अथवा वर्गों में हम सामग्री का विभाजन करने जा रहे हैं, वे पूर्णतः स्पष्ट होने चाहिए।

2.विभिन्न वर्ग एक-दूसरे से भिन्न होने चाहिए–विभिन्न वर्गों की स्पष्टता के साथ-साथ वर्ग अथवा श्रेणियाँ पूर्णतः एक-दूसरे से भिन्न होनी चाहिए अर्थात् प्रत्येक वर्ग का निर्धारण भिन्न-भिन्न विशेषताओं के आधार पर किया जाना चाहिए ताकि एक वस्तु को एक ही वर्ग अथवा श्रेणी में रखा जा सके। अगर किसी एक वस्तु को एक से अधिक श्रेणियों में रखा जा सकता है तो वह वर्गीकरण, वास्तव में, वर्गीकरण ही नहीं है।

3.वर्गीकरण का आधार एक होना चाहिए–वर्गीकरण अनेक आधारों पर किया जा सकता है परन्तु वही वर्गीकरण एक अच्छा वर्गीकरण कहलाता है जोकि एक नियम पर आधारित है अर्थात् समानताएँ या भिन्नताएँ सामग्री के किसी एक गुण से सम्बन्धित हैं। उदाहरण के लिए, अगर कक्षा के छात्रों का वर्गीकरण करना है तो अनेक आधारों (यथा आयु, लिंग, भार, ऊँचाई, शिक्षा में निपुणता आदि) में से एक समय पर एक ही आधार चुना जाना चाहिए। इतना हो सकता है कि दूसरे आधार पर प्रमुख श्रेणियों का उपवर्गीकरण कर लिया जाए। अगर वर्गीकरण का एक ही आधार है तो एक वर्ग की इकाइयों में सजातीयता होगी।

4.वर्गीकरण में स्थायित्व होना चाहिए–एक अच्छा वर्गीकरण वह है जिसका स्थायी महत्त्व है क्योंकि अगर इसमें स्थायित्व नहीं है अर्थात् कभी एक आधार पर तथा कभी दूसरे आधार पर वर्गीकरण किया गया है तो तथ्यों की तुलना सम्भव नहीं हो सकेगी।

5.वर्गों अथवा श्रेणियों की संख्या उपयुक्त होनी चाहिए–वर्गीकरण की श्रेणियाँ कितनी होनी चाहिए? इसके बारे में निश्चित रूप से कहना कठिन कार्य है। एक अच्छे वर्गीकरण की श्रेणियाँ सामग्री की विविधता तथा संख्या एवं वर्ग विस्तार को सामने रखकर सुनिश्चित की जानी चाहिए। वर्गों अथवा श्रेणियों की संख्या के साथ-साथ वर्गों में विभाजित इकाइयों की संख्या का भी ध्यान रखा जाना चाहिए ताकि ऐसा न हो जाए कि दो वर्गों में एक में तो पंचानबे प्रतिशत इकाइयाँ आ जाएँ तथा दूसरे में केवल पाँच प्रतिशत ही रहें। ऐसे वर्गीकरण सामग्री के विश्लेषण में अधिक सहायक नहीं होते हैं।

6.वर्गीकरण सर्वांगीण होना चाहिए–वर्गीकरण की एक अन्य प्रमुख विशेषता यह है कि वर्गीकरण सर्वांगीण या निःशेष होना चाहिए अर्थात् कोई भी इकाई ऐसी नहीं बचनी चाहिए जिसे किसी न

किसी श्रेणी में न रखा जा सके। अन्य शब्दों में यह कहा जा सकता है कि विभिन्न वर्गों की इकाइयों का कुल योग सम्पूर्ण सामग्री के कुल योग के बराबर होना चाहिए।

7.वर्गीकरण में परिवर्तनशीलता होनी चाहिए–स्थायित्व होने के साथ-साथ वर्गीकरण में परिवर्तनशीलता का अंश भी पाया जाना अनिवार्य है ताकि अगर इसे नवीन परिस्थितियों में लागू किया जाए तो यह सरलता से अनुकूलन कर सके। वास्तव में, कोई भी वर्गीकरण आज के परिवर्तनशील युग में सदा के लिए स्थायी नहीं हो सकता तथा इसमें थोड़ा बहुत लचीलापन होना अनिवार्य है।

13.3 वर्गीकरण के उद्देश्य एवं आधार

प्रत्येक विषय अपनी विषय-वस्तु का वर्गीकरण करके उसे व्यवस्थित रूप से समझने का प्रयत्न करता है। वास्तव में, वर्गीकरण किसी भी विषय के वैज्ञानिक अध्ययन का एक प्रमुख चरण है।

वर्गीकरण के प्रमुख उद्देश्य इस प्रकार हैं–

1.तथ्यों की प्रकृति को स्पष्ट करना–वर्गीकरण का प्रथम उद्देश्य एकत्रित तथ्यों की प्रकृति को स्पष्ट करना है अर्थात् यह बताना है कि इनमें क्या समानताएँ एवं क्या असमानताएँ हैं। विभिन्न वर्गों की तुलना से यह स्पष्ट हो सकता है।

2.तथ्यों को संक्षिप्त एवं बोधगम्य बनाना–क्योंकि वर्गीकरण का आधार तथ्यों का तार्किकता के आधार पर अर्थात् वस्तुनिष्ठ रूप में समानताओं एवं असमानताओं के आधार पर समूहों एवं श्रेणियों में बाँटना है, इसलिए वर्गीकरण का दूसरा उद्देश्य तथ्यों को संक्षिप्त तथा बोधगम्य बनाना है। वास्तव में, तथ्यों को बोधगम्य बनाना वर्गीकरण का सबसे प्रमुख उद्देश्य है।

3.तथ्यों के विश्लेषण में सहायता देना–वर्गीकरण का तीसरा उद्देश्य एकत्रित अनुसन्धान सामग्री, तथ्यों अथवा आँकड़ों को अग्रिम कार्य अर्थात् विश्लेषण के लिए उपयुक्त बनाना है। वर्गीकरण के पश्चात् तथ्यों की व्याख्या सरलता से की जा सकती है।

4.सामान्यीकरण में सहायता देना–वर्गीकरण के आधार पर सामग्री के बारे में सामान्यीकरण करना सरल हो जाता है। वास्तव में, समानताओं और असमानताओं के आधार पर अगर विषय-वस्तु में भेद कर लिया जाए तो सामान्यीकरण की प्रक्रिया संक्षिप्त एवं सरल हो जाती है।

5.तुलना में सहायता देना–वर्गीकरण का एक अन्य उद्देश्य सामग्री को तुलनात्मक अध्ययनों के लिए उपयुक्त बनाना है। विभिन्न वर्गों की तुलना करके निष्कर्ष निकालना भी सरल हो जाता है।

एकत्रित सामग्री का वर्गीकरण किस आधार अथवा नियम पर किया जाए? यह एक ऐसा प्रश्न है जिसका समाधान सामग्री की प्रकृति तथा प्रकार पर निर्भर करता है। ऐसे आधार का चयन करना अनिवार्य है जिससे कि वर्गीकरण वैज्ञानिक हो सके तथा इसमें एक अच्छे वर्गीकरण की सभी विशेषताएँ सम्मिलित हो सकें।

सामाजिक अनुसन्धान में सामान्यतः निम्नलिखित प्रमुख आधारों को सामने रखकर वर्गीकरण किया जाता है–

1.गुणात्मक आधार–अधिकांशतः सामाजिक अनुसन्धान में गुणात्मक आधार पर ही वर्गीकरण किए जाते हैं। इसमें, जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है, वर्गीकरण का आधार कोई गुण माना जाता है तथा इसी गुण के आधार पर तथ्यों अथवा सामग्री को विभिन्न श्रेणियों में विभाजित किया जाता है। उदाहरण के लिए, जाति, प्रजाति, धर्म, वैवाहिक स्थिति, शैक्षणिक योग्यता, व्यवसाय इत्यादि विशेषताओं के आधार पर किया गया वर्गीकरण गुणात्मक वर्गीकरण कहा जाएगा। इस प्रकार के वर्गीकरण में क्योंकि प्रत्येक वर्ग की विशेषताएँ स्पष्टतया दूसरों से भिन्न हैं इसलिए यह सरल ही नहीं है अपितु इसमें अच्छे वर्गीकरण की अनेक अन्य विशेषताएँ भी पाई जाती हैं जैसे वर्गों की सीमित संख्या तथा वर्गों का एक-दूसरे से अपवर्जी (Exclusive) होना इत्यादि।

2.गणनात्मक आधार–अगर एकत्रित सामग्री ऐसी है कि उसे गुणों के आधार पर व्यक्त करने की अपेक्षा संख्याओं में व्यक्त करना सरल है तो गणनात्मक आधार का सहारा लिया जाता है। उदाहरण के लिए, ऊँचाई, वजन, आय, व्यय, उत्पादन इत्यादि के आधार पर किया गया वर्गीकरण गणनात्मक वर्गीकरण है। सामग्री का आवृत्ति वितरण (Frequency distribution) के आधार पर वर्गीकरण अर्थात् इसे उतरते एवं चढ़ते क्रम में श्रेणीबद्ध करना भी गणनात्मक वर्गीकरण है।

3.सामयिक आधार–सामग्री का वर्गीकरण विभिन्न समयों को सामने रखकर भी किया जा सकता है। ऐसे अनुसन्धानों में जोकि विकास सम्बन्धी अथवा पैनल अध्ययन द्वारा किए गए हैं, समय एक महत्त्वपूर्ण आधार हो सकता है। समय को दिन, सप्ताह, माह अथवा वर्षों में व्यक्त किया जा सकता है। प्रत्येक दस वर्ष के बाद की जाने वाली जनगणना सामयिक आधार का ही एक उदाहरण है। विभिन्न वर्षों के आधार पर किसी देश की जनसंख्या में वृद्धि अथवा उत्पादन अथवा प्रगति इत्यादि को बताना सामयिक आधार पर वर्गीकरण करना ही है।

4.भौगोलिक आधार–वर्गीकरण में समय के अतिरिक्त स्थान भी एक महत्त्वपूर्ण आधार हो सकता है। विभिन्न स्थानों के आधार पर या भौगोलिक आधार पर भी सामग्री का वर्गीकरण किया गया है। विभिन्न प्रान्तों अथवा किसी एक प्रान्त के जिलों में जनसंख्या का वर्गीकरण भौगोलिक वर्गीकरण ही है। समय तथा स्थान के आधार पर वर्गीकरण करना एक सरल कार्य है।

13.4 वर्गीकरण के प्रकार

वर्गीकरण के विभिन्न आधारों को सामने रखकर वर्गीकरण को चार प्रमुख प्रकारों में विभाजित किया जा सकता है।

ये आधार एवं उनके अनुरूप वर्गीकरण के प्रकार निम्न प्रकार हैं–

13.4.1गुणात्मक वर्गीकरण या गुणों के आधार पर वर्गीकरण

विभिन्न गुणों या विशेषताओं के आधार पर तथ्यों का वर्गीकरण गुणात्मक वर्गीकरण कहा जाता है अर्थात् जब सामग्री को किसी विशेष गुण के होने या न होने के आधार पर श्रेणियों में बाँटा जाता है तो उसे गुणात्मक वर्गीकरण कह सकते हैं। सामाजिक अनुसन्धान में साक्षरता, परिवार का स्वरूप, जाति, धर्म, लिंग इत्यादि के गुणों के आधार पर वर्गीकरण की आवश्यकता होती है। गुणात्मक वर्गीकरण दो प्रकार का है–

1.सरल या द्वैत वर्गीकरण–इस प्रकार के वर्गीकरण में आँकड़ों को किसी एक गुण के आधार पर दो श्रेणियों में विभाजित कर लिया जाता है अर्थात् जिनमें वह गुण है उन्हें एक श्रेणी में तथा जिनमें नहीं है उन्हें दूसरी श्रेणी में रखा जाता है। यह दोनों श्रेणियाँ पूर्णतः अपवर्जी अर्थात् एक-दूसरे से भिन्न होती है। उदाहरण के लिए, निम्नलिखित वर्गीकरण द्वैत वर्गीकरण है–

पुरुष	ग्रामीण
जनसंख्या	समुदाय
स्त्री	नगरीय

ऐसे वर्गीकरण में 'हाँ' या 'नहीं' से ही वर्ग बनाए जाते हैं।

2.बहुगुणी वर्गीकरण–इस प्रकार के वर्गीकरण में दो अथवा दो से अधिक गुणों के आधार पर एक साथ वर्गीकरण किया जाता है। इसमें सामग्री को प्रारम्भ में एक गुण के आधार पर विभिन्न श्रेणियों में विभाजित किया जाता है तथा तत्पश्चात् उन श्रेणियों को दूसरे गुण के आधार पर उप-विभाजित किया जाता है। उदाहरण के लिए, किसी समुदाय में पहले लिंग के आधार पर तथा फिर शिक्षा के आधार पर वर्गीकरण करना बहुगुणी वर्गीकरण कहा जा सकता है–

शिक्षित

पुरुष

अशिक्षित

समुदाय

शिक्षित

स्त्री

अशिक्षित

बहुगुणी वर्गीकरण का अर्थ यह नहीं है कि इसमें एक ही आधार पर आँकड़ों को दो श्रेणियों में बाँटा जाए। जैसे धर्म के आधार पर जनसंख्या को हिन्दू, मुस्लिम, सिक्ख, ईसाई में बाँटना बहुगुणी वर्गीकरण नहीं है क्योंकि इसमें एक ही गुण को आधार माना गया है। अगर इन्हें आगे

भी हिन्दुओं तथा मुसलमानों के विभिन्न मतों (पंथों) में वर्गीकृत करें तभी यह बहुगुणी वर्गीकरण कहा जाएगा अर्थात् दो अथवा दो से अधिक गुणों को आधार मानकर एक साथ वर्गीकरण करना ही बहुगुणी वर्गीकरण है।

13.4.2गणनात्मक वर्गीकरण या चरों के आधार पर वर्गीकरण

यह वह वर्गीकरण है जिसमें सामग्री को अंकों अर्थात् संख्याओं में प्रदर्शित किया जाता है। उदाहरण के लिए, आय, व्यय, लम्बाई के आधार पर वर्गीकरण करना अथवा तथ्यों का आवृत्ति वितरण गणनात्मक वर्गीकरण है।

यह वर्गीकरण निम्न प्रकार का हो सकता है–

1.असतत श्रेणी के अनुसार वर्गीकरण–इस प्रकार के वर्गीकरण को खण्डित अथवा विच्छिन्न वर्गीकरण भी कहा जाता है। इसमें मूल्यों की आवृत्ति (Frequency) जितनी बार होती है उसे उसी संख्या के सामने लिखकर एक आवृत्ति सारणी (इेलिहर्म्र्ब्ूत) के रूप में दर्शाया जाता है, जैसे–

छात्रों की लम्बाई (फुटों में)	**छात्रों की संख्या (आवृत्ति)**
5·0 से कम	10
5·0	15
5·1	20
5·2	15
5·3	17
5·4	15
5·5 से अधिक	10
योग	**102**

2.सतत श्रेणी अथवा वर्गान्तर के अनुसार वर्गीकरण–इस प्रकार के वर्गीकरण को अखण्डित अथवा अविच्छिन्न वर्गीकरण भी कहा जाता है तथा इसका प्रयोग सामग्री की संख्या अधिक होने के कारण समग्री को पृथक्-पृथक् प्रस्तुत न करके वर्गों में किया जाता है। वर्ग अथवा वर्गान्तर की सीमाएँ स्वेच्छिक तौर पर निश्चित की जाती हैं।

प्राप्तांक	**आवृत्ति**
20 से कम	200
20–30	150
30–40	100

40–50	90
50–60	60
60–70	50
70 से अधिक	50
योग	**700**

उपर्युक्त सारणी में 700 विद्यार्थियों का उनके प्राप्तांकों के आधार पर वर्गीकरण दर्शाया गया है।वर्गान्तर के अनुसार वर्गीकरण अपवर्जी श्रेणी (Exclusive series) अथवा समावेशिक श्रेणी (Inclusive series) के आधार पर हो सकता है। पहले में वर्गान्तर की अवर सीमा या अधःसीमा (थ्दी त्सू) और उच्च सीमा (Upper limit) अपवर्जी होती है जबकि दूसरे में एक वर्गान्तर की उच्च सीमा अगले वर्गान्तर की अवर सीमा हो जाती है जैसे–

अपवर्जी श्रेणी (Exclusive series)

प्राप्तांक	छात्रों की संख्या (आवृत्ति)
0–9	15
10–19	25
20–29	30
30–39	70
40–49	125
50–59	200
60–69	15
योग	**480**

समावेशी श्रेणी (Inclusive series)

प्राप्तांक	**छात्रों की संख्या (आवृत्ति)**
0–10	15
10–20	25
20–30	30
30–40	70
40–50	125
50–60	200
60–70	15
योग	**480**

वर्गान्तर वर्गीकरण में यद्यपि अवर तथा उच्च सीमा का निर्धारण स्वेच्छिक तौर पर किया जाता है फिर भी इस बात का ध्यान रखा जाता है कि वर्ग संख्या 5 से 20 के बीच में ही होनी चाहिए। वास्तव में, यह सामग्री की प्रकृति एवं विस्तार पर निर्भर करता है। वर्ग विस्तार का समान होना एक अच्छे वर्गीकरण के लिए अनिवार्य है।

13.4.3सामयिक वर्गीकरण

जब सामग्री अथवा तथ्यों का वर्गीकरण समय विशेष के आधार पर किया जाता है तो इसे सामयिक वर्गीकरण कहा जा सकता है। उदाहरणार्थ, भारत में 1991 ई0 से 2001 ई0 तक के दशक में अपराध का विस्तार एवं आयतन

13.4.4 स्थानानुसार वर्गीकरण

एकत्रित आँकड़ों को स्थान अथवा भौगोलिक स्थिति के आधार पर विभिन्न श्रेणियों में विभाजित करना स्थानानुसार वर्गीकरण कहा जा सकता है। उदाहरण के लिए, भारत के विभिन्न राज्यों तथा केन्द्र शासित प्रदेशों में 2001 ई0 में आई0 पी0 सी0 के अपराध के मामले, आयतन तथा अपराधिता की श्रेणी सम्बन्धी वर्गीकरण स्थानानुसार वर्गीकरण है–

क्रम संख्या	राज्य/केन्द्र शासित प्रदेश	अपराध के कुल मामले	पूरे भारत में प्रतिशत	कुल अपराधों का आयतन	अपराधिता की श्रेणी
1.	आन्ध्र प्रदेश	130089	7·4	171·8	19
2.	अरुणाचल	2342	0·1	214·7	9

	प्रदेश				
3.	असम	36877	2·1	138·4	22
4.	बिहार	88432	5·0	106·7	26
5.	छत्तीसगढ़	38460	2·2	184·9	14
6.	गोवा	2341	0·1	174·2	18
7.	गुजरात	103419	5·8	204·4	11
8.	हरियाणा	38759	2·2	183·8	16
9.	हिमाचल प्रदेश	11499	0·6	189·2	13
10.	जम्मू और कश्मीर	19505	1·1	193·7	12
11.	झारखण्ड	25447	1·4	94·6	29
12.	कर्नाटक	109098	6·2	206·9	10
13.	केरल	103847	5·9	326·2	4
14.	मध्य प्रदेश	181741	10·3	301·0	5
15.	महाराष्ट्र	171233	9·7	177·0	17
16.	मणिपुर	2489	0·1	104·2	27
17.	मेघालय	1687	0·1	73·2	33
18.	मिजोरम	2246	0·1	252·1	7
19.	नागालैण्ड	1234	0·1	62·0	34
20.	उड़ीसा	46661	2·6	127·1	23
21.	पंजाब	27774	1·6	114·3	24
22.	राजस्थान	155185	8·8	274·8	6
23.	सिक्किम	444	0·0	82·2	31
24.	तमिलनाडु	154801	8·7	249·2	8

25.	त्रिपुरा	2801	0·2	87·8	30
26.	उत्तर प्रदेश	178129	10·1	107·3	25
27.	उत्तरांचल	8073	0·5	95·2	28
28.	पश्चिम बंगाल	61563	3·5	76·7	32
	कुल राज्य	1707176	96·4	168·8	–
29.	अण्डमान और निकोबार द्वीपसमूह	658	0·0	184·8	15
30.	चण्डीगढ़	3397	0·2	377·0	3
31.	दादरा और नागर हवेली	350	0·0	159·1	20
32.	दमन और दीव	239	0·0	151·3	21
33.	दिल्ली	54384	3·1	394·6	2
34.	लक्षद्वीप	36	0·0	59·0	35
35.	पाण्डिचेरी	4068	0·2	417·7	1
	कुल (केन्द्र शासित प्रदेश)	63132	3·6	383·7	–
	कुल (सम्पूर्ण भारत)	1769308	100·0	172·3	–

इन चार प्रकार के वर्गीकरणों के अतिरिक्त आँकड़ों का आवृत्तिहीन अथवा क्रमिक ‍ींब) श्रेणी (माला) के अनुसार भी वर्गीकरण किया जा सकता है जिसमें इकाइयों को माप के उतार या चढ़ाव के आधार पर क्रमबद्ध किया जाता है।

वर्गीकरण के उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि वर्गीकरण की सम्पूर्ण प्रक्रिया सभी प्रकार की सामग्री (जैसे वस्तुओं, क्रियाओं, मनोवृत्तियों, विश्वासों इत्यादि) को समूहों में बाँटने से

सम्बन्धित है ताकि जटिल परिस्थिति अथवा आँकड़ों को समझा जा सके। कुछ परिस्थितियों में वर्गीकरण करना सरल है (यथा लिंग अथवा आयु के आधार पर वर्गीकरण करना), जबकि अन्य परिस्थितियों में वर्गीकरण अपने आप में एक कठिन कार्य हो सकता है।

सामग्री के विश्लेषण में वर्गीकरण सबसे पहला चरण है जिसमें सामग्री को व्यवस्थित किया जाता है परन्तु वर्गीकरण कर लेने मात्र से सामग्री के बारे में निष्कर्ष नहीं निकाले जा सकते। वर्गीकृत सामग्री का सारणीयन एवं निर्वचन अन्य महत्त्वपूर्ण चरण हैं जिससे कि इस व्यवस्थित सामग्री का आगे विश्लेषण किया जाता है।

सामाजिक अनुसन्धानों में वैज्ञानिक वर्गीकरण की दिशा में कोई अधिक प्रगति नहीं हो पाई है। टी0 बी0 बॉटोमोर (T. B. Bottomore) ने इसलिए समाजशास्त्र में किए गए वर्गीकरणों के सन्दर्भ में लिखा है कि, ''सामाजिक वर्गीकरण के क्षेत्र में अधिक लाभकारी कार्य किया गया है हालांकि अभी इससे वर्गीकरण की सामान्यतः स्वीकृत कोई योजना नहीं बन पाई है।''

13.5 सामग्री विश्लेषण के स्तर : संकेतन, सारणीयन एवं निर्वचन

कुछ लोगों का विचार है कि सामग्री संकलन करना ही अनुसन्धान है जोकि एक भ्रामक विचार है। सामग्री का विश्लेषण वैज्ञानिक अनुसन्धान का एक महत्त्वपूर्ण चरण है जिससे सामग्री को क्रमबद्ध करके निष्कर्ष निकाले जाते हैं। सामग्री के विश्लेषण में मुख्य रूप से तीन कार्यों का सम्पादन करना पड़ता है–संकेतन (Coding), सारणीयन (Tabulation) तथा निर्वचन (Interpretation)। सामान्य रूप से जिस सामग्री का संकलन किया जाता है वह गुणात्मक (Qualitative) होती है। इन गुणात्मक सूचनाओं को संकेतन द्वारा गणनात्मक (Quantitative) सूचनाओं में परिवर्तित किया जाता है। मोजर एवं कैल्टन (Moser and Kalton) के अनुसार, ''सर्वेक्षणों के संकेतन का उद्देश्य किसी प्रश्न के उत्तरों को अर्थपूर्ण श्रेणियों में वर्गीकृत करना है ताकि उनका क्रम स्पष्ट हो सके।'' उनके अनुसार प्रश्नों के वितरण एवं वर्गों के बारे में निर्णय पर संकेतन प्रक्रिया निर्भर करती है। प्रत्येक प्रश्न के लिए एक संकेतन ढाँचा (Coding frame) बनाया जा सकता है।

संकेतन एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके माध्यम से संकलित गुणात्मक सामग्री को ऐसा वस्तुनिष्ठ रूप प्रदान किया जाता है जिससे उसको संख्यात्मक एवं मात्रात्मक रूप में परिवर्तित किया जा सके तथा निष्कर्ष निकालने हेतु उसे सारणीबद्ध किया जा सके। करलिंगर (Kerlinger) के शब्दों में, ''संकेतन से एक ऐसे पद का बोध होता है जोकि प्रश्नों के प्रत्युत्तरों एवं सूचनादाता द्वारा प्राप्त सूचनाओं को विशिष्ट संवर्गों में इस उद्देश्य से प्रस्तुत करता है ताकि उसका विश्लेषण किया जा सके।'' संकेत सामान्यतः संख्याओं (1, 2, 3, 4.........) अथवा अंग्रेजी के शब्दों (a,

b, c, d या x, y, z) द्वारा व्यक्त किए जाते हैं। उदाहरणार्थ, यदि किसी कक्षा के छात्रों द्वारा प्राप्त अंकों के वर्गान्तर एक समान हैं तो किसी एक वर्ग (सामान्यतः वितरण के केन्द्र या केन्द्र के आस-पास स्थित) के अंकों को 0 संकेत दिया जा सकता है। यदि वितरण में 9 वर्ग हैं तथा मध्य वर्ग को 0 संकेत दिया गया है तो उत्तरोत्तर वर्गों को 4, 3, 2, 1, 0, 1, 2, 3 एवं 4 मूल्यों द्वारा व्यक्त किया जा सकता है।

आजकल समाजशास्त्रीय अनुसन्धान में पहले से ही प्रश्नों के उत्तरों का संकेतन कर लिया जाता है जिससे बाद में विश्लेषण सरलता से किया जा सके। यदि प्रत्येक प्रश्न के लिए एक संकेतन ढाँचा है तो इसके संगठित रूप को संकेतन पुस्तक (ण्द्ा ंददव्) कहा जाता है। पहले संकेतन मशीन द्वारा छिद्रित कार्डों (Punch cards) पर किया जाता है क्योंकि इससे कम्प्यूटर द्वारा सम्पूर्ण सामग्री का विश्लेषण सम्भव हो जाता है, परन्तु आज छिद्रित कार्डों के स्थान पर सामग्री सीधे कम्प्यूटर पर फीड की जाती है।

संकेतन द्वारा जो गणनात्मक सूचनाएँ प्राप्त होती हैं उन्हें सारणीयन द्वारा व्यवस्थित रूप प्रदान किया जाता है ताकि सामग्री को सरलता से समझा जा सके। यदि सूचनादाताओं की संख्या कम है तो हाथ द्वारा सारणीयन (Hand tabulation) किया जा सकता है। सारणीयन, सामग्री को सांख्यिकीय विश्लेषण योग्य बनाता है।

सामग्री को सारणियों के रूप में वर्गीकृत कर लेने के पश्चात् उसका निर्वचन किया जाता है ताकि निष्कर्ष निकाले जा सकें और सामान्य नियमों का निर्माण किया जा सके। मोजर और कैल्टन का कथन है कि, ''सर्वेक्षण परिणामों का निर्वचन साधारण सारणीयन के सामान्य ज्ञान पर आधारित अध्ययन तथा सरल वर्णनात्मक सामग्री की व्याख्या से अधिक नहीं है।''

13.6 सामग्री का सारणीयन

सारणीयन सामाजिक अनुसन्धान में सामग्री के विश्लेषण का एक प्रमुख चरण है। सामग्री के वर्गीकरण के पश्चात् इसे और अधिक निश्चित रूपरेखा प्रदान करने के लिए तथा अधिक बोधगम्य बनाने के लिए सामग्री का सारणीयन किया जाता है। अतः सारणीयन का उद्देश्य सामग्री को सुव्यवस्थित रूप देकर अनुसन्धान समस्या को अधिक स्पष्ट करना है। सामग्री को जब सारणीयन के रूप में प्रस्तुत किया जाता है तो निर्वचन एवं निष्कर्ष निकालने की प्रक्रिया सरल हो जाती है। आनुभविक अध्ययनों, विशेषतः प्रश्नावली व अनुसूची पर आधारित अध्ययनों, में सारणीयन आज सामान्य व महत्त्वपूर्ण चरण माना जाता है। प्रस्तुत अध्याय में सामग्री के सारणीयन को समझाने का प्रयास किया गया है।

एकत्रित सामग्री को किसी तार्किक क्रम में रखना ही सारणीयन कहलाता है तथा इसका प्रारम्भ सामग्री के वर्गीकरण के पश्चात् शुरू होता है। सारणीयन में वर्गीकृत आँकड़ों को एक तालिका अथवा सारणी के अन्तर्गत इस प्रकार से कॉलमों और कतारों में दिखाया जाता है कि उनका

तुलनात्मक महत्त्व पूरी तरह से स्पष्ट हो जाए। सैल्टिज, जहोदा एवं अन्यों (Selltiz, Jahoda and Others) के अनुसार, ''सारणीयन सामग्री के सांख्यिकीय विश्लेषण की तकनीकी प्रक्रिया का एक भाग है। सारणीयन का अनिवार्य काम विभिन्न श्रेणियों में आने वाली सामग्री को गिनना एवं दिखाना है।'' एलहांस (Elhance) के शब्दों में, ''विस्तृत अर्थों में सारणीयन सामग्री की कॉलमों एवं कतारों में एक क्रमबद्ध व्यवस्था है।'' कॉनर (Connor) ने इसे परिभाषित करते हुए लिखा है कि, ''सारणीयन किसी विचाराधीन समस्या को स्पष्ट करने के उद्देश्य से किया जाने वाला संख्यात्मक सामग्री का क्रमबद्ध एवं सुव्यवस्थित प्रस्तुतीकरण है।''

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि सारणीयन सामग्री को गणनात्मक रूप से विभिन्न कॉलमों और कतारों में प्रस्तुत करने की एक विधि है ताकि सामग्री की विशेषताओं एवं उसका तुलनात्मक महत्त्व स्पष्ट हो सके। एक तरह से यह सांख्यिकीय आशुलिपि (Shorthand of statistics) है।

सारणीयन सामग्री के संकलन एवं उसके निर्वचन के बीच की एक प्रक्रिया है जिसका सबसे प्रमुख उद्देश्य सामग्री को इस प्रकार व्यवस्थित करना है कि इसे आसानी से समझा जा सके। सारणीयन के प्रमुख उद्देश्य इस प्रकार हैं–

1.सामग्री को सुव्यवस्थित बनाना–सारणीयन का प्रमुख उद्देश्य एकत्रित सामग्री को वर्गीकरण कर लेने के पश्चात् इसे अधिक व्यवस्थित रूप प्रदान करना है ताकि अगले चरण अर्थात् निर्वचन एवं निष्कर्ष निकालने की प्रक्रिया सरल हो सके।

2.सामग्री को बोधगम्य बनाना–सारणीयन का दूसरा प्रमुख उद्देश्य सामग्री को सरल रूप से कॉलमों एवं कतारों में दिखाकर इन्हें अधिक बोधगम्य बनाना है अर्थात् सामग्री को इस रूप में प्रस्तुत करना है कि यह सुगमतापूर्वक समझी जा सके।

3.सामग्री की विशेषताओं को स्पष्ट करना–सारणीयन का प्रमुख उद्देश्य एकत्रित सामग्री की विविध प्रकार की विशेषताओं को प्रदर्शित करना है। तालिका अर्थात् सारणी देखते ही सारणी में दिखाई गई सामग्री की विशेषताएँ स्पष्ट हो जाती हैं।

4.सामग्री का संक्षिप्तीकरण करना–सारणीयन का उद्देश्य विस्तृत सामग्री का कम से कम स्थान पर प्रदर्शन करना है अर्थात् इसे इस प्रकार से संक्षिप्त रूप में प्रदर्शित करना है कि हम जो कहना चाहते हैं वह भी स्पष्ट हो जाए और स्थान भी अधिक न लगे।

5.सामग्री को तुलना योग्य बनाना–सारणीयन का अन्तिम उद्देश्य सामग्री की तुलना करने में सहायता देना है। वास्तव में, सारणीयन सामग्री को इस प्रकार व्यवस्थित रूप प्रदान कर देता है कि इसका तुलनात्मक महत्त्व भी सरलता से अपने आप स्पष्ट होने लगता है।

13.7 सारणीयन के विभिन्न प्रकार

सारणियाँ अनेक प्रकार की होती हैं तथा इनका वर्गीकरण चरों अथवा गुणों के आधार पर प्रमुख रूप से चार श्रेणियों अथवा वर्गों में किया जाता है जोकि इस प्रकार हैं–

1.एकगुणी सारणीयन–इसे एकल सारणी अथवा सरल सारणी भी कहा जा सकता है क्योंकि इस प्रकार के सारणीयन में केवल एक गुण अथवा लक्षण को ही दिखाया जाता है। उदाहरण के लिए, निम्ननिर्मित एकगुणी सारणीयन में बी0 ए0 प्रथम वर्ष के 215 छात्रों के 2003 की परीक्षा में समाजशास्त्रीय अन्वेषण वाले पेपर में प्राप्तांक दिखाए गए हैं–

2009 ई0 में बी0 ए0 प्रथम वर्ष की परीक्षा में समाजशास्त्रीय अन्वेषण वाले पेपर में प्राप्तांक

प्राप्तांक	छात्रों की संख्या (आवृत्ति)
20 से कम	10
20–30	30
30–40	15
40–50	105
50–60	28
60–70	22
70 से अधिक	5
योग	**215**

उपर्युक्त सारणी में हमें केवल एक ही लक्षण अर्थात् बी0 ए0 द्वितीय वर्ष में समाजशास्त्रीय अन्वेषण वाले पेपर में प्राप्तांक के प्रत्येक वर्ग में छात्रों की संख्या का ही पता चलता है, अन्य किसी बात का पता नहीं चलता।

2. द्विगुणी सारणीयन–इस प्रकार की सारणी में दो परस्पर सम्बन्धित गुणों अथवा लक्षणों का प्रदर्शन एक साथ किया जाता है। जब किसी तथ्य के दो गुणों को प्रदर्शित करना होता है तो द्विगुणी सारणीयन का निर्माण किया जाता है। उदाहरण के लिए, अगर 215 विद्यार्थियों में छात्र एवं छात्राओं द्वारा 2003 की बी0 ए0 प्रथम वर्ष की परीक्षा के सामाजिक अनुसन्धान वाले पेपर में प्राप्तांकों को दिखाना है, तो निम्न प्रकार की द्विगुणी सारणी का प्रयोग किया जा सकता है–

2009 ई0 में बी0 ए0 प्रथम वर्ष की परीक्षा में समाजशास्त्रीय अन्वेषण वाले पेपर में छात्र-छात्राओं के लिंग के अनुसार प्राप्तांक

प्राप्तांक	विद्यार्थियों की संख्या		योग
	छात्र	छात्राएँ	
20 से कम	8	2	10
20–30	20	10	30
30–40	7	8	15
40–50	55	50	105
50–60	10	18	28
60–70	7	15	22
70 से अधिक	2	3	5
योग	**109**	**106**	**215**

उपर्युक्त द्विगुणी सारणी में हम इतना तो जानते ही हैं कि 20-30 के बीच प्राप्तांक पाने वाले विद्यार्थियों की संख्या 30 है परन्तु साथ ही यह भी स्पष्ट हो जाता है कि इनमें से 20 छात्र हैं जबकि 10 छात्राएँ हैं। इस प्रकार, इस सारणी में दो गुणों (प्राप्तांक पाने वाले विद्यार्थियों एवं उनके लिंग) का एक साथ प्रदर्शन किया गया है।

3.त्रिगुणी सारणीयन–त्रिगुणी सारणी में किसी घटना अथवा तथ्य से सम्बन्धित तीन विशेषताओं का एक साथ प्रदर्शन किया जाता है। उदाहरण के लिए, अगर 2003 की बी0 ए0 प्रथम वर्ष की परीक्षा के सामाजिक अनुसन्धान वाले पेपर में 215 छात्रों के प्राप्तांक लिंग के आधार के साथ-साथ वैवाहिक स्तर के आधार पर भी दिखाए जाएँ तो इस प्रकार की सारणी को त्रिगुणी सारणी कहा जाएगा। अग्रनिर्मित सारणी द्वारा इसे स्पष्ट किया जा सकता है–

2009 ई0 में बी ए0 प्रथम वर्ष की परीक्षा में समाजशास्त्रीय अन्वेषण वाले पेपर में लिंग व वैवाहिक स्तर के अनुसार प्राप्तांक

प्राप्तांक	छात्र			छात्राएँ				योग	
	वि0	अवि0	कुल	वि0	अवि0	कुल	वि0	अवि0	कुल
20 से कम	3	5	8	–	2	2	3	7	10
20–30	5	15	20	2	8	10	7	23	30
30–40	1	6	7	–	8	8	1	14	15

40–50	15	40	55	5	45	50	20	85	105
50–60	–	10	10	1	17	18	1	27	28
60–70	1	6	7	3	12	15	4	18	22
70 से अधिक	–	2	2	1	2	3	1	4	5
योग	**25**	**84**	**109**	**12**	**94**	**106**	**37**	**178**	**215**

उपर्युक्त सारणी में छात्रों के तीन परस्पर सम्बन्धित गुणों का एक साथ प्रदर्शन किया गया है। ये गुण हैं–प्राप्तांक, लिंग एवं वैवाहिक स्तर।

4.बहुगुणी सारणीयन–जब किसी घटना अथवा तथ्य से सम्बन्धित तीन से अधिक गुणों एवं विशेषताओं का प्रदर्शन एक साथ किया जाता है तो इसे बहुगुणी सारणी कहा जाता है। उदाहरण के लिए, यदि उपर्युक्त सारणी में हम छात्रों को उनके कॉलेजों के अनुसार और विभाजित कर दें तो यह बहुगुणी सारणी बन जाएगी। इस सारणी में छात्रों की चार विशेषताओं–(1) कॉलेज का नाम, (2) समाजशास्त्रीय अन्वेषण वाले पेपर में विद्यार्थियों के प्राप्तांक, (3) लिंग तथा (4) वैवाहिक स्तर का एक साथ प्रदर्शन किया गया है।

'क', 'ख', 'ग', कॉलेजों में बी0 ए0 प्रथम वर्ष के छात्रों के लिंग एवं वैवाहिक स्तर के आधार पर समाजशास्त्रीय अन्वेषण वाले पेपर में प्राप्तांक

	प्राप्तांक	**छात्र**			**छात्राएँ**			**योग**		
		वि0	**अवि0**	**खकुल**	**वि0**	**अवि0**	**कुल**	**वि0**	**अवि0**	**कुल**
'क'	20 से कम									
	20-30									
	30-40									
	40-50									
	50-60									
	60-70									
	70 से अधिक									
	योग									

'ख'	20 से कम									
	20-30									
	30-40									
	40-50									
	50-60									
	60-70									
	70 से अधिक									
	योग									
'ग'	20 से कम									
	20-30									
	30-40									
	40-50									
	50-60									
	60-70									
	70 से अधिक									
	योग									

13.8 सारणी का निर्माण

सारणी का निर्माण करना जितना सरल लगता है, वास्तव में, वह उतना ही कठिन है क्योंकि इसमे विविध प्रकार की सामग्री का एक साथ प्रदर्शन करना होता है।

सारणी के निर्माण की प्रक्रिया में निम्नलिखित बातें महत्त्वपूर्ण हैं अर्थात् इसका निर्माण करते समय निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना जरूरी है–

1.शीर्षक–प्रत्येक सारणी का एक उपयुक्त शीर्षक होना चाहिए जोकि उस सारणी में दिखाए गए तथ्यों के गुणों को स्पष्टतः वर्णन करता हो। शीर्षक पूरा, स्पष्ट तथा आकर्षक होना चाहिए एवं यह जहाँ तक सम्भव हो, दो पंक्तियों से अधिक नहीं होना चाहिए। इसे बड़े अक्षरों में लिखा

जाना चाहिए। एक अच्छे शीर्षक में विषय, समय, वर्गीकरण के आधार तथा सूचना के स्रोत का सम्मिलित होना अनिवार्य है। (उदाहरणार्थ देखें पूर्वोक्त एकगुणी, द्विगुणी, त्रिगुणी अथवा बहुगुणी सारणी का शीर्षक)।

2.स्तम्भ अथवा कॉलम–सारणी का निर्माण करते समय स्तम्भों के आकार का विशेष ध्यान रखा जाना चाहिए तथा कागज अथवा पृष्ठ के स्थान को ध्यान में रखते हुए स्तम्भों की संख्या एवं आकार का निर्धारण किया जाना चाहिए। प्रथम स्तम्भ (क्रम संख्या यदि नहीं है और यदि क्रम संख्या वाला स्तम्भ है तो उससे अगला स्तम्भ) बाकी स्तम्भों से बड़ा होता है क्योंकि इसमें विभिन्न श्रेणियों के नाम लिखे जाते हैं। स्तम्भ अधिक नहीं होने चाहिए तथा इनका आकार समान अनुपात के आधार पर रखा जाना चाहिए ताकि सारणी देखने में आकर्षक लगे। स्तम्भों का आकार इनमें लिखी जाने वाली संख्याओं के आधार पर निश्चित करना चाहिए। प्रत्येक सारणी में स्तम्भों का योग अन्तिम पंक्ति में दर्शाया जाना चाहिए।

3.अनुशीर्षक–प्रत्येक स्तम्भ का एक अनुशीर्षक होता है जो तथ्यों की प्रकृति अथवा गुण स्पष्ट करता है। अनुशीर्षक स्पष्ट होना चाहिए तथा इसे सुन्दर लेख में लिखा जाना चाहिए। यदि अनुशीर्षक के नीचे लिखी जाने वाली संख्याएँ बड़ी हैं तो हजारों, लाखों या दस लाख अर्थात् मिलियन में संख्याओं को अनुशीर्षक के नीचे लिखा जा सकता है।

4.कतारें अथवा पंक्तियाँ–क्षैतिज रेखाओं द्वारा बने खानों को (जोकि लम्बवत् रेखाओं को काटते हुए बनाए जाते हैं) कतारें कहा जाता है। कतारों में सूचना का आधार सामग्री का कोई भी गुण हो सकता है। वर्णनात्मक, भौगोलिक, सामाजिक लक्षण अथवा संख्यात्मक महत्त्व के आधार पर कतारें बनाई जा सकती हैं।

5.स्तम्भों का क्रम–स्तम्भों का क्रम सोच समझकर निर्धारित करना चाहिए। पहला स्तम्भ बड़ा होता है क्योंकि इसमें श्रेणियों का वितरण होता है। साथ ही, सारणी को सामान्यतः बायें से दायें ओर पढ़ा जाता है इसलिए सर्वाधिक महत्त्व की सूचनाएँ बायीं ओर के स्तम्भों में शुरू की जानी चाहिए। इतना ही नहीं, तुलना किए जाने वाले स्तम्भों को साथ-साथ रखा जाना भी अनिवार्य है।

6.टिप्पणियाँ–कई बार सारणी में दिए गए तथ्यों के बारे में विशेष सूचना देनी पड़ती है जिसका प्रदर्शन सारणी में सम्भव नहीं हो पाता। इस प्रकार की परिस्थितियों में सारणी में दिखाए गए आँकड़ों पर कोई संकेत जैसे ङ यो ङङ इत्यादि देकर नीचे इसी प्रकार का संकेत बनाकर टिप्पणी लिखी जा सकती है।

इसके अतिरिक्त सारणी का निर्माण करते समय सारणी के आकार, स्पष्टता, स्वच्छता तथा पतली, मोटी या दोहरी रेखाओं (पृथक् लक्षणों को प्रकट करते हुई) का विशेष ध्यान रखा जाना चाहिए।

13.9 सारणीयन की विधियाँ

सामग्री के सारणीयन के लिए प्रमुख रूप से दो विधियों का प्रयोग किया जाता है–हस्त सारणीयन तथा यांत्रिक सारणीयन। इन्हें निम्न प्रकार से स्पष्ट किया जा सकता है–

1.हस्त सारणीयन–हस्त सारणीयन विधि का प्रयोग उन परिस्थितियों में किया जाता है जबकि सामग्री सीमित हो। अधिक सामग्री होने पर हस्त सारणीयन की अपेक्षा यांत्रिक सारणीयन अधिक प्रचलित एवं महत्त्वपूर्ण है। परन्तु पहले अधिक सामग्री के लिए भी हस्त सारणीयन का ही प्रयोग किया जाता रहा है। इस प्रकार के सारणीयन में सर्वप्रथम टैली शीट (Tally sheet) बनाकर आँकड़ों को विभिन्न वर्गों में बाँटा जाता है। हस्त सारणीयन को भी दो प्रकार से किया जा सकता है–

(i)प्रत्येक इकाई की पूरी सूचना संकेतों (कोड शब्दों) द्वारा विभिन्न कार्डों और शीटों पर लिखी जा सकती है तथा इन्हें प्रश्नों एवं गुणों के अनुसार प्रत्यक्ष रूप से गिना जा सकता है। गिनने के लिए टैली शीट बनाई जा सकती है जिसमें एक तरफ (बायीं तरफ) श्रेणियों तथा बीच में इकाइयों की संख्या एक-एक करके लिखी जाती है। टैली शीट द्वारा प्रत्येक श्रेणी में आने वाली इकाइयों की संख्या अर्थात् आवृत्ति का पता चल जाता है। यांत्रिक सारणीयन के प्रयोग से पहले बड़े-बड़े प्रोजेक्टों में इसी विधि का प्रयोग किया जाता था।

(ii)हस्त सारणीयन की दूसरी विधि प्रत्येक इकाई (अर्थात् सूचनादाता) की सांकेतिक सूचना को पृथक् कार्डों पर लिखने की बजाय पहले एक मास्टर चार्ट (Master chart) बनाया जाता है जिसमें एक कतार में विभिन्न सूचनादाताओं की प्रत्येक प्रश्न की सूचना कोड शब्दों में लिखी जाती है। इसमें एक तरह से एक स्तम्भ में सूचनादाताओं द्वारा किसी प्रश्न के दिए गए उत्तर हैं। मास्टर चार्ट में क्रॉस सारणीयन दो प्रश्नों को एक साथ पढ़कर किया जा सकता है। मास्टर चार्ट विधि में भी टैली शीट बनाई जाती है तथा इसमें क्रॉस सारणीयन के लिए एक से अधिक व्यक्तियों की आवश्यकता पड़ सकती है। इसलिए दोनों विधियों में से पहली अर्थात् प्रत्येक सूचनादाता की सूचना अलग कार्ड पर लिखे जाने की विधि अधिक प्रचलित रही है।

2.यान्त्रिक सारणीयन–यान्त्रिक सारणीयन जैसा कि इसके नाम से स्पष्ट है वह सारणीयन है जिसमें यन्त्रों अर्थात् मशीनों का प्रयोग होता है। कम्प्यूटर द्वारा सामग्री के विश्लेषण से पूर्व सामाजिक अनुसन्धान में यान्त्रिक सारणीयन का ही प्रयोग किया जाता था। अधिक इकाइयों (सूचनादाताओं, मदों अथवा केसों) के होने पर हस्त सारणीयन अधिक कठिन हो जाती है इसलिए यान्त्रिक सारणीयन की सहायता ली जाती है। आज यान्त्रिक सारणीयन का प्रयोग सीमित पैमाने पर किये जाने वाले अध्ययनों में भी किया जाने लगा है क्योंकि इसकी सुविधाएँ अनेक विश्वविद्यालयों में अथवा व्यक्तिगत स्तर पर अब उपलब्ध होने लगी है।

यान्त्रिक सारणीयन में निम्नलिखित प्रक्रियाएँ की जाती हैं–

(i)सर्वप्रथम प्रश्नावली में प्रविष्ट सूचना को संकेतों (ण्द्) में बदला जाता है।

(ii)संकेतक सामग्री को पहले 'कोड शीट' पर उतारा जाता है और फिर कार्डों पर उतारा जाता है। सूचना से सम्बन्धित संकेतांक को 'की पंच' (खब ज्व्हम्) द्वारा काटकर छेद कर लिया जाता है।

(iii) सूचना को कार्डों पर उतारने के बाद त्रुटियों की जाँच करने के लिए एक परीक्षण पंच द्वारा यह देखा जाता है कि कार्डों में छेद आवश्यकतानुसार ठीक किए गए हैं या नहीं।

(iv)फिर कार्डों को उनके विभिन्न गुणों के अनुसार बिजली के छांटने वाले यन्त्र (Electric sorting machine) में डालकर अलग-अलग कर दिया जाता है। अब यह कार्य कम्प्यूटरों द्वारा किया जाने लगा है।

(v) अन्त में, छाँटे हुए कार्डों की यन्त्र द्वारा गणना करके सारणीयन यन्त्रों की सहायता से सारणियाँ तैयार कर ली जाती हैं। अब कम्प्यूटर द्वारा चरों में सम्बन्ध सम्बन्धी सारणीयन बनाने की योजना बनाकर सारणियाँ कुछ ही मिनटों में तैयार हो जाती हैं।

आजकल उपर्युक्त यान्त्रिक सारणीयन की विधि भी अप्रचलित हो गई है। इसका स्थान सामग्री के सांख्यिकीय विश्लेषण हेतु सॉफ्टवेयर प्रयोग किए जाने लगे हैं। सामाजिक विज्ञानों में सर्वाधिक प्रयोग किएजाने वाले सॉफ्टवेयर को 'सामाजिक विज्ञानों हेतु सांख्यिकीय पैकेज' (Statistical Package for the Social Sciences) कहा जाता है। इसे संक्षेप में 'एस पी एस एस' (SPSS) कहते हैं। यह सरलता से उपलब्ध है तथा विविध प्रकार की सांख्यिकीय संक्रियाओं द्वारा सामग्री के संक्षिप्तीकरण में अत्यन्त उपयोगी है। उदाहरणार्थ–यह पैकेज माध्य एवं प्रमाप विचलन निकालने, टी-टैस्ट (T-test) एवं विचरण विश्लेषण (Analysis of variance) द्वारा यह ज्ञात करने कि दो समूहों में अन्तर महत्त्वपूर्ण हैं या नहीं, सह-सम्बन्ध (Correlation),साहचर्य (Association) एवं बहुविध प्रतिगमन (Multiple regression) द्वारा चरों में पाए जाने वाले सम्बन्धों को ज्ञात करने तथा चित्रों (Diagrammes) व रेखाचित्रों (Graphs) के माध्यम से आरेखीय परिणामों को समझने में अत्यधिक उपयोगी है। इस पैकेज को प्रयोग में लाने के लिए सांख्यिकी का थोड़ा-बहुत ज्ञान होना अनिवार्य है।

13.10 सारणीयन की उपयोगिता

सारणीयन सामाजिक अनुसन्धान का एक अनिवार्य चरण है जिसकी उपयोगिता निम्नलिखित तथ्यों द्वारा स्पष्ट की जा सकती है–

1.सारणीयन सामग्री को सुव्यवस्थित करता है–सारणीयन विस्तृत एवं अव्यवस्थित सामग्री को क्रमबद्ध करने में सहायक है क्योंकि इसमें सामग्री को तार्किक आधार पर सुव्यवस्थित किया जाता है। इसलिए यह निर्वचन एवं निष्कर्ष निकालने में अत्यन्त सहायक है।

2.सारणीयन विस्तृत सामग्री को संक्षिप्त रूप प्रदान करता है–सारणीयन विस्तृत एवं बिखरी हुई सामग्री को संक्षिप्त रूप से प्रस्तुत करने में सहायक है। वास्तव में, इसी के द्वारा आँकड़ों को कम से कम जगह पर दिखाया जा सकता है।

3. सारणीयन तुलना को सरल बनाता है–सारणीयन तुलना का कार्य अति सरल बना देता है क्योंकि इसमें तुलनात्मक सामग्री को एक साथ व्यवस्थित किया जाता है जिससे कि उनका महत्त्व स्पष्ट हो जाए।

4.सारणीयन सांख्यिकीय विश्लेषण में सहायक है–सारणीयन सामग्री के सांख्यिकीय विश्लेषण अर्थात् माध्य प्रवृत्तियाँ, विचलन एवं सहसम्बन्ध इत्यादि निकालने अथवा सामग्री को ग्राफ इत्यादि द्वारा प्रदर्शित करने में सहायक है।

संक्षेप में, सारणियाँ वर्गीकृत समंकों को सरल, संक्षिप्त और सुव्यवस्थित रूप में प्रस्तुत करके सांख्यिकीय निर्वचन में सहायता प्रदान करती हैं।

13.11 सारणीयन की सीमाएँ

यद्यपि सारणीयन सामाजिक अनुसन्धान में एक महत्त्वपूर्ण चरण है फिर भी इसकी कुछ सीमाएँ हैं। सारणीयन की प्रमुख सीमाएँ निम्नलिखित हैं–

1.केवल गणनात्मक सामग्री के प्रदर्शन में सहायक–सारणीयन की सबसे बड़ी कमी यह है कि इसके द्वारा केवल गणनात्मक सामग्री का ही प्रदर्शन किया जा सकता है गुणात्मक (Qualitative) सामग्री का नहीं। सारणी में इतना स्थान ही नहीं होता कि किसी विशेष गणनात्मक तथ्य की आंशिक गुणात्मक व्याख्या भी की जा सके। सामाजिक अनुसन्धान में जो तथ्य एकत्रित किए जाते हैं, वे अधिकांशतः गुणात्मक होते हैं। वर्णनात्मक अध्ययनों में सारणीयन उपयुक्त नहीं है।

2.सामान्य व्यक्तियों की समझ से बाहर–सारणीयन द्वारा जिस सामग्री का प्रदर्शन किया जाता है, उसे सामान्य व्यक्तियों द्वारा समझने में कठिनाई हो सकती है। वास्तव में, इसका उपयोग केवल विशिष्ट एवं उच्च ज्ञान वाले व्यक्तियों तक ही सीमित है।

3. सीमित उपयोग–सारणीयन का सीमित पैमाने पर ही उपयोग किया जा सकता है अर्थात् इसका सीमित महत्त्व है क्योंकि एक सारणी में सम्पूर्ण सामग्री का प्रयोग नहीं किया जा सकता। साथ ही, गुणात्मक आँकड़ों का प्रदर्शन होने के कारण सारणी का महत्त्व कम हो जाता है।

आज अधिकांश अनुसन्धान पुस्तकों एवं लेखों में जहाँ एक तरफ सांख्यिकी का अधिकाधिक प्रयोग देखने को मिलता है वहाँ दूसरी तरफ आँकड़ों को यथासम्भव सारणीयन के बिना प्रस्तुत करने की प्रवृत्ति भी बढ़ती जा रही है। कुछ अनुसन्धान पत्रिकाओं में तो लेख निर्देश के रूप में यहाँ तक लिखा रहता है कि अगर सामग्री या आँकड़ों को वैसे ही सरलता से समझाया जा सकता है तो सारणी का प्रयोग न किया जाए।

13.12 सामग्री का निर्वचन

सामग्री के वर्गीकरण एवं सारणीयन के पश्चात् इसका विश्लेषण करके निष्कर्ष निकाले जाते हैं। निर्वचन में सांख्यिकीय विश्लेषण के आधार पर निष्कर्ष निकाले जाते हैं। संकलित तथ्यों के सारणीयन से हमें यह पता चल जाता है कि कौन-कौन से चर परस्पर सम्बन्धित हैं। सामग्री के निर्वचन के समय काफी सावधानी रखनी पड़ती है तथा निर्वचन का आधार केवल तथ्य ही होने चाहिए। मोजर एवं कैल्टन (Moser and Kalton) के अनुसार, ''सर्वेक्षण परिणामों का निर्वचन साधारण सारणीयन का सामान्य ज्ञान पर आधारित अध्ययन तथा सरल वर्णनात्मक सामग्री की व्याख्या से अधिक नहीं है।'' सामग्री के सम्बन्ध में निर्वचन सांख्यिकीय त्रुटियों को सामने रखकर किया जाता है। किसी भी प्रकार की सामग्री क्यों न हों, निर्वचन का उत्तरदायित्व अनुसन्धानकर्ता के कन्धों पर है। कुछ अनुसन्धानकर्ताओं का विचार है कि उनका कार्य केवल परिणामों को तार्किक तथा सुगम रूप से प्रस्तुत करना है, जबकि इनसे निष्कर्ष निकालना पढ़ने वालों का कार्य है। मोजर तथा कैल्टन का कहना है कि यह कार्य पूर्णतः पढ़ने वालों पर छोड़ना ठीक नहीं है।

उदाहरणार्थ, इसी इकाई में स्थानानुसार वर्गीकरण को भारत के विभिन्न राज्यों तथा केन्द्र शासित प्रदेशों में 2001 ई0 में आई0 पी0 सी0 के अपराध के मामले, आयतन तथा अपराधिता की श्रेणी सम्बन्धी वर्गीकरण द्वारा स्पष्ट किया गया है। यदि हम इस सारणी को ध्यान से देखें तो इसके निर्वचन द्वारा निम्नलिखित निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं–

1.2001 ई० में भारत में आई० पी० सी० के कुल 1769308 अपराध दर्ज किए गए जिनमें से विभिन्न राज्यों में 1707176 (96·4 प्रतिशत) तथा केन्द्र शासित प्रदेशों में 63132 (3·6 प्रतिशत) थे।

2.सर्वाधिक अपराध वाले राज्यों में मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश एवं महाराष्ट्र का क्रमशः पहला, दूसरा तथा तीसरा स्थान है।

3.सबसे कम अपराध वाले राज्यों में सिक्किम प्रथम स्थान पर है। उसके पश्चात् अरुणाचल प्रदेश, गोवा, मणिपुर, मेघालय, मिजोरम तथा नागालैण्ड का स्थान है।

4.केन्द्रशासित प्रदेशों में अण्डमान और निकोबार द्वीपसमूह, दादरा एवं नागर हवेली, दमन और दीव तथा लक्षद्वीप ऐसे हैं जिनमें अपराध की दर बहुत कम है।

13.13 शब्दावली

वर्गीकरण –वर्गीकरण वह प्रक्रिया है जिसमें सामग्री (आँकड़ों) को समानताओं एवं असमानताओं के अनुसार विभिन्न वर्गों में व्यवस्थित किया जाता है।

गुणात्मक वर्गीकरण–जब सामग्री का वर्गीकरण समंकों के गुणों के अनुसार किया जाता है तो उसे गुणात्मक वर्गीकरण कहते हैं।

वर्गान्तर विस्तार–प्रत्येक वर्ग की निम्न एवं उच्च सीमा के अन्तर को वर्ग विस्तार या वर्गान्तर विस्तार कहते हैं।

सारणीयन–सारणीयन वह सांख्यिकीय प्रक्रिया है जिसके द्वारा संकलित सामग्री को स्तम्भों (खानों) और पंक्तियों में क्रमबद्ध किया जाता है।

द्विगुणी सारणी–यह वह सारणी है जिसमें एक ही प्रकार की सामग्री के दो भिन्न-भिन्न गुणों का स्पष्टीकरण किया जाता है।

13.14 अभ्यास प्रश्न

1.वर्गीकरण किसे कहते हैं? इसके प्रमुख उद्देश्य बताइए।

2.वर्गीकरण को परिभाषित कीजिए तथा इसके आधारों का संक्षिप्त परिचय दीजिए।

3. सामग्री विश्लेषण के विभिन्न स्तरों की विवेचना कीजिए।

4. सारणीयन क्या है? इसके विभिन्न प्रकार कौन-से हैं? संक्षेप में समझाइए।

5.सारणीयन किसे कहते हैं? सारणी का निर्माण करते समय किन बातों का ध्यान रखा जाना आवश्यक है?

6.सारणीयन से आप क्या समझते हैं? इसकी उपयोगिता एवं सीमाओं की विवेचना कीजिए।

7.निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिए–

(अ) संकेतन

(ब) सारणीयन की विधियाँ

(स) सामग्री का निर्वचन

(द) द्विगुणी सारणीयन।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- Bottomore, T. B., Sociology A Guide to Problems and Literature, London : Allen and Unwin, 1968.

- Connor, L. R., Statistics in Theory and Practice, London : Sir Isaac Pitman & Sons, 1964.
- Elhance, D. N., Fundamentals of Statistics, Allahabad : Kitab Mahal, 1964.
- Kerlinger, F. N., Foundations of Behavioural Research, New York : Holt, Rinehart, and Winston, 1979.
- Mann, Peter H., Methods of Sociological Enquiry, Oxford : Blackwell, 1968.
- Moser, C. A. and G. Kalton, Survey Methods in Social Investigation, London : Heinemann Educational, 1971.
- Selltiz, Claire, Marie Jahoda, Morton Deutsch and Stuart W. Cook, Research Methods in Social Relations, New York : Henry Holt and Company, 1959.